CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, कचौड़ी
वाराणसी-५

1.2

श्री वेणुगीतम्

4/19

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, कचौड़ी
वाराणसी-५

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, कचौड़ी
वाराणसी-५

ग्रन्थालय
डी, वाराणसी-५
4/19

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

* श्रीगोकुलचन्द्रमसेनमः *

वन्दे श्रीवल्लभाचार्यवचांस्यहमहर्निशम् ।
श्रीकृष्णस्य मुखोक्तानि कलवेणुस्वनानि हि ॥१॥

आम्नाय-ग्रन्थालय
भरतनिधि, करौंदे

वेणुगीतम्

श्रीमद्वल्लभाचार्य विरचितायाः श्रीसुबोधिनी व्याख्याया ब्रजभाषानुवादसहितम्

श्रीमद्विट्ठलेश प्रभु प्रभृतिभिः कृतानां श्रीसुबोधिनी टिप्पणी
स्वतन्त्र लेखानां तथा श्रीबालकृष्ण भट्टादि कृत योजना
कारिकार्थ संग्रहयोर्ब्रजभाषानुवादसमेतं च

ब्रजभाषानुवादकर्ता तथा प्रकाशक-
सनाढ्य द्विजकुलोत्पन्न वृहद्वनवासि स्वामि गोपीनाथात्मजो
मथुरा निवासि स्वामि रूपकिशोर शर्मा

मुद्रणाधिकार स्वतन्त्र रक्खा है, हमारे कहे विना कोई न छापैं ।

१७० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य ।।) आठ आना ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय, भरतमिलाप, कचौड़ी गली, वाराणसी-1

श्री वेणुगीत

आम्नाय-ग्रन्थालय, भरतमिलाप, कचौड़ी गली, वाराणसी-1

उपोद्घात ।

हे वैष्णव वाचक वृन्द ! यह श्रीमद्भागवतशास्त्र, भगवान कौ नाम रूपात्मक स्वरूप है ।

" इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितं । भगवत इदं नाम भागवतं ॥ "

भगवान् कौ यह भागवत प्रसिद्ध नामात्मक स्वरूप है । जैसें भगवान् के मुखते वेद प्रकट भये तैसैंही यह भागवत भगवन्मुखते प्रकट भयौ है या भागवत कौ प्रथम उपदेश प्रभुनें ब्रह्मा के हृदय में कियौ, ब्रह्मानें नारद ते, नारदनें व्यासते, व्यासनें श्रीशुकमुनिते, शुकदेवजी ने परीक्षित ते, सूतशौनकादिके द्वारा शिष्य परंपराते भूतल में प्राप्त भयौ है । याते—" भगवता प्रोक्तं भागवतं " भगवान ने कह्यौ है याते याकौ नाम भागवत है । यातेही वेदके समान है किन्तु केवल वेद के समान ही नहीं है, वेद ही याके समान कहने चहिये । वेदते तौ यह शास्त्र महत् उत्कृष्ट कोटि में है । या जतायवे के लिये ही प्रथम स्कन्ध की आदि में प्रथम श्लोक में या भागवत कूं गायत्री अर्थरूप कह्यौ है, द्वितीय श्लोक में या शास्त्र में वास्तव वस्तु वेद्य श्रीकृष्ण कहे हैं । तृतीय श्लोक में या भागवत कूं निगम कल्पतरुकौ फल कह्यौ है । याते वेदमाता गायत्री रूप बीजते प्रकट भयौ जो वेद कल्पतरु ताकौ फलरूप यह भागवत शास्त्र है । याते वेदते उत्तमता याकी सहज सिद्ध है याते ' रसोवैसः ' रसात्मक भगवत्स्वरूप है । कारण कै रसतौ यद्यपि बीज में वृक्ष में शाखा में पत्तान में, अप्रकट रूपते सबमें ही रहै है तथापि रसकौ रूपतौ फलमें ही प्रकट होय है । सोही श्रीव्यास जी कहै हैं कै—

Bhagavata superior to the Veda.

" पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः "

'हे भावुक रसिकजन, या रसके आलय फल स्वरूप भागवत कौ बारंबार पान करौ ' यद्यपि या भागवत शास्त्र पै वोपदेव, श्रीधर स्वामि तथा रामानुज, माध्व, निम्बार्क, मतानुवर्ती महानुभावन की अनेक भावोद्बोधिका टीका हैं तथापि शास्त्रार्थ, स्कन्धार्थ, प्रकरणार्थ, अध्यायार्थ रीतिते कोई टीका नहीं है । यामें यह कारण है कै अपने हृदय को तात्पर्यार्थ अपने मुख द्वारा ही प्रकट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कियौ जाय है याते या श्रीमद्भागवत की श्री सुबोधिनी व्याख्या करवे के लिये ही श्री बल्लभाचार्य जी कौ अवतार भयौ। यही आशय श्रीवल्लभाचार्यजी ने श्रीसुबोधिनी व्याख्या के प्रारम्भ में स्वावतार प्रयोजन श्रीमद्भागवत के गूढार्थ प्रकट करवे के लिये ही कह्यौ है सो कहे है कै—

" अर्थं तस्य विवेचितुं नहि विभुर्वैश्वानराद्वाक्पतेरन्यस्तत्र विधाय मानुषतनुं मां व्यासवच्छ्रीपतिः। दत्वाऽऽज्ञां च कृपावलोकनपटुर्यस्मादतोहं मुदा गूढार्थं प्रकटी करोमि बहुधा व्यासस्य विष्णोः प्रियम् ॥ "

या श्रीमद्भागवत के अर्थ कूं निर्णय करवे में, अथवा—

" विगतं वं यस्मात् तद्विवं तस्मिन् विवे। "

गतमोक्ष सुख लोक में अर्थात् अलौकिकानंद रहित लोक में, श्रीवल्लभ वैश्वानर भगवन्मुखाग्निवाक्पति ते अन्य कोई भी पुरुष या लोक में 'अचितुं प्राप्तुं ज्ञातुं वा' आनंद प्राप्त करवे कूं वारसात्मक अर्थ के जानवे कूं कोई भी समर्थ नहीं है। यामें कारण कहे हैं कै 'वाक्पतेः' भगवन्मुखाग्नि वाक्पति है। श्रीवल्लभाचार्य भगवन्मुखाग्नि के अवतार हैं। याते श्रीवल्लभाचार्य ही भागवतार्थ कूं प्रकट कर सकैं हैं। अन्य कोई भी पुरुष भागवतार्थ कौ प्रकाश नहीं कर सकै है। कारण कै यह लोक, कलिकाल करकै दूषित बुद्धि होयवेते विरुद्ध साधनवान् है, अशुद्ध चित्त है, ज्ञान वैराग्य रहित है। याते अलौकिकानन्द में अनधिकारी हैं। याते भागवत के रहस्यार्थ कूं जानवे में आनन्द प्राप्त करवे में मोते अन्य कोई भी पुरुष समर्थ नहीं हैं। भागवत के रहस्यार्थ कूं कोई नहीं कह सकै है। याते श्री भागवत के गूढार्थ प्रकाश करवे के अर्थ द्विविध रसात्मक श्रीलक्ष्मीपति प्रभुनें, अपने ज्ञानांश प्रधानरूप श्रीवेदव्यास की भाँति मेरौ मनुष्यवत्स्वरूप निर्माण करकै, श्रीभागवत के गूढार्थ प्रकाश की आज्ञा मोकूं देकर कै प्रभुनें " कृपावलोकन पटुः " मोकूं कृपापूर्वक अवलोकन कियौ, याते प्रभुकृपा दृष्टि वलते भागवत के गूढार्थ प्रकाश करवे में चतुर भयौ, मैं श्रीव्यास जी के और श्रीपुरुषोत्तम के प्रिय करवे वारे भागवत के गूढार्थ कूं बहु प्रकारते, या लोक में आनन्द स्वरूप की प्राप्ति के अर्थ प्रकट करूँ हूं। क्योंजी आपके मनुष्य शरीर होयवे ते, अल्पज्ञादिदोषयुक्त होयवेते, भागवत कौ गूढार्थ विवरण कैसें सिद्ध है सकै है। ऐसी शंका में कहे हैं कै 'व्यासवत' जैसें श्री भागवत ग्रन्थ रचना के लिये प्रभुनें अपनों ज्ञानशक्ति प्रधान व्यासरूप प्रकट कियौ। ऐसेंही भागवतार्थ प्रकाश-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतीनिधि, काशी वाराणसी-5

नार्थ मोकूं प्रकट कियौ है। याते मैं मनुष्यरूपते प्रतीत हों तौ भी मनुष्य नहीं हूं किन्तु भगवन्मुखावतार हूं। याते ही वल्लभाष्टक में कह्यौ है कै—वस्तुतः कृष्ण एव प्रादुर्भूतो भवान्' वास्तव में तौ श्री वल्लभाचार्य स्वयं श्रीकृष्ण स्वरूपही हैं याते—'मानुषवत्तनुर्यस्य' मनुष्यवत् आकार होते भी मैं अलौकिक शरीर हूं। यह अर्थ भयौ। क्योंजी श्री वेदव्यासजी नें तौ भगवत् आज्ञा ते श्रीनारदजी के द्वारा उपदेश प्राप्त करके भागवत ग्रन्थ रचना कियौ है आपकौ शिक्षक कौन है ऐसी आकांक्षा मैं कहै हैं के 'दत्वाज्ञां च' भागवत विवरणार्थ साक्षात्प्रभुनें ही आज्ञा दई है। अन्य के द्वारा उपदेश परम्पराते मोकूँ आज्ञा नहीं है किन्तु स्वयं प्रभु की ही आज्ञा है। यह उचित ही है भगवान् के हृदयाशयकूं भगवन्मुख ही प्रकट कर सकै है। क्यों जी व्यास जी नें नारदोपदेश के अनन्तर समाधि द्वारा सामर्थ्य प्राप्त कर कैं समाधि भाषा रूप श्रीमद्भागवत ग्रंथ रचना कियौ है। या श्री भागवत के गूढार्थ प्रकट करवे के अर्थ आपनें कौन साधन कियौ? ऐसी आकांक्षा में कहै हैं कै 'कृपावलोकन-पटुर्जातः' मैं तौ भगवत्कृपावलोकन करके लब्ध सामर्थ्यवान् भयौ हूँ, याते साधनान्तर ते निरपेक्ष होय करकैं मैंने सुबोधिनी व्याख्या रची है। या कथन ते अपने विषैं प्रभु की महती कृपा सूचित करी। याते ही आप पुष्टिमार्गाचार्य हैं। या प्रकार भगवत्कृपा रूप साधन निरूपण करकै, रचना किये भागवत ग्रन्थ में प्रमेय के स्वरूप कूँ कहै हैं। कै 'गूढार्थं' समस्त भागवत शास्त्र में, स्कन्ध २ में, प्रकरण २ में, वाक्य २ में, पद पद में, अक्षर २ में सप्त प्रकार ते छिप्यौ भयौ एक प्रमेय भगवत्स्वरूप ही सब में भरपूर है। और 'प्रकटी करोमि' में प्रकट करूं हूं। या कथन ते यह सूचित कियौ कै मैं प्रभु अनुग्रहते स्फुरे पूर्व सिद्ध अर्थ कू प्रकट करूं हूँ। मैंनें अपनी बुद्धि ते कल्पित कियौ अर्थ, किंचिन्मात्र भी नहीं कियौ। याते मेरौ कह्यौ अर्थ प्रमाणसिद्ध है या में अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। अब सप्तार्थी रूप गूढार्थ के स्वरूप कूं कहै हैं कै 'व्यासस्यविष्णोःप्रियम्' या भागवत शास्त्र में कहो कितनी हू लीलान के अर्थ अन्यथा प्रतीत होंय हैं। किन्तु सप्तार्थी रीति सूँ वर्णन करवे में तौ सब अर्थ आनन्द स्वरूप प्रभु के बोधक हैं। याते सप्त प्रकार ते गूढार्थ कौ प्रकट करनों श्री वेदव्यासजी कूं और श्री पुरुषोत्तम कूं भी प्रिय है॥ १॥

यद्यपि श्रीमदाचार्य चरणन नें अपनों अवतार प्रयोजन अपने श्री मुख ते ही कह्यौ है तथापि या वेणुगीत के

'गावश्च कृष्णमुख निर्गत वेणुगीत पीयूष'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

या त्रयोदशमे श्लोक में भी श्रीकृष्ण श्रीवल्लभाचार्य जी कौ वंश परम्परातें समान धर्म है सो कहै है, कै 'गावश्च कृष्णमुख' श्री कृष्ण के मुख श्री वल्लभाचार्यन के मुखते 'निर्गत' निकसी जो नाम रूपात्मिकाद्विविधासृष्टि। तहां

'वचसा वेदमार्गंहि पुष्टिं कायेन निश्चय'

या वाक्य के अनुसार नामसृष्टि में तौ श्रुतिसिद्धान्तसाररूपा श्री सुवोधिनी तत्वदीपनिवंधादि ग्रंथ प्रकट भये। और रूपसृष्टि के कारण रूप वेणुस्वरूप श्री विट्ठलेश प्रभु प्रकट भये। 'द्वौवशौ कुल मरौ' या वाक्य ते श्री विट्ठलेश वेणुस्वरूप हैं वंशवर्द्धक हैं, पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक हैं। कारण कै

'स्ववंशे स्थापिताशेषस्वमहात्म्य'

श्री वल्लभाचार्य जी नें अपनों श्रुतिसिद्धान्तसार जो श्री कृष्ण स्वरूप-सौन्दर्यामृत है सो श्री विट्ठलेश प्रभु में स्थापन कियौ। जैसे प्रभु नें वेणु के छिद्रान्तर-वर्ती आकाश में सुधापूरित करकैं श्रुतिरूपा, ऋषिरूपा, अग्नि कुमारिका गोपीन कूं सुधापान करायौ, ऐसै ही श्री वल्लभाचार्य जी नें श्रुतिसिद्धान्तसार रूपी श्री कृष्णस्वरूप सौन्दर्याधरमाधुर्यसुधा श्रीविट्ठल प्रभु में स्थापन करकै श्रीवेणु विट्ठल के सप्त स्वर स्वरूप श्री गिरिधरादि सप्तबालकन के द्वारा अग्निकुमारिकादि रूप अन्य समस्त गोस्वामि बालकन कूं तथा अन्य समस्त पुष्टिमार्गीय भक्तन कूँ भगवत् स्वरूप सौन्दर्यामृतमाधुर्यास्वादन करायौ। जैसै वेणु ब्रह्मानंद विषयानंद दोंनों कूँ तुच्छ करकै स्वरूप सौन्दर्याधर सुधा कौ पान करावै है, तैसैं यहाँ विट्ठल पद के प्रथमाक्षर में भी वकार इकार कौ संयोग है या ते श्री विट्ठलनाथ जी नें भी ब्रह्मानंद और विषयानंद कूं शून्य करकै श्री गिरिधरादि सप्तस्वरूप बालकन के द्वारा अग्निकुमारिका रूपा गायन कूं तथा अन्य समस्त निज भक्तन कूँ भक्तिरसामृत कौ पान करायौ है। ऐसैं वेणु और विट्ठल दोंनों पद समानधर्मी हैं। यहाँ 'मुख्या गोव्रजयोषित' या वाक्य ते रसानुभव करवे वारी गौ और व्रज स्त्री ही हैं। पुरुष तौ कोई विरले ही गौ के सदृश स्त्रीभावापन्नसर्वात्म भाववान् ही रसानुभव करवे योग्य हैं। या ते गायन की दशा कूं कहै है कै 'गावश्च' श्री कृष्ण के मुख श्री वल्लभाचार्य के श्री मुख ते निकस्यौ, और वेणु विट्ठलेश में स्थापन कियौ, श्री गिरिधरादि सप्तस्वरन के द्वारा प्रकट भयौ जो वेणु गीत पीयूष है ताकूं अग्नि कुमारिका रूपा गाय जे अन्य गोस्वामिवंशीय बालक हैं, ते अपने अपने कर्णरूपी दोंनान कूं ऊंचे उठाय उठाय करकै पानकर्त्री जे अग्निकुमारिका रूपा गाय हैं ते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुस्तकालय, सरस्वतीविहार, करौंदी, वाराणसी-5

अश्रुविन्दून करकै ढकी दृष्टि ते अपने अन्तःकरण में गोविन्द प्रभुकौ दर्शन स्पर्श करते, या भूतलपै पुष्टिमार्ग में जहाँ के तहां चित्र लिखे की भांति स्थित रहे। और

'शावाःस्नुतस्तनपयःकवलाःस्म'

अग्नि कुमारिका रूप जे गोस्वामि कुल बालक हैं तिन के हृदय में स्थित जे वेणुगीत के विविध लीला भावरस तिनकरकैं स्तनंधय (स्तनचुखाये) बालकन की भाँति पुष्टि किये जे शिष्य सेवक हैं ते भी निकस गयौ है पूर्वगृहीतलौकिक दुग्धरस रसग्रास सुखतें जिनकौ, याते भगवत् स्वरूपानंद मग्न भये अश्रु विन्दुनते ढकी दृष्टि ते स्वान्तर में गोविन्द प्रभु कौ दर्शन स्पर्श करते पुष्टि भाग में भूतल पै जहाँ के तहाँ स्थिर रहे, 'स्म' यह लोक प्रसिद्ध है। किन्तु।

'वयं तु पुष्टि मार्गीया अपि न तथा, किन्तु विपरीतधर्माचाराश्च'।

हमतौ पुष्टिमार्गीय होते भी, श्रीमदाचार्य चरणन के वचनानुकूल नहीं चलै हैं। याते श्रीकृष्ण मुख निर्गत वेणु गीत पीयूष हमारे मुखते निकसै है, हमारे हृदयंगम नहीं होय है। अर्थात् आचार्य वाक्य परम्परा ते जो हमकूँ भक्ति रस प्राप्त भयौ है, सो हमनें औरन के सुनायवे समझायवे के लियें ही कंठ स्थित कर राख्यौ है। हम अपने हृदयंगम नहीं करै हैं। याते बाहिर ही निकस जाय है, मुख में भी नहीं रहै है। यामें यह कारण है कै—

'मन्दाः सुमन्द मुतयो मन्द भाग्या ह्युपद्रुताः'।

हम आलसी हैं भगवत्सेवा स्मरण में, किन्तु धन कीर्ति के उपार्जन करवे में हम साहसी हैं। हम में यह चित्त जाड्य दोष हैं, सुकर्म करवे में हम मन्द बुद्धि हैं, किन्तु इन्द्रिय प्रसन्न करवे में हम तीक्ष्ण बुद्धि हैं यह हमारें विषें ज्ञानेन्द्रिय दोष है। हम मन्द भागी हैं, भगवत्सेवा सम्बन्धी कार्यन में, किन्तु विषय भोग में हम अपने कूं बड़भागी मानें हैं। यह हमनें पूर्व में किये कर्मेन्द्रियन के दोषते प्रारब्ध कर्मवश शारीरिक दोष है। याते हमकूँ अपनों कर्त्तव्य कर्मनहीं सूझै है। याते हम अनेक रोग उपद्रव युक्त हैं। याते हे श्रीवल्लभाचार्य प्रभो! आप अन्तर्यामी हौ, याते हमारे अपराधन कूं क्षमा करकै हमारे अन्तःकरण में ऐसीप्रेरणा करौ कै हमारे हृदय में आपके चरण कमल सदा विद्यमान रहें। हमारे अन्तः-करण में लोक सम्बन्धी ताप क्लेशानन्द कौ कदापि उदय नहीं होय और श्रीकृष्ण स्वरूप सौन्दर्य सुधा सम्बन्धी ताप क्लेशानन्द ही सदा हमारे हृदयमें विद्यमान रहै, आपते यही हमारी प्रार्थना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। या प्रकार शास्त्रार्थ कौ वर्णन करकै और भागवत शास्त्र के सप्तार्थी रूप अर्थ के कर्त्ता श्रीवल्लभाचार्य कौ प्रार्थना पूर्वक महात्म्य वर्णन करकैं अब स्कन्धार्थ, प्रकरणार्थ अध्यायार्थ कूँ कहै हैं कै या भागवत के द्वादशस्कंध हैं ते 'द्वादशोयं वै पुरुष' भगवान् के द्वादश अङ्ग हैं याते भागवत भगवान् कौ द्वादशांग युक्त स्वरूप है। प्रथम स्कन्ध में श्रोता वक्ता के हीन मध्यम उत्तम अधिकार भेद कहे हैं और द्वितीय स्कन्ध में श्रोता वक्ता के साधन को निरूपण है और तृतीय स्कंध ते प्रारम्भ करकै द्वादश स्कंध पर्यंत मैं भगवान् की सर्गादि आश्रय पर्यंत दशविध लीला वर्णन है। सब स्कंध में प्रकरण विभाग किये हैं, किन्तु विस्तार भय ते सब स्कंधन के प्रकरणार्थ यहां नहीं कहे। तामें दशम स्कंध तौ भगवान् कौ हृदय है यामें भगवान् की भक्तनिरोध लीला कौ वर्णन है। याते दशम स्कंध कौ अर्थ निरोध है। तहां प्रपंच विस्मृति पूर्वक कृष्ण में जो आसक्ति है, सो निरोध है। या भक्त निरोध में भगवत्प्राकट्य ही कारण है। याते चार अध्याय में प्रथम जन्म प्रकरण कह्यौ है। चतुर्मूर्ति चतुर्भुज भगवान् के प्राकट्य कथन ते जन्म प्रकरण चार अध्याय में कह्यौ है। भगवत्प्रादुर्भाव में भक्तन कौ दुःख ही कारण है याते भक्त दुःख हेतु प्रथमाध्याय कौ अर्थ है। भगवज्जन्म में भगवान् कौ उद्यम द्वितीयाध्याय कौ अर्थ है। रूपान्तर कौ स्वीकार करनों तृतीयाध्याय कौ अर्थ है और पूर्व की भांति कारागार के द्वारन कौ बन्द होनों, कंस के हाथन ते योग माया कौ निकसनों आकाश गमन करनों मायाते नाट्य लीला करनों चतुर्थाध्याय कौ अर्थ है। ऐसें चार अध्याय में जन्म प्रकरण है। तहाँ व्यूहत्रय समेत पुरुषोत्तम कौ प्राकट्य मथुरा में भयौ है। और योग माया सहित केवल पूर्ण पुरुषोत्तम वासुदेव कौ प्राकट्य श्रीगोकुल वृहद्वन में नन्दालय में भयौ है। यहां प्रभुप्रादुर्भाव के अनन्तर प्रभु कू व्रज भक्तन कौ निरोध करनों है। याते तामसादि भेद ते भक्त तीन प्रकार के हैं। यातें प्रथम तामस भक्तन कौ निरोध कह्यौ है। कारण कै तामसी जीव मूढ मति होंय हैं। याते तामसी जीवन कौ जा वस्तु में आग्रह पर जाय है, तामें ते कोई प्रकारते हटाये ते भी नहीं हटै है। यह लोक में भी सबके दृष्टिगोचर है। इस धर्मी स्वरूप श्रीकृष्ण में व्रज भक्तन कौ ऐसौ सहज स्नेह है गयौ कै साक्षात्प्रभु के कहे धर्मोपदेश कूँ नहीं मान कै प्रभु आज्ञा कौ उल्लंघन करकैं केवल भगवत्स्वरूप के अतिरिक्त और कोई धर्म कूं वा ज्ञान कूं अङ्गीकार ही नहीं कियौ। भगवत्कृपा बल ते सर्वात्मभाव के प्रकट होयवेते जैसो निरोध व्रज भक्तन कूं फलीभूत भयौ तैसौ निरोध अन्य कोई कूं नहीं भयौ। याते यहाँ तामस धर्म की समानता ते, या पुष्टि मार्ग की गति मर्यादा मार्ग ते विपरीत जतायी है। या जतायवे के लिये ही जन्म प्रकरणते अगारी २८ अध्याय में तामस प्रकरण कह्यौ है। यथार्थ में तौ यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तामस प्रकरण नहीं है, किन्तु निर्गुण प्रकरण है। कारण कै जिन निस्साधन भक्तन कूं निरोध दान दैवे के लियैं पूर्ण पुरुषोत्तम को प्रादुर्भाव भयौ है ते भक्त भी तामस नहीं हैं, किन्तु निर्गुण हैं, याते समस्त ही पुष्टि लीला सृष्टि भगवदात्मिका होयवे ते निर्गुणा है। या तामस प्रकरण में सात २ अध्याय के प्रमाण, प्रमेय, साधन और फल ऐसैं अवान्तर में चार प्रकरण के होयवे ते तामस प्रकरण २८ अध्याय कौ है। पाँचमे अध्यायते लै करकैं बत्तीसमे अध्याय पर्यंत या तामस प्रकरण की समाप्ति है। या तामस प्रकरण में प्रमाण प्रकरण है। प्रमाण के द्वारा ही नन्दादिक व्रज भक्तन कौ निरोध कियौ है याते यहां प्रमाण की मुख्तता होयवेते याकी प्रमाण प्रकरण संज्ञा है। यामें सप्ताध्याय हैं। यहां प्रत्याध्याय के भगवच्चरित्र में श्री नन्दादिकन नें प्रमाण करकैं ही श्री बालकृष्ण कौ भगवत्त्व जान्यों है। तहां भगवान नें अपने जा ऐश्वर्यादि धर्म कूं प्रकट करकैं भक्तन कौ निरोध कियौ है सो ही ता अध्याय कौ अर्थ है। तहाँ छै अध्यायन में तौ ऐश्वर्यादि षट् धर्मन को निरूपण है और सप्तमाध्याय में ऐश्वर्यादि षट् धर्म सहित धर्मीस्वरूप करकै ही निरोध कियौ है याते सप्तमाध्याय कौ अर्थ धर्मी स्वरूप निरूपण है। तहां प्रथमाध्याय में नन्दोत्सव के द्वारा ऐश्वर्य स्पष्ट ही है याते प्रथमाध्याय कौ अर्थ भगवत् ऐश्वर्य है। द्वितीयाध्याय में पूतना मारण रूप वीर्य स्पष्ट ही है। तृतीयाध्याय में शकटासुर के मारण ते पलना कौ उत्कर्ष बढायवेते सब गोपगोपीन कूं आनन्द जनक होयते यशः स्पष्ट है। चतुर्थाध्याय में **'अनेन सर्वे दुर्गाणि'** इत्यादि गर्ग के वाक्यनते, नाम लीला, गृहांगणा रिङ्गणादि लीला, व्रज भक्तन की सर्वापन्निवारिणी होयवेते, श्रीरूपा स्पष्ट ही है। पंचमाध्याय में **'नचान्तर्न वहिर्यस्य'** इत्यादि वाक्य ते ज्ञान स्पष्ट ही है। षष्ठाध्याय में यमलार्जुन वृक्षन कूं मुक्ति दान दैवे ते और भगवत्स्वरूपातिरिक्त अन्य पदार्थ में आसक्ति के न रहवे ते वैराग्य कार्य स्पष्ट है। सप्तमाध्याय, षट् धर्म सहित धर्मिस्वरूप के बाल चरित्रन ते भरपूर है, या ते सप्तमाध्याय धर्मिस्वरूप है। या प्रकार पंचमाध्याय ते प्रारम्भ करकै एकादशाध्याय पर्यन्त सात अध्याय के प्रमाण प्रकरण में प्रमाण के द्वारा श्री नन्दादिक व्रजभक्तन कूँ प्रमेय की सिद्धि में सर्वतोधिक स्नेहरूप निरोधसिद्ध भयौ या ते प्रमाण द्वारा प्रमेय की सिद्धि में श्रीबालकृष्ण प्रभु नन्दपुत्र कूं तत्तत् अमानुष लीला कर्ता निश्चय करकै, सकल दुःख निवारण महात्म्य द्वारा प्रभु में सबते अधिक स्नेह निरोध सिद्ध भयौ। अब प्रमेय स्वरूप के महात्म्य द्वारा श्री मातृचरण यशोदादि गोपीन कूं आसक्ति रूप मध्यम निरोध सिद्ध करावनों है। याते या प्रकरण की प्रमेय संज्ञा है। बारहमें अध्याय ते प्रारम्भ करकै अठारहमें अध्याय पर्यन्त सात अध्याय में प्रथम प्रकरण है। यहाँ ब्रह्मावत्सहरण लीला के तीन प्रक्षिप्ताध्यायन कूं छोड़ करकै

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय गणना है। या प्रमेयप्रकरण में पूर्वके प्रमाण प्रकरण की भांति क्रम है। छे अध्याय षट्धर्म के निरूपक हैं और अठारहमों अध्याय धर्मिरूप कौ निरूपक है। तहाँ प्रथम के बारहमें अध्याय में 'तंगोरजश्छुरित' इत्यादि श्लोक द्वयते ऐश्वर्यनिरूपण है, १३मे द्वितीयाध्याय में कालीय दमनलीला ते वीर्यनिरूपण स्पष्ट है। १४ मे तृतीयाध्याय में 'कृष्णांहृदाद्विनिष्क्रातं' अभीष्ट दर्शन देवै ते व्रजभक्तन के प्राण में प्राण आये याते यशः स्पष्ट है। १५मे चतुर्थाध्याय में प्रलंबासुर के बध ते काल दुःख निवारण द्वारा श्री कार्य स्पष्ट है। १६मे पंचमाध्याय में दावाग्नि पान महात्म्यद्वारा प्रभु ने सब कूं स्वरूपज्ञान करायौ याते ज्ञान कार्य स्पष्ट है। तत्पश्चात् १७मे षष्ठाध्याय में वर्षा शरद ऋतु के वर्णन द्वारा काल कौ मुख्य स्वरूप,बोध करायौ, आप यामें तटस्थ रहे, स्वमाहात्म्य बोध नहीं करायौ याते वैराग्य भाव स्पष्ट है। १८ मे सप्ताध्याय में

'रसोवैसः रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति'

या श्रुति के निरूपणानुसार वेणु गीत में स्वस्वरूप के निरूपण करवे ते, रस धर्मि स्वरूप निरूपणाध्याय याकौ स्पष्ट अर्थ है। यहाँ स्त्रीनकूं यथाधिकारानुसार आसक्तिरूप मध्यम निरोध सिद्ध भयौ। याते परैं व्यसन निरोध सिद्धि के अर्थ अग्नि कुमारिकान कूं साधन द्वारा निरोध सिद्धि कहवे के लियें साधन प्रकरण कौ प्रारम्भ है। साधन क्रिया द्वारा निरोध सिद्धि होयवेते, या प्रकरण की साधन प्रकरण संज्ञा है। सकल दैहिक धर्मन कूं त्याग करकैं भगवत् प्राप्ति के अर्थ लौकिक वैदिक कार्यन कौ करनों यह व्यसन है। या प्रकरण में भी पूर्ववत् सप्ताध्याय हैं। और पूर्ववत् छै अध्याय में षट्धर्म निरूपण है और सप्तमाध्याय में धर्मि स्वरूप कौ निरूपण है। या के अनन्तर साधन के करवेते, भगवत्कृपाबल ते प्राप्तभयी व्यसन रूपा भक्ति के उद्रेकते प्राप्त होयवे वारो जो षट्गुणयुक्त पूर्ण भगवत्स्वरूप फल है ता के निरूपण करवे ते या प्रकरण कौ नाम फल प्रकरण है। या फल प्रकरण में भी सप्ताध्याय हैं। यहां ऐश्वर्यादिकन कौ क्रम ते कहनों इच्छित नहीं है कारण कै रसधर्मि पुष्टि फल की प्राप्ति में ऐश्वर्यादि धर्म क्रम कौ जो अतिक्रम है सो दोषरूप नहीं है। किन्तु मध्य में जो रस भोग है याते सुख विशेष की प्राप्ति है। या फलप्रकरण में प्रभु कूं गोपीन के लिये रमण फलदान करनों है। याते नामरूप भेद ते भगवत् रमण दो प्रकार कौ है याते रूपरमणमें रासपंचाध्यायी है। कारण कै 'आत्मा, मन, इन्द्रिय, प्राण शरीर ऐसे रूपके पंचात्मकहोयवे ते रूपरमण लीला पांच अध्यायन में कही है। और शब्द के प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप दो भेद होयवेते नामते रमण युगलगीतपर्यंत दो अध्याय में कह्यौ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहां विस्तार भय ते विशेष हमनें नहीं कह्यौ। याते अगारी राजस भक्ति निरोधकरणार्थ २८ अध्याय में राजस प्रकरणकौ आरम्भहै। यामें भी सात सात अध्यायके प्रमाण, प्रमेय, साधन और फलके द्वारा निरोध कह्यौ है, याते राजस प्रकरण भी २८ अध्याय कौ है। याते अगारी सात्विक भक्तन के निरोध करणार्थ सात्विक प्रकरण है, यामें प्रमाण प्रकरण नहीं है, याते प्रमेय, साधन और फल के द्वारा सात्विक भक्तन कौ निरोध कह्यौ है। याते सात्विक प्रकरण २१ अध्याय कौ है। याते अगारी जा प्रभु नें ऐसे विचित्र चरित्र किये हैं, सो श्री कृष्ण परब्रह्म है, या कहवे के लियें पीछे के छै अध्यायन में प्रभु के ऐश्वर्यादि षट् गुणन कौ वर्णन है। या प्रकार समस्त दशम निरोध स्कन्ध के ८७ सप्तशीति अध्यायन कौ यह तात्पर्यार्थ है। अब श्रीवल्लभाचार्यजी या अष्टादशाध्याय के अर्थ कूँ और श्लोकार्थ कूं ४॥ साढ़े चार करिकान में कहै हैं—

अष्टादशे गोपिकानामासक्तिर्वर्ण्यतेस्फुटा।
वर्ण्य वर्णक भेदेन गोपानामपि सोच्यते ॥ १ ॥
प्रवेशबोधने तासामुद्बोधायविरूपिते।
तद्गुणेषु प्रसक्ता हि तदा सक्ता भवन्ति हि ॥२॥
आसक्तिः प्रेम पूर्वैव प्रेमापि हरिणा कृतम्।
उद्बोधकं च हरिणा कृतं नान्येन केनचित् ॥ ३ ॥
आसक्त्या वर्णनं तस्माद्दिधान्ते वर्ण्यते स्फुटं।
कालाधिको हरिश्चात्र पुरुषोत्तम एवच।
त्रयोदशविधा लीला ततउक्ताः पृथक् पृथक् ॥ ४½ ॥

कारिकार्थः—या दशम निरोध स्कन्ध के १२ मे अध्याय ते प्रारम्भ करकै १८ मे अध्याय पर्यन्त सात अध्याय में प्रमेय प्रकरण है। या प्रमेय प्रकरण में २सधर्मि श्रीकृष्ण में गोप गोपीन की आसक्ति कौ वर्णन है, याते यह प्रमेय प्रकरण आसक्ति प्रकरण है। तामें 'अष्टादशे' या अन्त के अठारहमे अध्याय में तौ गोपीन की आसक्ति कौ स्पष्ट वर्णन है। याकौ यह तात्पर्य है, कै—

'गोपीनां परमानन्दमासीद्गोविन्द दर्शने, क्षणं युगशतमिव यासां, येन विनाऽभवत्'

जिन गोपीन कूं श्रीकृष्ण के बिना एक २ क्षण सौ २ युग के समान वितीत होय है, तिन गोपीन कूं गोविन्द के दर्शन कर कैं परमानन्द प्राप्त भयौ। तथा—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'आश्लिष्य समशीतोष्णं प्रसून वन मारुतम् ।'
जनास्तांप जहुर्गोप्यो न कृष्ण हृत चेतसः ॥'

शरद ऋतु के समशीतोष्ण जलन कूं और पुष्प गन्ध ते सुगन्धित वृन्दावन के वायु कूं स्पर्श करकै सब जनन के ताप जाते रहे किन्तु कृष्ण नें हरे हैं चित्त जिनके ऐसी गोपीन कौ ताप नहीं गयौ। इत्यादि वाक्यन में श्रीशुकदेवजी नें गोपीन की आसक्ति कौ पूर्व में भी वर्णन कियौ है। यद्यपि रसधर्मि प्रभु में गोपीन की आसक्ति कौ पहले भी वर्णन है, तथापि पूर्व के वर्णन में कोई आसक्ति बोधक वाक्य नहीं हो, याते गोपीन की आसक्ति प्रकट नहीं भई किन्तु या १८ में अध्याय में तौ गोपीन की आसक्ति कौ स्पष्ट वर्णन है। या प्रकार आसक्ति के सामान्य विशेष भावते पूर्वाध्यायनते या अध्याय की अर्थ सङ्गति है। और "वर्ण्य वर्णकभेदेन" वर्णनीय जे प्रभुके रात्रि दिवस के चरित्र, तिनके वर्णन कर्ता गोप गोपी हैं, तहाँ रात्रि चरित्र के वर्णन कर्ता गोप हैं। दिवस चरित्र की वर्णन करवे वारी गोपी हैं। या भेदते प्रभु में गोपन की भी आसक्ति कही है। किंतु बालक तौ जो कोई आश्चर्यजनक कार्य कूं देखैं हैं ताकूं अपने बाल स्वभाव ते उत्साहवश, सबके अगारी प्रकट कर देय हैं किंतु ये गोप बालक तौ प्रभु में आसक्त हैं स्त्रीभावापन्न हैं याते प्रभु के अन्तरङ्ग सखा हैं। याते अपने प्रभु के अद्भुत चरित्र कूं कोई के सन्मुख नहीं कहै है। या प्रभुमें आसक्ति कौ तौ यह स्वभाव है कै अपने प्रभु के अद्भुत चरित्र कूं अपनों सर्वस्व गुप्त धन समझकैं सबके सन्मुख नहीं कहै हैं। किंतु अपने समान शील व्यसन वारेन के सन्मुख एकान्त में कहै हैं। ऐसी समानशील व्यसनवती तौ श्री गोपी ही हैं। याते 'गोपाः स्त्रीभ्यः समाचख्युः' गोप्यलीलान में सहयोगि अन्तरङ्ग सखाननें दावाग्नि ते अपनों मोचन और प्रलंबासुर कौ वध, अपने प्रभु कौ अद्भुत चरित्र श्रीस्वामिनीन के सन्मुख में ही कह्यौ। यही तौ इन अन्तरङ्ग सखान की कहवे में चतुराई है। याते यह प्रकट होय है कै जैसें दिवस में श्री गोपीजन भगवत् चरित्र कौ गान करै हैं तैसें रात्रि में ये अन्तरङ्ग सखा प्रभु चरित्र कौ गान करै हैं। याते प्रभु में गोपन की भी आसक्ति प्रकट होय है। यह गोपन की आसक्ति कौ प्रसङ्ग, या प्रमेय प्रकरण के आदि में भी जतायौ है कै—

'अन्ये तदनुरूपाणि मनो ज्ञानि महात्मनः ।
गायन्तिस्म महाराज स्नेहक्लिन्नधियः शनैः ॥'

गोप रात्रि चरित्र वर्णन करते और गोपियां दिवस चरित्र वर्णन करती हैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाराणसी

हे महाराज परीक्षित, स्नेह करकैं आर्द्र हैं बुद्धि जिनकी ऐसे कितने हूं गोप बालक, महात्मा श्रीकृष्ण के शयन समय के अनुरूप योग्य, जे मनोहर गीत हैं तिनकूं जैसें निद्रा भङ्ग न होय तैसैं शनैः शनैः गान करै हैं । इत्यादिवाक्यनते गोपन की भी आसक्ति जतायी है । और या अन्त के अध्यायमें भी 'सगोगोपालकोऽच्युतः' श्रीकृष्ण अपने अन्तरङ्गलीला प्रेमी सखान कूं सङ्ग में लै करके अन्तरङ्ग लीला करवे के अर्थ वृन्दावन में पधारे हैं । इन अन्तरङ्ग सखान कौ प्रभु के सङ्ग में जानों श्रीस्वामिनीननें वर्णन कियौ है याते वृन्दावन में अन्तरङ्गलीला करवे कौ भी निश्चय होय है । अन्यथा यदि प्रभुकूं अंतरङ्गलीला नहीं करनी होवी तौ अपने अन्तरङ्ग सखान कूं संग में नहीं लै जाते । जैसें अग्निकुमारिकान के व्रत में बरदान देवे के लिये प्रभु पधारे हैं तब अपने अन्तरङ्ग सखान कूं सङ्ग में नहीं ले गये । तहां यमुना तटपै जायके चीरहरण लीला करकै पश्चात् 'मयेमारंस्यथक्षपाः' मेरे सङ्ग तुम इन शरद ऋतु की रात्रीन में रमण करौगी, ऐसैं काम वरदान दै करकैं या कार्य के करे पश्चात् अन्तरङ्ग सखान कूं सङ्ग में लियौ है । यही अगारी कह्यौ है कै 'अथगोपैः परिवृतः' याके अनन्तर गोपन ते परिवेष्टित भये हैं । तैसे ही यहाँ भी यदि अन्तरङ्ग लीला नहीं करनी होती तौ अन्तरङ्ग गोप सखान कूं सङ्ग नहीं लै जाते । याते अन्तरङ्ग सखान के सङ्ग लैजायवेते अन्तरङ्गलीला कौ भी निश्चय होय है । यह अपने हृदय में विचार कै ही श्रीमदाचार्यजी कहै है कै 'गोपाना मपिसोच्यते' प्रभुमें गोपन की भी आसक्ति कही जाय है । यहाँ यह ज्ञात होय है कै जैसे व्रजस्थिता श्रीस्वामिनी अपने गृहन में स्थित रहवे भी प्रभु आसक्ति भर प्रभावते दिवस कृत लीला स्वरूप कौ अपने अपने हृदय में साक्षात्कार करकैं ही दिवस कृत लीला स्वरूप कौ गान करै हैं । ऐसैं ही ये अन्तरङ्ग गोपकुमारभी भगवदासक्ति भर प्रभावते रात्रिकृत प्रभु लीलास्वरूप को अपने अपने हृदय में अनुभव करकैं रात्रिकृत प्रभु लीला स्वरूप को गान करै हैं । किन्तु यह रात्रि चरित्र अत्यंत गोपनीय है । याते जैसें गोप्य रीति सूं इन अन्तरङ्ग सखान नें या रात्रि चरित्र कौ गान कियौ है तैसे ही गोप्यरीति सूं या रात्रि चरित्र कौ श्रीशुकदेवजी नें वर्णन कियौ है । याते जा आसक्ति के कारण ते गोप रात्रि चरित्र कौ गान करै हैं । वाही आसक्ति के कारण वश व्रजगोपी प्रभुके दिवस चरित्र कौ गान करै हैं । याते गोप गोपी दोनों की प्रभु में तुल्य आसक्ति होयवेते, आसक्ति हेतु भूत गान कार्य भी तुल्य ही है । याते वर्णनीय रात्रि चरित्र के वर्णनकर्ता गोप, और वर्णनीय दिवस चरित्र की वर्णन करवे वारी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोपी है, या भेद करकैं गोप गोपी दोनों की आसक्ति कौ वर्णन है ॥ १ ॥

या प्रकार अध्याय तात्पर्य कं कहकर कै श्लोक संख्या तात्पर्य कूँ कहे हैं कै या अध्याय के प्रथम श्लोकमें वृन्दावन प्रवेश कह्यौ है। द्वितीय श्लोक में वेणु कूजन कह्यौ है। यह वेणु कूजन प्रभु नें याके लिये कियौ है, कै समस्त वनस्थित, व्रजस्थित भक्तन के प्रेम भाव कूं वेणु कूजन द्वारा जाग्रत करकैं आसक्ति भाव कूं बढ़ाय करकै लीला कार्य में सावधान करवे के अर्थ है। क्योंजी तब तौ प्रभु के वेणु कूजन कूं श्रवण करकैं गोपीन की आसक्ति वेणु कूंजन में होयवे ते गौणी आसक्ति है। मुख्य स्वरूप प्रभु में आसक्ति नहीं है। ऐसी शंका में कहे हैं, कै जे भक्त भगवान् में आसक्त होय है, तेही भक्त भगवान् के गुणन में आसक्त होंय हैं। याते यह भगवान् के गुणन में जो आसक्ति है सोही भगवत् आसक्ति की जतायवे वारी है ॥ २ ॥

आसक्ति की पूर्व अवस्था प्रेम है। यह प्रेम लौकिक प्रेम की भाँति कोकिल कूजनादि द्वारा प्रकट नहीं भयौ है। यह प्रेम तो प्रभु कृत है। याते अलौकिक प्रेम है। या प्रेम कौ निरूपण प्रमाण प्रकरण में है। प्रभु नें अपने बाल चरित्रन के द्वारा व्रज भक्तन कैं अपने में प्रेमोत्पन्न कियौ है। याते प्रेम प्रभु कृत है। यद्यपि प्रभु नें समस्त बाल चरित्र लोक बालकन की रीति सूं ही किये हैं, तथापि पूतनाबध, शकट भञ्जनादि चरित्र के द्वारा प्रभु के समस्त बाल चरित्र में अलौकिकत्व प्रकट होय है। याते व्रजवासिन कौ प्रभु में अलौकिक प्रेम है, सो प्रभुकृत है। यामें श्रुति प्रमाण कहे है कै— 'यमेवैष वृणुतेतेन लभ्यः' या श्रुति के अनुसार प्रभु जाकूँ अङ्गीकार करें हैं, ताकूं साधन सम्पत्ति कौ भी सम्पादन करें हैं। याते प्रभु स्वयं ही साधन कौ सम्पादन करकै फल दान करैं हैं। याते या पुष्टिमार्ग में प्रभु की प्राप्ति में प्रभू ही साधन रूप हैं। या प्रमेय प्रकरण में आसक्ति कौ निरूपण है। किन्तु आसक्ति तो प्रेमोत्तर भाविनी है, याते आसक्ति के निरूपण में प्रथम प्रेम कौ भी निरूपण, आवश्यक है। याते या अध्यायके प्रथम श्लोक में 'सगोगोपालकः' ऐसौ वाक्य है याते प्रभु नें गोप वृन्द के सहित वृन्दावन में प्रवेश कियौ है। यदि प्रभु कौ गोपी गोपवृन्द में प्रेम नहीं होतौ तौ प्रभु गोप वृन्द कूँ सङ्ग नहीं लै जाते, याते ज्ञात होय है, कै गोपन कौ प्रेम प्रभु में और प्रभु कौ प्रेम गोपन में है। याते आसक्ति निरूपण प्रसङ्गमें प्रथम श्लोकमें प्रेम कौ भी निरूपण भयौ। यह प्रेम उद्बुद्ध होते ही आसक्ति भाव कूं प्रकट करै है। याते द्वितीय श्लोक में वेणु कूजन द्वारा प्रेम भाव कूं उद्बुद्ध करकै आसक्ति भावकूं बढ़ामनों भी प्रभु कृत है। यद्यपि 'कुसुमित वन राजि' या द्वितीय श्लोक में अन्य पुष्पादि उद्दीपन विभावादि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सामग्रीन कौ भी वर्णन है यह समस्त सामग्री अलौकिकी रसमयी भगवत्कृता हैं। याते अगारी तृतीय श्लोक में ता वेणु कूजन और स्मरोदय वेणु गीत कू श्रवण करकें आसक्ति भर वश भयी व्रज गोपी, वेणुनाद में अनुभव किये भगवत्स्वरूप कौ वर्णन अपनी सखीन ते करवे लगीं। किन्तु केवला आसक्ति के वश भयी व्रज गोपी प्रभु चरित्र के वर्णन आरम्भ करते ही श्रीकृष्ण चेष्टितस्मरण जनितस्मरवेगते विक्षिप्त चित्त भयी व्रजगोपी भगवल्लीला स्वरूप कौ वर्णन नहीं कर सकी। यह चतुर्थ श्लोक में कह्यौ। याते यहां ३-४-५ श्लोक त्रय कौ तात्पर्यार्थ कहे है कै, 'आसक्त्या वर्णनम्' प्रभु नें व्रज गोपीन कूं अलौकिका शक्तिमात्र कौ दान दियौ है। या केवलासक्ति मात्र के होयवे ते व्रज गोपीन नें प्रभु लीला स्वरूप कौ वर्णनारम्भ कियौ है याते व्रजगोपी प्रभु लीला स्वरूप कौ वर्णन नहीं कर सकीं। या अभिप्रायते कहे है कै, प्रभु में आसक्ति मात्र के होते भी यावत्काल पर्यन्त प्रभु अपने लीलास्वरूप कौ अनुभव नहीं करामें तावत्काल पर्यन्त प्रभु लीला स्वरूप कौ ज्ञान कोई कूं नहीं होय है। याते व्रजगोपी प्रभु लीला स्वरूप को वर्णन नहीं कर सकीं। कारणकै 'विद्ययाऽमृतमश्नुते' विद्या करकें ही प्रभु स्वरूप जान्यो जाय है याते प्रभु नें व्रज गोपीन कूं अभी विद्या कौ दान तौ दियौ ही नहीं है। याते विद्या के विना प्रभु स्वरूप कूं कैसें जान सकै है, कैसें वर्णन कर सकै हैं। याते केवला शक्तिमात्र ते वर्णनारम्भ करवे ते वर्णन नहीं कर सकीं। याते अब विद्या दान प्रकार कूं कहे हैं। कै प्रथम प्रभु नें वृन्दावन में प्रवेश करकें वेणु कूजन कियौ। ता वेणु कूजन मात्र कूं श्रवण करकें 'काश्चित्' कितनी एक गोपी तौ भगवत्कृपा बलते, अपने अपने अन्तःकरण में प्रभु अङ्ग सङ्ग प्राप्त करकै श्री कृष्ण के परोक्ष में, वेणुनाद द्वारा अनुभव किये, भगवत्स्वरूप के अङ्ग सङ्गानन्द कूँ अपनी सखीन के समक्ष में वर्णन करवे लगीं और 'काश्चित्' कितनी एक व्रज गोपी, तास्मरोदय कर्ता वेणु कूजन के श्रवण मात्र ते काम के उदय होयवे ते मूर्छित भयीं भूमि में जाय परीं। पूर्व में जिन गोपीन नें अपनी सखीन के समक्ष में वर्णन करवे कौ आरम्भ कियौ हो— तिन गोपीन नें प्रभुदत्ता केवलासक्ति मात्र ते ही वर्णारम्भ कियौ हो, याते विद्या के विना सम्यक् प्रकार ते स्वरूपानुभव नहीं भयो याते 'तद्वर्णयितुमारब्धाः' प्रभु लीला स्वरूप के वर्णनारम्भ करते ही। श्रीकृष्ण की भृकुटि कटाक्षादि चेष्टान कूं बारम्बार स्मरण करवे ते प्रकट भयौ जो स्मरवेग, तास्मर वेगते विक्षिप्त चित्त भयी जे वर्णन कर्त्री व्रज गोपी ते भी मूर्छिता होय कर जाय परी। याते भगवल्लीला स्वरूप के वर्णन करवे में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

असमर्थ है गईं। वर्णन नहीं कर सकीं। तब व्रजगोपीन की वर्णनाऽशक्ति दशा में 'वर्हापीडं' यह एक श्लोक विद्या रूप श्रीशुकदेवजी नें 'तद्वर्णयितुमारब्धाः' या श्लोक के अन्त में कह्यौ। या प्रकार प्रभुनें श्रीशुकदेवजी के द्वारा व्रजगोपीनें कूं विद्या दान दियौ। यह विद्यारूप श्लोक व्रजगोपीन के स्वरूप वर्णन करवे में कारण रूप है। याते कै या श्लोक में विद्या कौ वर्णन है। अर्थात् या श्लोक में परिकर सहित परब्रह्म स्वरूप कौ ज्ञान जैसे स्पष्ट है जाय तैसे वर्णन है। याते व्रजगोपीन की प्रभु चरित्र के वर्णन करवे में सामर्थ्य भयी। सारांश यामें यह है कै भगवद्गुण वर्णन करवे में प्रेमासक्ति रूपा भक्ति, और प्रभु लीला स्वरूप कौ माहात्म्य ज्ञान, परम आवश्यक है। कारण कै 'विद्ययाऽमृतमश्नुते' ब्रह्म विद्याते ही प्रभुस्वरूप सौन्दर्याऽमृत की प्राप्ति होय है। जब प्रभु नें व्रजगोपीन कूं विद्यादान दियौ तब विद्यारूप प्रभुस्वरूप माहात्म्यज्ञान ते व्रज गोपीन कूं प्रभुस्वरूप वर्णन करवे की सामर्थ्य भई। विद्या दो प्रकार की है। एक अमूर्त विद्या, दूसरी मूर्त विद्या। अमूर्त विद्याते प्रभुस्वरूप कौ प्रादुर्भाव अन्तःकरण में ही होय है। याते या प्रमेय प्रकरण में प्रभुनें वेणुनाद द्वारा व्रजगोपीन कूं स्वस्वरूपानुभव अन्तःकरण में ही करायौ है। प्रभुनें व्रजगोपीन कूं दूर श्रवण दर्शन की सामर्थ्य भी दान करी है याते ही प्रभुनें वृन्दावन में किये दिवसकृत चरित्रन कौ वेणुनाद द्वारा अपने अन्तःकरण में अनुभव करकै व्रजगोपी लीलास्वरूप कौ गान करै हैं। अगारी रास पञ्चाध्यायी आदि फल प्रकरण के सप्ताध्याय में मूर्त विद्या और अमूर्त विद्या दोनों विद्यान कौ फल रासोत्सवादि युगल गीत पर्यन्त में वर्णन होयगौ। प्रभु मूर्त विद्या करकै अपने व्यापि वैकुण्ठ लोकात्मक स्वरूप कूं वहिः प्रकट करकैं रमणलीला द्वारा स्वरूपानुभव करामेंगे। या जतायवे के लिये ही यहाँ विद्याकौ निरूपण है। अर्थात् प्रथम प्रभु भक्त के अन्तःकरण में रमण करै है तदनन्तर भक्त के सङ्ग रमण करै हैं। या जतायवे के लिये ही यहाँ विद्या कौ निरूपण है। जैसे विद्या शब्द को अर्थ उपासना में है तैसे ही भगवत्साक्षात्कार में है। यह विद्या भगवान् की विद्या शक्ति है। या विद्या शक्ति के प्रवेश भये विना भगवत्प्राप्ति नहीं होय है याते यहाँ विद्या कौ निरूपण है। अथवा प्रथम श्लोकते प्रारंभ करकैं 'वर्हापीडं' या श्लोक पर्यन्त यह पञ्चश्लोकी विद्यारूप है। या पञ्चश्लोकी विद्या के अन्त में, गोपी कृत गानारंभ कौ स्पष्टार्थ बोधक 'इति वेणुरवं' इति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाम पूर्व श्लोकोक्त अधरसुधा संवलित वेणुरव कूं श्रवण करकै वेणुनाद को वर्णन करती गोपी अभिरमण करवे लगीं । यह षष्ठ श्लोक में कह्यौ है। यह छै श्लोकन कौ तात्पर्यार्थ कह्यौ । याते अगारी 'अक्षण्वतां फलमिदम्' या श्लोकते प्रारम्भ करकैं गोपीकृत गान कौ आरंभ है । याते पूर्वके प्रथम ते पञ्चम श्लोक पर्यन्त में विद्या को वर्णन है । जैसैं अविद्या के 'तामिस्रादि' पाँच पर्व हैं तैसें विद्या के भी पाँच पर्व हैं । याते पूर्वोक्त पाँच श्लोक समान संख्याते विद्या के पाँच पर्वरूप है । याते यह विद्या, ब्रह्मविद्याते भी अधिक फल देवे वारी है । जैसे ब्रह्मविद्याते ब्रह्मानन्द फल की प्राप्ति होय है तैसें या अमूर्त विद्याते भी आसक्ति पूर्वक भगवद्गुणगान करवे में ब्रह्मानन्द ते भी अधिक प्रेमानंद की प्राप्ति होय है । याते आसक्ति पूर्वक प्रभुलीला स्वरूप कौ गान करनों ही फलरूप है । यथार्थ में तौ लीला सृष्टि स्थित जीवन की विद्या भी अलौकिकी है । जा अलौकिकी विद्या कौ दान प्रभुनें व्रज गोपीन कूँ दियौ है ता पञ्चपर्वा विद्या के पञ्च पर्व भी विलक्षण हैं तिनकूं कहै हैं कै—

'वैराग्यं सांख्ययोगौ च तपो भक्तिश्च केशवे ।
पञ्चपर्वेति विद्येयं यया विद्वान् हरिं विशेत् ॥

भगवत् अतिरिक्त मोक्षपर्यन्त पदार्थन में अनुराग कौ अभाव होनों ही वैराग्य है । स्त्रीपुं उभयालंबन रूप श्रीपुरुषोत्तम रसात्मक हैं ऐसौ ज्ञान होनों ही सांख्य है । चित्तकौ भगवत् एक परत्व होनों ही योग है । भगवद्विरह में ताप क्लेशन कौ अनुभव करनों ही तप है । धर्मादि मोक्ष पर्यन्त चतुर्वर्ग की इच्छा रहित भगवान में आसक्ति कौ होनों ही भक्ति है । यह पञ्चपर्वा पुष्टिमार्गीय विद्या है । सो व्रजसुन्दरी कूँ सिद्ध है । तहाँ आसक्ति रूप पञ्चम पर्व, या अध्याय में निरूपण कियौ है । याते या वेणुगीताध्याय कौ अर्थ भगवदासक्ति वर्णनाध्याय है। कारण कै 'भक्त्या मामभिजानाति' भक्ति करकै ही प्राणी मोकूँ जान सकै है । या वाक्य के अनुसार आसक्ति रूपा भक्ति के द्वारा भगवत्स्वरूप की ज्ञाता व्रजगोपी, माहात्म्य ज्ञान पूर्वक भगवल्लीला स्वरूप कौ गान करती व्रजगोपी आन्तर रमण करवे लगीं । जब अधरसुधा संवलित वेणुनाद द्वारा व्रजगोपीन के हृदय में प्रभु स्वरूप को प्रवेश होय है तब सुधारस की अधिकता में हृदयोद्गार रूप वर्णन होय है । या प्रकार व्रजगोपी आन्तर अभिरमण करै

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। यह छै श्लोकन कौ तात्पर्यार्थ कह्यौ। याते अगारी 'अक्षण्वतांफलमिदं' या सप्तम श्लोक ते प्रारम्भ करकैं १३ श्लोकन में १३ लीलान कौ वर्णन है। याते त्रयोदश श्लोक संख्या तात्पर्य कूं कहें हैं कै 'पुष्टिप्रवाह मर्यादाभेदते' जीव तीन प्रकार के हैं। तिनमें प्राण धारण प्रयत्नशील जे प्रवाही जीव हैं ते संसारासक्त होयवेने द्वादश मासात्मक सम्वत्सर स्वरूपकाल पुरुष के उपासक हैं। अर्थात् कालाधीन भये जैसै-तैसैं काल क्षेप करे हैं। और वेदोक्त कर्मन में रुचिवारे मर्यादी जीव 'द्वादशोऽयं वै पुरुषः' या श्रुति के अनुसार द्वादशात्मा यज्ञ पुरुष के उपासक हैं। और भगवत् अनुगृहीत पुष्टिमार्गीय भक्त तौ काल पुरुष और यज्ञ नारायणते परैं। क्षर और अक्षर ब्रह्मते उत्तम, लोक वेदातीत श्री पुरुषोत्तम के सङ्ग 'सोऽश्नुते सर्वान्कामान् सहब्रह्मणा' या श्रुति के अनुसार प्रभु के सङ्ग सर्व कामोपभोग करै हैं। याते श्रीपुरुषोत्तम कूं सबते अधिक उत्तम सर्व श्रेष्ठ लोक वेदातीत जतायवे के अर्थ १३ श्लोकन में १३ लीलान कौ वर्णन है। और २० मे श्लोक में लीला की समाप्ति कही है। यह ४॥ साढ़ेचार कारिकान में अध्यायार्थ, श्लोकार्थ, और श्लोक संख्यातात्पर्यार्थ कह करकैं अब मूल श्लोकन की व्याख्या करै हैं।

प्रवाह मर्यादा पुष्टि मार्गी ३ प्रकार के जीव

पूर्व के १७ मे अध्याय में शरद ऋतु कौ वर्णन कियौ, शरद ऋतु के होयवे तो लीला करवे के अर्थ प्रभु वृन्दावन में पधारे, यह प्रथम श्लोक में वर्णन करै हैं।

इत्थं शरत्स्वच्छ जलं पद्माकर सुगन्धिना।
न्यविशद्वायुना वातं सगोगोपालकोऽच्युतः॥ १॥

या प्रकार की शरद ऋतु करकैं स्वच्छ हैं, जल जामें, कमल की सुगन्ध तें सुगन्धित वायु ते व्याप्त ऐसे लीलाधाम श्री वृन्दावन में अच्युत श्रीकृष्ण नें गौ गोपाल सहित प्रवेश कियौ॥ १॥

व्याख्या यद्यपि या श्लोक में वृन्दावन पद नहीं है। तथापि द्वितीय पद्य में बन पद कह्यौ है॥ और पंचम श्लोक में तौ 'वृन्दारण्यं' वृन्दावन कौ कथन स्पष्ट ही है। याते वृन्दावन ही प्रवेश स्थान है। और जैसैं पूर्व के १२ में अध्याय में

'गोपजाति प्रतिच्छन्ना देवा गोपाल रूपिणः।
ईडिरे कृष्णरामौच नटा इव नटं नृप॥'

तथा "प्रायोऽमी मुनिगणा भवदीय मुख्याः।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

...ग्रन्थालय, ...निधि, करौली ...

इत्यादि वाक्यन करकैं गोप वृत्त पत्ति इत्यादि के पूर्व-जन्म की कथा कह कर कैं इनकौ आधिदैविक रूप कह्यौ है। ऐसैं ही या अध्याय में आधिदैविकी शक्ति रूपा श्रीस्वामिनीन के संग में भगवद्लीला है। याते यह भगवत् शक्ति रूपा-भगवत्प्रियान कौ स्वरूप भी भगवत्तुल्य अलौकिक है नित्य है सदा स्वाभाविक लीला रस धर्मि है। या जतायवे के लिये ही श्री आचार्यजी नें श्री स्वामिनीन कूँ शक्ति पद ते कह्यौ है। याते भगवद्भोग्या श्री स्वामिनीन के स्वरूप कौ ज्ञान, लीला रसानभिज्ञ पुरुषन कूं नहीं होय, याते स्वामिनीन के स्वरूप कूं छिपायवे के अर्थ स्वामिनीन में शक्ति पदकौ प्रयोग कियौ है। और जाकी अपने स्वरूप ते कदापि च्युति न होय, ता कूं अच्युत कहे हैं। याते चरित्र नायक कूं उत्तम जतायवे के अर्थ अच्युत पद कह्यौ है। या ते यह भगवत्तुल्या श्री स्वामिनीन के संग में उत्तम नायक श्री कृष्ण की अलौकिकी लीला है और या लीलारस की अनुभव करवे वारी गौ हैं। याते भी नायक के लीला रस की उत्कृष्टता सिद्ध होय है। अर्थात् गौ के समान भक्त ही या लीला रस कौ अनुभव करसकै हैं। यह भाव है। और अन्तरंग, वहिरंग कार्य में उपयोगि, दो प्रकार के गोप देवता सखा प्रभु के सेवक संग में हैं। तहां अन्तरंग लीला रहस्य के ज्ञाता गोप सखा तौ लीला में सहयोगि होय कर पुष्प-शय्या, पुष्पपल्लवादि के पंखान की रचना करकै व्यजन पाद संवाहनादि सेवा कूं तथा प्रभुशृङ्गारादि सेवा कूं करै हैं। या ते अन्तरंग गोपदेवता सखा, भगवत् प्रिया शक्तीन की निर्भयता के लिये, साक्षिरूप ते संग में रहै हैं। कारण कै देवतारूप गोपवृन्द पुरुषन के संग में रहवे ते, कोई लीला रसानभिज्ञ पुरुष, या गोप्य लीला के होयवे की संभावना भी नहीं कर सकै है। याते ये गोपदेवता साक्षि रूप ते संग में राखे हैं, किन्तु लीला तौ नित्या है, अलौकिकी है, स्वभाविकी है, या ते लीला तौ नित्य ही होय है। याते ये गोपदेवता साक्षि हैं। साक्षि तौ ऐसौ होय है जो स्वार्थ इच्छा रहित होय, और कर्म फल भोग कौ समर्पक होय, और कर्म फल भोग में यथाधिकार प्रवर्तक होय ऐसे ये सब धर्म या गोपमण्डली में हैं। याते ये गोपदेवता साक्षि राखे हैं। जैसें उपनिषद् आदि में परमात्मा कूं साक्षिमात्र कह्यौ है, तैसें या गोप सखा मण्डली के इन्द्रियान्तःकरण निर्दिष्ट हैं या ते ये गोपदेवता, श्री स्वामिनीन की निर्भयता के लिये साक्षि रूप संग में राखे हैं। ये अन्तरंग लीलारसज्ञ प्रेमीसखा तौ प्रभुप्रिया संयोग सुख में ही सुखी रहै हैं, इन कैं अपने सुख की किंचिन्मात्र भी इच्छा नहीं है। याते ये लीला में सहयोगि होय कर साक्षि रूपते संग में रहै हैं। और साधारण सात्विकी गोपदेवता या अन्तरंग लीला रस के अनभिज्ञ गोप हैं ते, पर्वत के

आदिक "शक्ति" क्यों कहा।

"गा" लीलारस अनुभव करने वाले हैं।

अन्तरंग बहिरंग दो प्रकार के सखा

अन्तरंग सखा

बहिरंग सखा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऊपर नीचें खोह कंदरान में कुशकंटकादियुक्त भूमि में चरवे वारे गौ आदि पशून के चरायवे के लियैं संग में है । कारण कै अन्य कार्य के करवे में चित्त की व्यग्रता ते, स्वच्छन्द लीला करनों नहीं बन सकै है। या तें द्विविधगोपदेव सखा संग में हैं। और जल स्थल के भेद ते रमण दो प्रकार कौ है। यातें जल क्रीड़ा में तौ निर्मल और समशीतोष्ण जलन की अपेक्षा हैं या ते शरद ऋतु के होयवे ते जलन में स्वच्छता और अति शीतलत्व कौ अभाव कह्यौ। और स्थलरमण में वायु की अपेक्षा होय है। याते वायु भी कैसौ हैकै कमलनकी सुगंधसे सुगंधित है। और सुगंधभारते मन्दगति है। और नदी सरोवर के जल और कमलन के स्पर्श ते शीतल है। ऐसे शीतलमंद सुगंध युक्त वायु ते वृन्दावन व्याप्त है। ऐसे वृन्दावन में प्रभुनें प्रवेश कियौ किन्तु यहाँ प्रवेश मात्र कह्यौ, प्रभु नें वृन्दावन में प्रवेश करकैं कहा कार्य कियौ सो कुछ नहीं कह्यौ। किन्तु विशेषण धर्मन के प्राधान्यते जल स्थल क्रीड़ा के उपयोगिजे स्वच्छ समशीतोष्ण जल, और शीतलमंद सुगंधित वायु के वर्णन ते विशेष्य रूप गोप्यलीला भी जानी जाय है। और वृन्दावन में प्रवेश भी एसौ कियौ है कि **'न्यविशत, नितरां अविशत्'** आधिदैविक स्वरूपपर्यन्त प्रवेश कियौ। सच्चिदानन्द रूप श्री वृन्दावन के जड़ चैतन्य पदार्थन में सदंश और चिदंश नाम-मात्र कूँ गौण रहगये, सब में केवल आनन्द की ही सत्ता व्याप्त है गयी। काल कर्म स्वभाव गुण ते सब ही रहित है गये। सब नदी सरोवर के जलनमें स्थलन में कमलनमें वनके वृक्षलता निकुंजन में डारी डारी पात पात में फूलन में फलन में सब में 'कृष्ण' पदवाच्य सदानन्द रस प्रवेश है गयौ। या अर्थ में यह तात्पर्य है कै **'परोक्षप्रियाहिदेवाः'** देवतान कूं परोक्ष कथन प्रिय लगै है। या ते ही श्री आचार्यजी ने **'आधिदैविक'** पद कह्यौ है। या आधिदैविक' पद कौ संकेत करवेवारो 'नि' उपसर्ग श्री शुकदेव जी ने कहयौ है ॥ १ ॥

या प्रकार वृन्दावन प्रवेश कह करकैं द्वितीय श्लोक में लीला संबंधि देवतान कूँ सावधान करनों कहे हैं।

कुसुमितवनराजिशुष्मिभृङ्ग द्विजकुलजुष्टसरःसरिन्महीध्रम् ।
मधुपतिरवगाह्यचारयन् गाःसहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम् । २ ।

पुष्पित बन के वृक्षलतान की पंक्तीन की मधुर मकरंद ते मत्त भये भौंरान करकैं और विविध जाति के रंगीले छबीले पक्षि समूहन करकै युक्त है नदी, सरोवर, पर्वत, स्थल जामें ऐसे लीला धाम श्री वृन्दावन में गौ गोपाल श्री बलदेव सहित श्री कृष्ण ने प्रवेश करकैं गायन कं चरावते-चरावते वेणुकूजन कियौ। २।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याख्या मधुपति श्रीकृष्णनें वृन्दावन में प्रवेश करकैं गायन कूं चरावते—चरावते वेणुकूजन कीयौ । यहाँ कोई टीका कर्तानें 'मधुपति' पदकौ अर्थ यदुपति कियौ है । किंतु या अर्थ में सरसता लेश मात्र भी नहीं है। और तात्पर्य शून्य है। याते मधुपद कौ अर्थ वसंत और मधुररस है। याते यह अर्थ भयो कै वसंताधिपति सरस श्रृङ्गारात्मा मधुपति श्रीकृष्णनें अपने गोचारण रूप कुल धर्म कूं करते करते अपने क्रिया शक्ति रूप गोपवृन्द के सहित और ज्ञान शक्ति वेदस्वरूप श्रीवलदेवजी के सहित वृन्दावन में प्रवेश करकैं देवतान के उद्बोधनार्थ वेणुनाद कियौ। यदि वेणुनाद कूं श्रवण करकैं उद्बुद्धभये भी वनदेवी रूपी देवता. वेणुनाद स्थित भगवत्स्वरूप कौ अनुभव करकैं ता अनुभव किये स्वरूप में चिकीर्षित लीला सामग्री कौ अभाव देख करकैं प्रभुस्वरूप में लीला नैमित्तिकी प्रीति नहीं करैंगे, याते श्रीकृष्ण कूँ वसंताधिपति सरस श्रृङ्गारात्मा मधुपति कह्यौ। अर्थात् जैसें वाललीला में वालश्रृङ्गार, गोचारण लीला में ग्वालश्रृङ्गार, नाट्यलीला में नटवर वेष होंनों चहियै, ऐसैही या रमण लीला में कामोद्दीपन कारक, श्रृङ्गार होंनों चहियै तबही प्रभु स्वरूप में वनस्थिता व्रजरमणीन की रमणलीला संवंधिनी रति होयगी । याते प्रभु कूं वसंताधिपति सरस श्रृङ्गारात्मा कह्यौ । जैसैं वसंतऋतु भी सरस हरे-हरे लाल-लाल पुष्प पल्लवन कूं धारण करकैं चक्षुइन्द्रिय कूं रुचिकर नवीन श्रृङ्गार कूं धारण करे है तैसैं प्रभुतौ वसंताधिपति हैं याते प्रभुनें रमणलीला के योग्य सरस श्रृङ्गार धारण कियौ, यहाँ देवता शब्द ते सरिता सरोवर पर्वतस्थल स्थिता वनसुन्दरी देवता हैं । या प्रकार सरिता सरोवर पर्वत स्थिता वनदेवीन के प्रवोधनार्थ वेणुनाद कियौ। और 'यः सर्वज्ञः सर्वशक्तिः' या श्रुति के कथनानुसार परब्रह्म कूँ लीला करवे में क्रियाशक्ति की और ज्ञान शक्ति की सदा अपेक्षा रहै है, याते क्रियाशक्ति रूप गोपवृन्द सङ्ग में हैं गोपन के द्वारा गोचरणादि क्रिया संपादन करै हैं और ज्ञान शक्ति रूप वेदस्वरूप श्रीवलदेवजी संगमें हैं। याते लीलामें प्रतिवंध कर्ता जे वत्सादि रूप में आच्छादित जे मायावी दैत्य है तिनके यथार्थ स्वरूप कूं जान करकैं मारण के अर्थ और भक्तन की रक्षा के अर्थ श्रीवलदेव जी संग में हैं। याते अन्तरङ्ग और वहिरंग क्रिया सिद्धि के अर्थ प्रभुनें क्रिया शक्ति गोपवृन्द में स्थापन करी। और असुर मारणार्थ भक्तरक्षणार्थ ज्ञानशक्ति श्रीवलदेवजी में स्थापन करी है। या प्रकार लीला में प्रतिवंध की निवृत्ति में प्रभु, भक्तन के संग स्वच्छंद लीला करै हैं। यद्यपि श्रीवलदेवजी में क्रियाशक्ति कौ भी स्थापन है, तथापि या अन्तरंग लीला में श्री वलदेवजी कूँ कोई कार्य करवे कौ अधिकार नहीं

वत्सादि रूप में दैत्य — लीला के प्रतिबंधक

बलदेव की अन्तरंग लीला में अधिकार नहीं है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होयवे ते, यहाँ ज्ञानशक्ति मात्र कौ ही स्थापन कह्यौ। और यह कुल परम्परा प्राप्त भयौ जो गोचारणरूप कुल धर्म हैं सो धर्मादि चतुर्वर्ग कौ साधक है। याते या लोक प्रसिद्ध गोचारणरूप धर्मकार्य के बिना, वृन्दावन में जानों चिरकाल पर्यन्त वनमें रहनों, गोप्य लीला कौ करनों, लोक विरुद्ध कार्य है। और गोप्य लीला कौ लोक में ज्ञान होंनों भी रस विरुद्ध है। याते रस कार्य तो गुप्त रहै तबही रसता कूँ प्राप्त होय है। याते चिकीर्षित लीला कौ ज्ञान लोक में प्रकट न होय, और रस विरुद्ध कार्य भी नहीं होय, ऐसी सर्व कार्य संपादन करवे की सामर्थ्य तौ या गोचारणरूप धर्म में है। याते गोचारण मिषते गोप्य लीला करवे के अर्थ प्रभु नें गौ गोपवृन्द और श्रीबलदेवजी के सहित वृन्दावन में '**अवगाह्य**' प्रवेश करकै बनदेवी देवतान के प्रबोधनार्थ वेणु नाद कियौ। यहाँ प्रभुकृत वेणु कूजन मुख्य में तौ बनस्थिता व्रजसुन्दरीन के प्रबोधनार्थ ही। यातेकै सावधान होय कर अपने-अपने शृङ्गार करकैं रमण क्रीडा में संमिलित होयवे के अर्थ हैं। और व्रजस्थितारमणीन के कामोद्दीपन कौ करना तौ प्रासङ्गिक है। अब उद्दीपन विभावादि सामग्री कूं कहै है कै '**कुसुमितवनराजि**' प्रफुल्ल पुष्पन तें पुष्पित जे वृन्दावन के वृक्षलतान की पांती, तिन पुष्पित वृक्ष लतान की पंक्तीन के मधुर मकरन्द रस गंध ते मत्त भये मधुपन के झुंडन करकैं और विविध प्रकार के विविध जाति के रँगीले छबीले पक्षिन के समूहन करकैं युक्त हैं सरोवर सरिता पर्वत स्थल जामें, अथवा पुष्प रस गंध मत्त ते भये मधुकर कुलन करकैं और नाना प्रकार के पक्षि समूहन करकै संसेवित जे सरोवर सरिता पर्वतस्थल हैं तिनमें लीला करवे के अर्थ '**अवगाह्य**' प्रवेश करकैं, सरिता सरोवर पर्वतस्थल स्थित बन सुंदरीन कूं उद्बोधन करायवे के अर्थ प्रभुनें वेणु कूजन कियौ। यहाँ केवल अपने-अपने शृङ्गारादि कार्य करकै लीला में संमिलित होयवे के अर्थ वेणु कूजन है। यहाँ '**बर्हापीड**' श्लोकोक्त सर्व गुण लीला विशिष्ट स्वरूपकौ अनुभव करायवे वारौ, '**वेणुगीत**' नहीं है। केवल कूजन मात्र है ॥ २ ॥

या प्रकार देवतान के उद्बोधन कूं कह करकै, वन सुन्दरी के सङ्ग रमण करवे की इच्छाते प्रभुनें वन सुन्दरीन के उद्बोधनार्थ वेणु कूजन कियौ। ता वेणुकूजन कूं श्रवण करकैं बनदेवी और व्रजदेवी जाग्रत कामवती है गयीं, कारण कै '**मन्मथस्य अग्रदूतः**' वेणुनाद स्वभावते ही कामकौ अग्रदूत है। याते वेणुनाद के श्रवण करते ही उद्बुद्ध कामवती भयी व्रजगोपी प्रभुस्वरूपासक्तभयी, अपनी कामार्त दशाकूं प्रभु के अर्थ निवेदन करवे के लियैं, अपनी समान शील व्यसनवती सखीन के समक्ष में व्रजगोपीन नें प्रभुगुण लीला स्वरूप के वर्णन करवे कौ प्रारम्भ कियौ, यह कहै हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तद्व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम् ।
काश्चित्परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन् ॥ ३ ॥
तद्वर्णयितुमारब्धाः स्मरन्त्यः कृष्णचेष्टितम् ।
नाशकन् स्मरवेगेन विक्षिप्तमनसो नृप ॥ ४ ॥

व्रजकी स्त्री, ता वेणकूजन कूं और कामके प्रकट करवे बारौ ता वेणुगीत कूं भले प्रकार ते श्रवण करकैं, कितनीहू व्रजगोपी तौ काम के वश भयी मूर्च्छिता होयकर जायपरी और कितनीहू व्रजगोपी, भगवत्कृपाते अपने अन्तःकरण में भगवत् अङ्ग सङ्ग प्राप्त करकैं श्रीकृष्ण के परोक्ष में अपनी कामार्त दशाकूं अपने समान शीलव्यसनवती सखीनते वर्णन करवे लगीं । ३ । जे गोपी वर्णन करवे लगीं, तिन गोपीन नें कौन प्रकारते वर्णन कियौ ऐसी प्रकार जानवे की इच्छा में श्रीशुक देवजी कहै हैं कै हे राजन् । व्रजगोपीन के प्रभु गुणलीला स्वरूप के वर्णनारंभ करवे ही, श्रीकृष्ण की भृकुटि कटाक्षादि चेष्टान कूँ स्मरण करकैं भयौ जो स्मरवेग, याते विक्षिप्त चित्त भयी वर्णन करती व्रजगोपी, वर्णन करवे में असमर्थ है गईं याते वर्णन नहीं कर सकीं । ४ ।

व्याख्या-या तृतीय श्लोक में जो 'तत्' पद है सो 'संयोगपृथक्त्व' न्यायते पूर्व श्लोक के और या श्लोक के दोनों अर्थ कौ बोधक हैं । और पूर्वार्द्ध के मध्य में जो 'आश्रुत्य' क्रिया पद है, यह भी देहली दीपक न्याय ते दो बार आवृत्ति करकैं दोनों अर्थ कूं कहै है । याते यह अर्थ भयौ । कै प्रथम प्रभुनें गौ गोप श्री बलदेवजी सहित वृन्दावन में प्रवेश करकै, वनस्थिता सुन्दरीन के प्रबोधन के लिये मन्द मन्द मधुर मधुर वेणु कूजन कियौ, तदनन्तर लीला स्वरूप कौ स्पष्ट अर्थ बोधक, कामिनी कामोद्दीपक वेणु में गीत भी गान कियौ, याते वेणुनाद के दो भेद कहे । या वृन्दाबन स्थित प्रभु के वेणुनाद वेणुगीत कौ आधिदैविक स्वरूप होयवेते, ता वेणुनाद वेणु गीत कूँ वनस्थिता, व्रजस्थिता सुन्दरी नें भले प्रकार ते श्रवण कियौ जिन गोपीन कूं प्रभु नें स्वामिनी भाव ते अङ्गीकार कियौ है, तिन गोपीन में प्रभु नें दूरश्रवण दर्शन की शक्ति भी स्थापन करी है, याते वेणुनाद व्रजगोपीन नें ही सुन्यों । यह वेणुनाद आधिदैविक रसरूपात्मक है, याते व्रज स्त्रीननें ही सुन्यौ, औरननें नहीं सुन्यों । अन्य के श्रवण के अभाव में प्रमाण की अपेक्षाते कहै है के, भगवान् सप्रयोजन ही कार्य करै हैं । प्रभु जीव की भाँति निष्प्रयोजन कार्य कदापि नहीं करै हैं । यहां रमणार्थ गोपीन

वेणुनाद आधिदैविक शक्ति है ॥ किसने यह नाद सुना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के कामभाव कू उद्दीपन करनों प्रभु कौ प्रयोजन है । याते जिन गोपीन कूं प्रभु नें स्वामिनी भावते अङ्गीकार कियौ है, तिन नें ही रति स्थायिभाव कूं स्थापन कियो है । याते जिनकैं रति स्थायि भाव हो, तिनके ही कामभाव कूं उद्दीपन करवे के लिये प्रभु नें वेणुनाद कियौ । और जिनकैं रतिस्थायि भाव नहीं है, तिनकूं वेणुनाद कौ श्रवण करामनों निष्प्रयोजन है, याते वेणुनाद यथाधिकार सुन्यों तौ सबनें किन्तु जिनकैं रति स्थायि भाव नहीं हो तो तिनकूं वेणुनाद कौ श्रवण करामनों भी निष्प्रयोजन है। याते जिनकैं रतिस्थायि भाव हो तिननें ही वेणुनाद सुन्यो, तिनके ही कामभाव कौ उद्दीपन भयौ, अन्य कैं काम भावोद्दीपन नहीं भयौ। कारण कै 'यःसर्वज्ञः सर्व शक्तिः' प्रभु सर्व करण समर्थ हैं, सर्वज्ञ है, सर्व शक्तिमान् है । याते जो चाहैं सो कर सकै हैं, सप्रयोजन ही कार्य करै हैं, जीव की भाँति व्यर्थ कार्य कदापि नहीं करै हैं । यह वेणुनाद केवल नाद मात्र ही नहीं है, किन्तु प्रभु स्वरूप सौन्दर्य सुधा संयुक्त है । याते या वेणुनाद स्थिता अधर सुधा कौ यह स्वभाव है कै सुधा अपने प्रवेश मात्र ते सब कैं भगवदीय भाव संपादन करै है। यदि वेणुनाद सुधा सब कैं भगवदीय भावोत्पादन नहीं करै तब तौ सुधा के स्वभाव की हानि ही है. याते वेणुनाद कूं श्रवण करकै, भगवदीय भाव तौ सब कैं उदय भयौ किन्तु जिनकै रतिस्थायिभाव हो, कामभावोद्दीपन तिनकैं ही भयौ। वेणुनाद कूं श्रवण करकै जैसें लीलोपयोगि व्रज सीमन्तिनी आदि सब देवता अपनों अपनों सेवा समय जान करकैं सावधान भये ऐसें ही आधिदैविक कामदेव के उद्दीपन विभाव होयवेते, लीला सामग्री मध्यपाति होयवेते कामदेव भी जाग्रत भयौ । व्रजभक्त के मानादि अपनोदन कार्य करवे के अर्थ व्रज भक्तन के मन में भगवन्मिलनोत्कंठादि संपादनार्थ स्व सेवा समय में कामदेव भी सावधान भयौ । तहाँ वेणुनाद श्रवण करवे वारी गोपीन के मध्य में 'काश्चित्' कितनी हू व्रजगोपी तौ वेणुनाद कूं श्रवण करकैं मूर्छिता होकर जाय परीं, याते कितनी हू गोपीन कूँ प्रभु लीलास्वरूप कौ ज्ञान नहीं भयौ । यद्यपि मूर्च्छा कौ होंनों रसान्तः पाति होयवेते मूर्च्छा व्यभिचारि भाव रूपा है, याते मूर्च्छा जन्य स्वरूप अज्ञान भी सरस है, तथापि प्रभु लीला स्वरूप ज्ञान के नहीं होयवेते, प्रभु लीला स्वरूप गुण वर्णन नहीं कर सकीं और 'काश्चित्' कितनी हू व्रजगोपी, वेणु गीत कूँ श्रवण करे, पश्चात् भगवत्कृपा विशेषते वेणुगीत में अनुभव किये भगवत्स्वरूप कौ अङ्ग सङ्ग प्राप्त करकैं श्रीकृष्ण के परोक्ष में विद्यमान जे अपने समान शील व्यसनवती अपनी सखी त के समक्ष में प्रभु स्वरूप के सङ्ग आंतररमणानन्द कूं वर्णन करवे लगीं या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

...ग्रन्थालय, भारतीनीड, करौंदी, ...-5

मूर्च्छा के न होयवे में और भगवत्संग की प्राप्ति में भगवत्कृपा विशेष ही कारण है। या प्रकार वेणुनाद वेणु गीत श्रवण करवे वारी गोपीन में कितनी हूँ मूर्च्छिता है गयीं, कितनी हूं मूर्छिता नहीं भयी, कितनीनकूं प्रभु सङ्ग प्राप्त भयौ, कितनीन कूं भगवत्सङ्ग प्राप्त नहीं भयौ, या भेद ते प्रभुनें संयोग वियोगात्मक रस द्वय कौ पोषण कियौ ॥।२॥

जिन गोपीन नें अपनी सखीन ते प्रभु गुण लीला स्वरूप वर्णन करवे कौ प्रारम्भ कियौ हो, तिनकें भी पुनः विशेष काम के उद्बुद्ध होयवे ते, वर्णन करवे वारी गोपी भी प्रभु गुण वर्णन करवे में अशक्त हैगई यह कहे हैं कै 'तद्वर्णयितुम्' ता वेणुनाद वेणुगीत में अनुभव किये भगवल्लीलास्वरूप कौ व्रजगोपीन नें 'अक्षण्वतां' इत्यादि त्रयोदश श्लोकन में त्रयोदश लीलान के वर्णन करवे कौ प्रारम्भ कियौ। तहाँ 'अक्षण्वतां फलमिदं' या श्लोक में स्वरूप सौन्दर्य सुधायुक्त वेणु गीत कौ वर्णन है। और 'वृन्दावनं सखि' या श्लोक में वेणुगीत कौ वृन्दावन विहाररूप कार्य ते वर्णन है। और 'अक्षण्वतां' या श्लोक में कारण ते वर्णन है। याते कै भगवन्मुखारविन्द ही भगवत्स्वरूप कौ प्रतिपादक है। और 'गोप्यः किमाचरदयं, यामें वेणुगीत कौ स्वरूपते निरूपण है। और 'गागोपकैः' या श्लोक में वेणुगीत कौ फलते निरूपण है। ऐसें व्रजगोपीननें चार प्रकार ते वर्णन करवे कौ प्रारम्भ कियौ। व्रजगोपीन नें वेणुनाद द्वारा जा लीला स्वरूप कौ अपने हृदयान्तर में अनुभव कियौ है सो वनसुन्दरीन के सङ्ग रमण कर्ता जो भगवत्स्वरूप है ता वेणुनादस्थित वनदेवी के संगरमण कर्ता प्रभुस्वरूप के वर्णनार्थं, व्रजगोपीन नें भगवल्लीलास्वरूप कौ स्मरण कियौ। ता समय श्रीकृष्ण के आलिंगनादि कार्यन कौ, भावोद्बोधक कारणन कौ, स्वरूपानंद स्थापन रूप फलकौ, और प्रकट हैं सरस शृङ्गारयुक्त अङ्ग जामें ऐसे स्वरूप कौ बारम्बर स्मरण कियौ। याते श्रीकृष्ण के भृकुटि नयन कटाक्ष मोक्ष लीला विलासादि चेष्टितन के पुनः पुनः स्मरण करवे ते प्रकट भयौ जो काम, ता चित्त चाँचल्य रूप काम वेगते विक्षिप्त चित्त भयी व्रजगोपी, भगवल्लीला स्वरूप के वर्णन करवे में असमर्थ है गयीं। वर्णन नहीं कर सकीं। यद्यपि वर्णन आरंभ करवे के मध्य में प्रभु चेष्टित स्मरण जनित स्मर वेगते प्रतिबन्ध भयौ तथापि प्रतिबन्ध की निवृत्ति भये पश्चात् व्रजगोपीन नें चार प्रकार ते वर्णन कियौ। और हे नृप! या संबोधन ते यह सूचित कियौ कै हे राजन! तू नरपति है और यह लीला गोपीपति गोपीवल्लभ प्रभुकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है याते या लीला कौ तू अनभिज्ञ है। यद्यपि तू धर्मभीरु जितेन्द्रिय पुरुष है तथापि या गोप्य लीला रसकूं सावधान होयकर समझियो ॥ ४ ॥

जब व्रजगोपी, भगवल्लीला स्वरूप कौ वर्णन नहीं कर सकीं तब लीला समाधिस्थ, स्त्रीभावापन्न श्रीशुकदेवजी गोपीन की वर्णनाशक्ति जतायबे के अर्थ स्वयं लीलास्वरूप संयुक्त वेणुनाद कौ वर्णन करवे लगे।

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं, बिभ्रद्वासः कनक
कपिशं वैजयन्तीञ्चमालाम्। रन्ध्रान्वेणोरधरसुधया पूरयन्
गोपवृन्दैर्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्तिः ॥ ५ ॥

मस्तक पै मोरपच्छ के मुकुट कूं, नटके से, वरके से बेष कूं, दोनों श्रवणन में एक कन्नेर के पुष्प कूं तप्त सुवर्ण समान पीताम्बर कूं वैजयंती और वनमाला कूं धारण करकैं, वेणु के रंध्रन कूं निज अधर सुधाते पूरण करते गोपवृन्दन नें गान करी है कीर्ति जाकी ऐसे श्री कृष्ण नें अपने चरण कमल चिन्हन करकै रमणीय श्रीवृन्दावन में प्रवेश कियौ ॥ ५ ॥

श्रीविट्ठलेश प्रभु कृत स्वतन्त्र लेखानुवादः। क्योंजी 'बर्हापीडं' या पञ्चम श्लोक की अर्थ संगति पूर्व के चतुर्थ श्लोकते और याते अगारी के षष्ठ श्लोकते नहीं मिलै है सो कहै है कै पूर्व के चतुर्थ श्लोक में 'वर्णयितुं नाशकन्' व्रजगोपी वर्णन करवे में असमर्थ है गयीं यह कह्यौ। याते अगारी पञ्चम श्लोक में 'वृन्दारण्यं प्राविशत्' प्रभुनें वृन्दावन में प्रवेश कियौ यह कह्यौ। यातें अगारी षष्ठ श्लोक में ॥

'इतिवेणुरवं श्रुत्वा वर्णयन्त्योऽभिरेभिरे'

व्रजगोपी या वेणुनाद कूं श्रवण करकै, वेणुनाद कौ वर्णन करती अभिरमण करवे लगीं यह कह्यौ, तब पूर्व श्लोक में कही वर्णन की अशक्ति में और षष्ठ श्लोक में कहे वर्णन करवे में वृन्दावन प्रवेश के कहवेकौ कोई हेतु नहीं है, याते मध्य में यह श्लोक अनुचित है। या मध्यम श्लोक में अर्थ की असङ्गति स्पष्ट ही दीखै है। याते यहां यह प्रतीत होय है, कै या अध्याय के प्रथम श्लोक में वृन्दावन में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवेश मात्र कह्यौ, कोई कर्म विशेष करनों नहीं कह्यौ। द्वितीय श्लोक में '' चुकूजवेणुं '' वेणु कूजन मात्र कह्यौ, गीत गान करनों नहीं कह्यौ। तत्र तृतीय श्लोक में–

" तद्व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयं "

ता वेणु गीत कूं श्रवण करकें व्रज की स्त्री कामवती है गयीं। यहां वेणुगीत कहनों नहीं बन सकै है, याते " आश्रुत्य " या क्रिया पद की आवृत्ति करकें ऐसौ अर्थ भयौ कै तत्पद विशेषण वाच्य ता वेणु कूजन कूं श्रवण करके तथा वेणुगीत कूं सुनकें व्रजगोपीन कैं कामभावोद्दीपन भयौ। याते प्रथम तौ वेणु कूजन के स्वभाव ते ही व्रजगोपीन के काम भाव कौ उद्दीपन भयौ। पश्चात् अग्रिम कार्य करवे कें अर्थ अगारी प्रभु कूं अपने लीलाविशिष्ट स्वरूप कौ गान व्रजरमणीन के द्वारा करामनों है। याते अपनों लीला विशिष्ट स्वरूप वेणु के द्वारा प्रियतम नें गीत गान कियौ पश्चात् ता लीला विशिष्ट स्वरूप कौ अर्थबोधक वेणुगीत भी व्रजगोपीन नें सुन्यों। गीत है सो स्पष्टार्थक रस रूप कौ निरूपक है। याते या वेणुगीत कूं श्रवण करकैं व्रज गोपीन के हृदय में लीलाविशिष्ट स्वरूप कौ अनुभव भयौ। आन्तर रमण में इन्द्रियादिक में ही अनुभव होय है। याते यहाँ 'साक्षात्' देह सम्बन्ध ते अनुभव नहीं है प्रभु नें शब्द द्वारा ही अनुभव करायौ है। याते प्रथम के कूजन मात्र ते जो स्मरोदय भयौ सो स्वाभाविक है। वेणुनाद के स्वभावते ही स्मरोदय भयौ है किन्तु लीला विशिष्ट स्वरूपोद्बोधक वेणुगीत ते जो पुनः स्मरोदय भयौ है सो कार्यविशेष के उद्देश ते है। याते कूजन ते गीत पृथक् है। याते वेणुगीत शब्द द्वारा व्रजगोपीन के हृदय में लीला विशिष्टस्वरूप कौ प्रादुर्भाव भयौ याते ही "कृष्णचेष्टितंस्मरन्त्यः" वेणुगीत द्वारा अनुभव किये कृष्ण स्वरूप के स्मरण ते हृदय में कृष्ण चेष्टितन कौ भी स्मरण भयौ सो हृदय में ही अनुभव भयौ। याते हृदय में अनुभव किये कृष्णस्वरूप के सर्वांश के सर्वांगन के प्रत्यक्ष किये विना व्रजगोपीन ते रह्यो नहीं गयौ। या प्रभु आसक्ति कौ स्वभाव ही ऐसौ है। कै प्रभु स्वरूप के विना व्रजगोपी ठाड़ी होयवे में भी असमर्थ हैगयीं। याते कृष्णस्वरूप कृष्णचेष्टितन के पुनः पुनः स्मरण करवे ते उदय भयौ जो स्मर काम याते कितनीहू गोपी तौ मूर्छिता होयकर जायपरीं और कितनी हू विरली गोपी भगवत्कृपा ते अपने अन्तर में भगवत्संग प्राप्त करकै, ता आन्तररमणानंद कूँ कृष्णस्वरूप कृष्णचेष्टितन कूं अपने समान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शील व्यसनवती अपनी सखीन ते वर्णन करने लगीं। यह तृतीयश्लोक में कह्यौ है किन्तु लीला स्वरूप को वर्णन तौ, गोपी जब कर सकतीं, जब लीला स्वरूप, सर्वांश में (कर चरण मुखारविंद) रूप में अनुभव कियौ होतौ, तब वर्णन कर सकतीं। यथार्थ में तौ प्रियतम नें जो गीत गायौ है सो स्मरोदय के उद्देश ते ही गायौ है। यातें शब्द द्वारा ही स्वरूपानुभव करायौ, प्रत्यक्ष स्वरूपानभव नहीं करायौ। स्वरूप स्मरण मात्र के अर्थ ही करायौ, याते सर्वांश स्वरूप के अनुभव करे विना, व्रजगोपीन में वर्णन करवे की सामर्थ्य नहीं रही, याते वर्णन नहीं कर सकीं। ऐसें चतुर्थ श्लोक में कृष्ण स्वरूप कृष्णचेष्टित स्मरणजनित स्मरवेग, वर्णन की अशक्ति में हेतु कह्यौ। या प्रकार प्रभु नें जब व्रजगोपीन में लीलाकार्य सम्पत्ति कौ अज्ञान देख्यौ, तब प्रभु नें ऐसौ अपूर्वनाद प्रकट कियौ, कै या वेणुनाद कूं श्रवण करकैं सर्व-गुणपूर्ण लीलाविशिष्ट, उद्‌बुद्धरसात्मक स्वरूप, व्रजगोपीन के सर्वेन्द्रिय प्राणान्तःकरण जीव में पूर्ण रूप ते प्रादुर्भूत भयौ, तब व्रजगोपी, प्रभु लीला स्वरूप कूं वर्णन करती अभिरमण करने लगीं। या प्रकार पूर्व के चतुर्थ श्लोक में वर्णनाशक्ति हेतु कूं कह करकै, पञ्चम श्लोक में वर्णन करवे की सामर्थ्य कौ हेतु जो उद्‌बुद्धरसात्मक स्वरूप है ताकूँ कहकर कैं, श्री शुकदेवजी कहै हैं।कै "इतिवेणुरवं" इति नाम पूर्वके पंचम श्लोकोक्त प्रकार कौ यह वेणुरव है। द्विविधश्रृङ्गार रसात्मक वेणुरव है, केवल कूजन मात्र ही वेणुरव नहीं है ऐसें "इति" पद के विशेषण ते, वेणुरव की उत्कृष्टता बोध कराई है। ऐसें चतुर्थ श्लोक में वर्णनाशक्ति कही। पंचम श्लोक में वर्णन करवे कौ कारण स्वरूप ज्ञान, कह्यौ। षष्ठ श्लोक में इति पद के विशेषण ते, यह कह्यौ कै यह केवल वेणुनाद नहीं है। यह वेणुरवतौ पूर्व श्लोकोक्त स्वरूपसौन्दर्यसुधा संवलित है। याते या पूर्वोक्त प्रकार के वेणुरव कूं श्रवण करकैं, वेणुरव स्थित प्रभुलीला स्वरूप कूँ वर्णन करतीं व्रजगोपी अभिरमण करने लगीं। या प्रकार पूर्व के और अगारी के श्लोक ते या मध्य के पंचम श्लोक की अर्थ संगति निर्विघ्न सिद्ध भई। क्यों जी प्रथम प्रभु नें वेणुकूजन कियौ याते स्मरोदय भयौ। तत्पश्चात् स्वरूप कौ स्पष्टार्थ बोधक गीत गान कियौ, तदनंतर सर्वांगपूर्ण रसात्मक स्वरूप कौ ज्ञान करायौ। याते प्रभु नें प्रथम ही व्रजगोपीन कूँ रसात्मक स्वरूप कौ अनुभव क्यों नहीं करायौ। यातें कहै हैं कै न्यूनाधिक भाव ते रसन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के क्रम ते प्रकट करवे में महान् रस प्रकट होय है । याते प्रभु नें या प्रकार के न्यूनाधिक क्रम ते या रस की दुर्लभता जतायी । कारण कै परम काष्ठापन्न स्व तन्त्र महाफलदान दैवे की इच्छा ते ही प्रभु नें ऐसे न्यूनाधिक क्रम ते व्रजगोपीन का महान् रसकार्य साधन कियौ । यदि प्रभु कूं व्रजगोपीन के लियें स्वतन्त्र महाफल दैवे की इच्छा नहीं होती, तब तौ "शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः" जैसें वेणुनाद रस के अज्ञान में इन्द्र शिव ब्रह्म देवतान की जैसें उपेक्षा कर दीनी, ब्रह्मादि देवतान कूं वेणुनाद के रस कौ ज्ञान नहीं करायौ, ऐसें ही यहाँ व्रजगोपीन की भी उपेक्षा कर देते, सो यहाँ वेणुनाद रस के अज्ञान में व्रजगोपीन की उपेक्षा नहीं करी । व्रजगोपीन कूं पूर्ण रसानुभव करायौ है । याते रसवृद्धि के लियें ही क्रम कौ स्वीकार कियौ । यह प्रसंग अगारी के द्वितीय व्याख्यान में स्पष्ट है जायगो । याते स्पष्ट करवे के लियें कहै हैं कै आसक्ति भाव कूं उद्दीपन करनों वेणुकूजन धर्म है । जब आसक्ति भावोद्दीपन कार्य सिद्ध है गयौ, तब वेणुगीत में अनुभव किये प्रभुस्वरूप के वर्णन करवे कौ प्रारम्भ कियौ । ता स्वरूप वर्णनारंभ के मध्य में 'कृष्णचेष्टित स्मरणजनित स्मरवेगते चित्त विक्षेप रूप प्रतिबंध कह्यौ । कृष्णचेष्टित स्मरण ही प्रभु गुण वर्णनाशक्ति में और स्मरवेग में हेतु कह्यौ । तब प्रभु गुण वर्णन करनों तौ अगारी भी आवश्यक है और सर्वदा कर्त्तव्य है । याते जब २ व्रजगोपी प्रभु गुण वर्णन करवे कौ प्रारंभ करैंगी, तब ही तब कृष्णचेष्टित कौ स्मरण भी करनों परैगौ । और जब जब कृष्णचेष्टित कौ स्मरण करैंगीं, तब तब ही स्मरोदय भी होयगौ। तब व्रजगोपी भगवल्लीला स्वरूप कौ कैसें वर्णन कर सकैंगीं । याते या प्रकार ते तौ वर्णन ही नहीं है सकै है । या शंका कूँ दूर करते श्रीशुकदेव जी नें अगारी के "बर्हापीडं" या श्लोक में रसात्मक स्वरूप के वर्णन करवे की, व्रजगोपीन कूं युक्ति बतायी है । यहाँ यह ज्ञातव्य है । साम वेद की उपनिषद् में यह कह्यो है कै—

"स्मरो वा आकाशाद्भूय स्तस्माद्यद्यपि वहव आशीरन्नस्मरन्तो नैव कश्चन शृणुयुर्नमन्वीरन् न विजानीरन् यदावावते स्मरेयुरथ शृणुयुः"

स्मर जो स्मरण है सो हृदयाकाशते अधिक है यद्यपि हृदयाकाश में, बहुत स्मरणीय भाव भरे हैं तथापि स्मरण के विना कोई स्मरण नहीं कर सकै है, न कोई श्रवण कर सकै है, न कोई कूं बोध है सकै है, न कोई जान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकै है। जब हृदय में तिन स्मरणीय भावन कौ उदय होय हैं, तबही श्रवणादिक किये जाँय हैं। कारण कै स्मरण हृदयाकाशकौ नियामक है याते हृदयाकाशते अधिक है। या प्रकार स्मरण कौ नाम स्मर है। और "स्मरणं स्मरः" ऐसें शब्द व्युत्पत्तिते भी "स्मर" पद स्मरणवाचक है। याते या विप्रयोगरसात्मक रमणलीला में श्रीस्वामिनीन के मुखारविन्दन के विषें अपनी अधर सुधाकौ संबन्ध प्रभुकूँ अग्रिमकार्य, में साधन के अर्थ अवश्य करनों है। अर्थात् श्रीस्वामिनीन के मुख में अगारी भगवद्भोग्य अधर सुधा भोगवे की योग्यता सिद्धि के अर्थ प्रभुकूं अपनी अधरसुधाकौ संबंध अवश्य कर्तव्य है। सो अधर सुधाकौ संबन्ध तौ गान करकैं होय सकै है. और प्रभु गुणगान भी, अधर सुधा संवलितनादके अन्तःप्रवेश के बिना नहीं है सकै है। और अधर सुधा संवलितनाद के अन्तःप्रवेश में भी, पूर्ववत "कृष्णचेष्टित स्मरण ते भी" गान करनों नहीं बन सकै है। रह रह करकैं बारंबार स्मरण करवेते तौ चित्त विक्षेप होयगौ। याते "स्मरवेगेन" याते व्रजगोपीन ने स्मरण भी नदी वेग की भाँति पुनः पुनः कियौ। याते नदीवेग की भाँति कृष्ण स्वरूपकृष्ण चेष्टित स्मरण कूं अन्य कामादि प्रतिबन्ध कौ निवर्तक जतायवेके लिये ही श्री शुकदेवजी नें "स्मरवेगेन" यह पद कह्यौ है। अन्यथा नदीवेगवत् कृष्णचेष्टित स्मरण, अन्य कामादि प्रतिबंध निवारक नहीं होतौ तब "स्मरवेगेन" पद नहीं कहते। कारण कै "कृष्ण चेष्टितं स्मरन्त्यो नाशकन्" कृष्णचेष्टितन कूँ स्मरण करती व्रजगोपी, प्रभुगुण वर्णन करवे में असमर्थ है गईं। जब इतने कहवेते ही अर्थ सिद्ध हो। तब "स्मरवेगेन" या पदके कहवे की कहा आवश्यकता ही। "स्मरवेगेन" या पदकूं नहीं कहते। याते स्मरण कूं नदीवेगकी भाँति जतायवे के लियें ही "स्मरवेगेन" पदते स्मरण वेग कह्यौ है। किन्तु प्रथम गोपीन नें जो स्मरण कियौ सो नादकी प्रधानताते नदी वेगवत् नादकौ ही स्मरण कियौ। प्रभुकौ स्मरण नहीं भयौ। किन्तु नादप्रधान हेतु ते ही प्रभुकौ स्मरण भयौ। प्रभुप्रधानताते प्रभुकौ स्मरण नहीं भयौ। याते व्रजगोपी लीला स्वरूप वर्णनार्थ पुनः पुनः कृष्णचेष्टित स्मरण करवे लगीं। जब प्रभुनें व्रजगोपीन की लीला स्वरूप के वर्णन करवे में अशक्ति देखी, तब प्रभुनें स्वयं विचार करकैं, गोपीकृत वर्णन कार्यसिद्ध के अर्थ, ऐसौ अपूर्वनाद प्रकट कियौ कै जा नाद में उद्बुद्धपूर्ण शृङ्गार रसात्मक, उद्बोधक, आच्छादक, विक्षेपक,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शक्तिमान् संपूर्णाङ्ग युक्त स्वरूप, वेणुनाद में अनुभव भयौ । याते यहाँ नाद द्वारा अनुभव किये स्वरूप कौ ही अनुभव है । नादते स्वरूप पृथक् नहीं है । यहाँ देह संबंध के बिना व्रजगोपीन के इन्द्रियान्तःकरण प्राण जीव में स्वरूप को साक्षात् अनुभव है । केवल स्मरणमात्र नहीं है । याते नदी वेगकी भाँति अब स्मरवेग स्मरण कौ वेग नहीं रह्यौ, स्वरूपानुभव करकैं स्मरणवेग थम गयौ । यदि यहाँ स्मर कौ अर्थ काम ही कियौ जाय, तबतौ स्वरूपानुभव किये पै भी, कामके वेगते चित्त विक्षेप ही होतौ, तब तौ व्रजगोपीन की पुनः भी वर्णन करवे में अशक्ति ही होती । याते 'स्मर' पदकौ अर्थ काम नहीं है किन्तु "स्मरण" है । और पूर्व के तृतीय श्लोक में जो "स्मरोदय" पद है याकौ अर्थ काम है । याते "रन्ध्रान्वेणोरधरसुधया पूरयन" या श्लोक में, स्वरूप सौन्दर्याधर सुधाकूं वेणुनाद में पूरित करक, वेणुनाद द्वारा व्रजगोपीन के कर्णन में सुधाकूं प्रवेश करकैं, कर्णद्वारा हृदयान्तर में प्रवेश करकैं ही स्वरूपानुभव करायौ है। याते स्वरूप नादते पृथक नहीं है । यदि व्रजगोपीन कूं नादते पृथक् करकैं स्वरूपानुभव होतौ तबतौ हृदय ते बाहिर में तौ संयोगरसात्मक बाह्यरमण है जातौ । याते या प्रकार के नादकूं प्रकट करकैं शुद्ध पुष्टिस्थान श्रीवृन्दावन में प्रवेश करकैं, पुष्टिमार्ग को अङ्गीकार करनों प्रकट कियौ । यहाँ दूरस्थिता भगवद्विरहिणी व्रजगोपीन कूं जो स्वरूपानुभव करायौ है सो नाद द्वारा ही करायौ है । याते यह सत्वगुण के व्यवधान रहित भगवत्संभोग रूप है । अन्यथा यदि व्रजगोपीन कूं भगवत्संभोग नहीं होतौ तब तौ यावत्पर्यन्तकौ संपूर्ण भगवत्कृत्य निष्प्रयोजन है जातौ । याते व्रजगोपीन कूं साक्षात् अधर सुधाकौ भोग संभव है । जैसें प्रभुनें वृन्दा कूं अङ्गीकार करकैं दुष्ट जालंधरते निवारण करी । ऐसेंहीं या गोपीजनकदम्ब कूं अङ्गीकार करकैं, भगवद्भोग्यसुधा भोग की योग्यता संपादन करकैं प्रभु अपनी कीर्ति के द्वारा सकल विश्व के दोष कूं दूर करेंगे । याते ही या लीला के माहात्म्य कूं निर्दोष जतायवे के अर्थ अन्त में 'गीतकीर्तिः' यह विशेषण पद कह्यौ । याते जो भक्त या लीलाकौ गान करेंगे, ते भक्त, भगवत्स्वरूपानंद मोक्ष सुखके भोक्ता होंयगे । याते या प्रकार के स्वरूपानुभव के होयवेते व्रजगोपीन कौ पुनः पुनः स्वरूप स्मरण करनों निवृत्त है गयौ । याते स्वरूपानुभव होयवेते, व्रजगोपी, निर्विघ्न पूर्वक पञ्चमश्लोकोक्त अधरसुधा संवलित वेणुरवकौ वर्णन करवे लगीं । या प्रकार चतुर्थ श्लोक में वर्णन करवे की अशक्ति कही । पञ्चम श्लोक में वर्णन करवे कौ साधन भगवत्स्वरूपज्ञान

नाद स्वरूप ही है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कह्यौ । षष्ठलोक में अधर सुधा संयुक्त वेणुरव कौ वर्णन करनौ कह्यौ, वेणु-रव वर्णन द्वारा ही अभिरमण कह्यौ । याते 'वेणुरव' कौ स्वरूप वर्णित भयौ । याते पूर्व के नादते या वेणुरव की विलक्षणता ज्ञापित भयी ॥ ५ ॥

मूल श्लोक की व्याख्या—श्रीवल्लभाचार्यजी कहेंहैं के "बर्हापीडं" या श्लोक में श्रीशुकदेवजी नें वाक्यार्थ वर्णन कियौ है "अक्षण्वतांफलमिदं" इत्यादि त्रयोदश श्लोकन में अगारी व्रजगोपी त्रयोदश लीलानकौ वर्णन करेंगी, सो सब और पूर्व के श्लोकन में जो वृन्दावन प्रवेश वेणु कूजनादि वर्णन कियौ है यह सब या बर्हापीडं श्लोक में वर्णन कियौ है। याते संपूर्ण वेणुगीत कौ अर्थ ही वाक्यार्थ है । सो या श्लोक में मुख्य करकै वर्णन कियौ है । या श्लोक में केवल स्वरूपमात्र कौ ही वर्णन नहीं है किन्तु वेणुनाद में भगवत्स्वरूप भगवल्लीला वेणुनाद इनतीनों कौ वर्णन है । याते प्रभुस्वरूप, प्रभुलीला, वेणुनाद इन तीनों के वर्णन ते परस्पर के संबंध में एक प्रकार विशेष वर्णित होय है । यहां वेणुनाद स्वरूप लीला कौ वाचक है । और स्वरूप लीला दोनों वाच्यार्थ हैं । या ते नाद कौ और स्वरूप लीला कौ वाच्य वाचक भाव संबंध है । या ते नाद में ही स्वरूप क्रीड़ा दोनों विद्यमान हैं । अर्थात् नाद, स्वरूप, क्रीडा कौ परस्पर में संबंध होयवेते, वेणुनाद तीनों कौ आधार है । याते वेणुनाद के वाक्यार्थ होयवेते, अर्थ संबंध या प्रकार है । कै "एतादृशंवपुर्बिभ्रद्वेणोरन्ध्रान् अधरसुधया पूरयन् वृन्दारण्यंप्राविशत्" ऐसें पद संबंध है । याते यह अर्थ भयौ कै नटवत्, वरवत्स्वरूप धारण करकै निज अधर सुधाते वेणुके छिद्रन कूँ पूरित करते प्रभु नें वृन्दावन में प्रवेश कियौ । या प्रकार के रूप धारण करवे ते भगवत्स्वरूप कौ वर्णन भयौ । और अगारी वेणुनाद कौ छै प्रकार ते वर्णन है याते, या श्लोक में निज अधर सुधा ते वेणु के छिद्रन कूं पूरण करवे ते, भगवान के ऐश्वर्यादि षट् गुणन कौ पूरण करनों कह्यौ । और वृन्दावन में प्रवेश ते भक्ति रूप चरणन के स्थापन ते वृन्दावन में भक्ति कौ स्थापन, स्वच्छन्द गमन, पुष्टि लीला, वृन्दावन बिहार या क्रम ते वेणुनाद में प्रभु स्वरूप, पुष्टि लीला, वेणुनाद तीनों वर्णित भये । प्रथम वेणुनाद में स्वरूप वर्णन करै हैं कै "बर्हापीडं" बर्ह नाम मयूरपिच्छ कौ है शिरोभूषण जा वपुकौ । ऐसौ रूप धारण करकैं । यह मोर पक्ष कौ मुकुट नृत्य करते मोरपक्ष के समान है । शिर पै

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मोर मुकुट शरीर शोभा बढ़ायवे वारौ है। मोर जब नृत्य करै है तब आनन्द रस में मग्न होयकर ही करै है। याते प्रभु ने मोरपच्छ के मुकुट ते संकेत कर कैं अपनों ऊद्धरसात्मक स्वरूप सूचित कियौ। व्रज गोपी, प्रथम के वेणु कूजन कूं श्रवण कर कैं भगवत्त स्वरूप कौ स्मरण मात्र भयौ। किन्तु यावत्पर्यन्त स्वरूप के सर्व अंगन कौ अनुभव नहीं होय, तावत्पर्यन्त सर्वांग अनुभव करवे की इच्छा ते, व्रज गोपीन कूँ पुनः पुनः स्वरूप स्मरण करनों परयौ। याते कामोद्दीपन होंनों, यावे चित्त विक्षिप्त होंनों, उचित ही है। या ते व्रज गोपीन की स्वरूप लीला वर्णन करवे में सामर्थ्य नहीं रही याते वर्णन नहीं कर सकीं। तब प्रभु ने अधिक नाद कियौ, या नाद के द्वारा गान कर कैं अपने स्वरूप कौ बोध करायौ। सो कहै हैं कै 'नटवरवपुः' प्रभु कौ स्वरूप 'नटवत् है' और वरवन है कारण कै शृङ्गार रस दो प्रकार कौ है। एक केवल रस, दूसरौ धर्म सहित रस है। केवल रस नाट्य में प्रसिद्ध है। धर्म सहित रस संभोग में प्रसिद्ध है। कारण कै नाट्य में नाट्यकर्ता, नर्तक, नायिका, नायक आवलंबन विभाव के बिना, पुष्प चन्द्रादि भावोद्दीपन सामग्री के बिना, स्वयं ही नायिका नायक के वेष धर कैं, नायिका नायक के अन्तर्गत भावन कूं तथा पुष्पादि चन्द्रादि भावोद्दीपक सामग्री कूं अपने भृकुटि कटाक्ष हस्त मुद्रादि द्वारा अंग चेष्टान कूँ दिखाय कर कै ही रसोत्पत्ति करै हैं। यद्यपि नाट्य में पुष्पादि सामग्री नहीं होय हैं तथापि नाट्य में नाट्यकर्ता अभिनय के करवे मात्र ते सामाजिकन कूं रसानुभव करामें है। या ते सामग्री के अभाव ते या विप्रयोग शृंगार रस कूं केवल रस कहै हैं। और आलंवन उद्दीपन द्विविध विभाव अनुभाव संचारिभावादि सामग्री सहित संयोग शृङ्गार रस संभोग में प्रकट होय है याते संयोग शृङ्गार रस समस्त सामग्री सहित होयवे ते धर्म सहित है। भरत सूत्र में भी ऐसैं ही कह्यौ है कै "विभावानुभावव्यभिचारि संयोगाद्रस निष्पत्तिः" द्विविध विभाव अनुभाव व्यभिचारि भाव के संयोग ते रसोत्पत्ति होय है। किन्तु भगवान कौ विप्रयोग रस तौ अलौकिक है। या ते कै मन में भावना करीं सामग्री सत्य रूप होंय हैं। तथापि सामग्री कौ वहिः प्राकट्य नहीं होय है भक्त के हृदय में सामग्री सहित प्रभु आंतर रमण करैं हैं। यदि सामग्री सहित प्रभु स्वरूप वहिः प्रादुर्भूत ह्वैजाय तब तौ संयोग रस ह्वै जाय, याते वियोगावस्था में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रसात्मिका सामग्री सहित, रसात्मक स्वरूप, देह सम्बन्ध के विना, भक्तन के जीवेन्द्रिय प्राणान्तः करण में वियोगावस्था में भी विद्यमान रहै है, और समस्त लीला सामग्री हू भक्तन के हृदय में भगवत्स्वरूपते अभिन्न रूप में स्थित रहै हैं, याते या वियोगात्मक शृङ्गार रस कूं केवल रस कहै हैं । और रसात्मिका लीला सामग्री सहित प्रभु के बहिः प्राकट्य में संयोग शृङ्गार रस होय है । याते संयोग में संभोग रस धर्म सहित है । या प्रकार प्रभु स्वरूप द्विविध शृङ्गार रसात्मक है । याते 'नटवत्' 'वरवत्' रूप कह्यौ । और वर तौ अनन्यभुक्त, अनुच्छिष्ट नवीन स्त्री पदार्थ कौ भोक्ता होय है, प्रथम स्त्री कौ भोग वर ही करै है । याते रस रूप प्रभू ते भोक्ता रूप ते हृदय में पहलें ही विद्यमान हैं । प्रभु ही सब पदार्थन के भोक्ता हैं । याको यह अभिप्राय है । कै लौकिक विरह में स्त्री कूं पुरुष की अपेक्षा याते होय है, कै पुरुष में रस है किन्तु पुरुष रस रूप तौ नहीं है । प्रभु तौ 'रसोवैसः' अलौकिक रस रूप हैं, और रसवान् भी हैं । जैसै फल में रस के होयवे ते फल रसवान् होय है, किन्तु फल रस रूप नहीं है । प्रभु तौ रस रूप है, और स्वयं ही रसवान् हैं । याते 'रसोवैसः' या श्रुति प्रमाण ते प्रभु संयोग वियोग द्विविध शृङ्गार रसात्मक हैं । यद्यपि प्रभु एक समय में ही एक सङ्ग द्विविध रस की स्थिति श्रुति प्रमाण ते सिद्ध हैं तथापि या कथन कोई युक्ति ते बुद्धि में नहीं समावै है । याते युक्ति कहै हैं । कै प्रभु कौ वनस्थित वनितान के संग संयोग है । याते प्रभु संयोग रसात्मक हैं । और या समय प्रभु कौ व्रज स्त्रीनते वियोग है याते प्रभु वियोग रसात्मक हैं । या प्रकार एक समय में ही प्रभु द्विविध रसात्मक हैं । याते युक्ति विरोध भी नही रह्यो । प्रभु के अलौकिक रस रूप होयवेते, रस में और भगवान में भेद नहीं है । याते 'स आत्मानं स्वयमकुरुते' प्रभु अपने रस रूप ते ही रसात्मक स्वरूप कूं धारण करैं हैं । याते रसरूप भगवान् और भगवद्वपुः में भेद नहीं है याते भगवत्स्वरूप उभय रसात्मक है । क्योंजी रस भावात्मक होय है । कर चरणादि युक्त मूर्तिमान नहीं होय है तब अपने भावात्मक रूप ते अतिरिक्त रस में वपु कौ अभाव होयवेते, वपु कौ धारण करनों नही बन सकै है । कारण कै "नटवत् वरवत् वपुर्यस्य" नट कौ सौ वरकौ सो वपु है जाको कथन में स्वरूप ते वपुपु में प्रथक्त्व प्राप्त होय है याते यहां वपु धारण कथन असंगत है । ऐसी शंका में कहै हैं कै पूर्वोक्त रीति ते उद्बुद्धद्विविध रसात्मक प्रभु वपु गोपीन के हृदय में तौ पहलैं ही विद्यमान है, यह रस रूप भावात्मक या रसात्मक अपने स्वरूप कूं प्रभुनें अपनी प्रियान के अतिरिक्त अन्यत्र कहूं

Quote

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकट नहीं कियौ, याते रसरूप लोक में अमूर्ति रूपते ही प्रसिद्ध है। और अपने रसरूप कूं बाहिर प्रकट करनों है सो वपुधारण करनौ है। याते प्रभु अपने अमूर्त रसरूप कूं बाहिर में प्रकट करकैं स्वरूपधारणा करकैं ही वृन्दावन में पधारे हैं, किन्तु अमूर्तरस कौ तौ वृन्दावन में प्रवेश हौंनों नहीं बन सकै है। याते प्रभु द्विविध-रसात्मक स्वरूप धारण करकै, वृन्दावन भूमि में और गोपीन के हृदय वृन्दावनमें प्रभु पधारे। यहां यह समझनों चाहियै, कै यद्यपि शब्दात्मकवेद, मूर्तिरहित ही जगत् में प्रसिद्ध हैं, तथापि "वेदायथामूर्तिधरास्त्रिपृष्ठे" या वाक्य के अनुसार जनलोक में वेदन की मूर्ति हैं, तैसैंही या जगत् में परब्रह्म की अनेक प्रकार की साकारमूर्ति हैं तथापि रसात्मकस्वरूप तौ श्रीवृन्दावन में गोपिकान के हृदय वृन्दावन में ही प्रकट कियौ है, याते व्रजस्थिता भगवद्वियोगिनी गोपीनके हृदय वृन्दावन में प्रवेश करकैं प्रभु आंन्तररमण करै हैं और वनस्थिता व्रज सुन्दरीन के संग अपने रसात्मक स्वरूपकूं बाहिर प्रकट करकै आलिंगनादि दैहिक धर्मन कूं प्रकट करकै संभोग रस भोगै हैं। याते गोपीन के हृदय वृन्दावन में तौ द्विविध रसात्मक प्रभु भोक्तारूपते पहलैं ही विराजैं हैं, किन्तु गोपीन के हृदय में प्रादुर्भूत भये भगवान जैसैं ज्ञानीन कूं मनोमात्र ग्राह्य होयकैं सुख दैंय हैं। इन गोपीन कौ तैसौ सुख नहीं है। इन गोपिन कूं तौ भगवान् सर्वेन्द्रिय भोग्य रूपते सुख दैंय हैं। जैसैं ज्ञानीन कूं प्रभु केवल मनोमात्र ग्राह्य विषय हौय हैं सर्वेन्द्रिय भोग्य नहीं हौंय हैं। याते यावत्काल पर्यन्त प्रिय वस्तु सर्वे-न्द्रिय ग्राह्य नहीं होय, तावत् काल पर्यन्त मनोमात्र की विषयता रूप प्रिय वस्तु दुःख की दैवे वारी होय है। यह तौ सहृदय रसज्ञ पुरुषन के अनुभव सिद्ध है। याते सर्वेन्द्रिय भोगेच्छुक भक्तन के हृदय वृन्दावन में तौ अपने रसात्मक स्वरूप कूं "विभ्रत्" धारण करकैं वहिः प्रकट करकैं ही प्रवेश करै हैं। यहां "विभ्रत्" क्रिया पाद धारण पोषण अर्थ में है। याते विभृत् कौ अर्थ स्वरूप कौ वहिः प्रकट करनों है। याते रूप धारण करवे कौ यह तात्पर्यार्थ है कै जैसै पात्र स्थित रसकूं और के पान करायवे के लियैं, उद्यत भयौ पुरुष, रस भरे पात्र कूं अपने हाथ में धारण करै है, तैसैं मोर पत्र कौ मुकुट, नटवत वपु कूं धारण करकैं श्रीस्वामिनीन के लियैं स्वस्वरूपानंद रस दान दैवै की इच्छाते प्रभुनें अपने रसात्मक स्वरूप कूं वहिः प्रकट कियौ है। या जतायवे के लियैं ही वपुकौ धारण करनों कह्यौ है। जैसै रस पात्र के धारण करवेते, रस दान कार्य कौ अनु-मान होय है, ऐसैं यहाँ रसात्मक रूप के धारण करवेते, श्रीस्वामिनीन के लियैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रसदान कार्य कौ अनुमान होय है। याते रस दान के कारण, रस दान धर्म की समानता ते, भरण पद कौ अर्थ रसात्मक स्वरूप कौ वहिः प्राकट्य है । जैसैं यहां दृष्टान्त में रसपात्र कह्यौ, तैसैं दार्ष्टान्तिक में रस धर्मी भगवत्स्वरूप है। जैसैं दृष्टान्त में पात्रस्थ रस कह्यौ। तैसैं दार्ष्टान्तिक में रस धर्मी भगवत्स्वरूपानंद ही श्रीस्वामिनीन के विषें स्थापनीय है । याते रस धर्मि प्रभु अपने रसात्मक स्वरूप कूं धारण करकैं श्रीस्वामिनीन के अर्थ प्रभु स्वरूपानन्द दान करें हैं । याकूं अगारी ' स्त्रीभावोगूढः पुष्टि मार्गेतत्वं ' या फक्किका में स्पष्ट करैंगे और दृष्टान्त में जैसै "विभ्रत्" कौ अर्थ धारणा करनों है, तैसैं दार्ष्टान्तिक में " विभ्रत् " कौ अर्थ रस धर्मी स्वरूप कूं वहिः प्रकट करनों है और पोषण कौ अर्थ भगवत् अनुग्रह है। याते स्वामिनीन के ऊपर अति कृपा करकैं यह सब कार्य स्वयं प्रभु ही करै हैं। क्योंजी " विभ्रत् " कौ अर्थ धारण करनों है, तब तौ धारण कर्ता रहे प्रभु और धारण कियौ वपु, रह्यौ कर्म, तब वपु धारण कर्ता भगवान् और वपु धारण रूप कर्म ये दोनों पृथक् २ भये । तब रस धर्मि स्वरूप कौ वपु धारण करनों कैसैं बन सकै है। धारण तौ द्वितीय वस्तु कौ होय है, जैसै अंग में धारण किये वस्त्र भूषण अंग ते न्यारे होय हैं। ऐसैं रस रूप ते वपु कोई अन्य वस्तु है। ऐसी शंका में कहैं हैं कै " स आत्मानं स्वयमकुरुते " या श्रुति के अनुसार प्रभु अपने रस रूपकूं ही वपु रूप में स्वयं प्रकट करै हैं। याते भरण कौ अर्थ रस के रूपकूं वहिः प्रकट करनों है। जैसैं जलको ओला जल ते अन्य वस्तु नहीं होय है, केवल जलमय होय है। ऐसैं हीप्रभु के समस्त श्री अंग ' आनन्द मात्र कर पाद मुखोदरादि आनन्द रसमय हैं और समस्त लीला सामग्री भी रस मयी है । यद्यपि व्रज गोपीन के हृदय मात्र में तौ पहलैं भी रसात्मक स्वरूप कौ प्रादुर्भाव हो, किन्तु रस स्वरूप के पुनः पुनः स्मरण करवेते व्रजगोपी, चलित चित्त है गयीं, याते भगवल्लीला स्वरूप कौ वर्णन नहीं कर सकीं, किन्तु या समय में तौ अधर सुधा संमिलित वेणुगीत कूं श्रवण करकैं व्रज गोपीनके सर्वेन्द्रियान्तःकरण प्राण जीव सब में भगवत्प्रादुर्भाव है । याते रति स्थायि भावको पोषण भयौ । यह " विभ्रत् " पदते कह्यौ । या सर्वात्मभाव के पुष्ट होयवेते व्रज गोपीन में वर्णन करवे की सामर्थ्य भयी यह भी सूचित कियौ । केवल रूप मात्र ही धारण नहीं कियौ है, किन्तु भूषण भी धारण किये हैं, सो कहै हैकै " कर्णयोः कर्णिकारं " दोनों श्रोत्रन में कन्नेर कौ कुसुम है जाके ऐसो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नटवर वपु है। अथवा "कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रत्" यहां अलुक् सप्तमी तत्पुरुष समास है। याते यह अर्थ है। कै दोनों कानन में एक कन्नेर कौ पुष्प भी धारण कियौ है। कर्णिकार पद में एक वचन है, याते एक ही पुष्प है। एक ही कन्नेर के पुष्प कूं कभी दक्षिण कर्ण में कभी वाम कर्ण में संयोग वियोग रूपते धारण करै हैं। याते एक ही कन्नेर कुसुम द्विविध शृङ्गार रस कौ बोधक है। ये दोनों श्रोत्र ही द्विविध शृङ्गार रसके अनुभावक हैं। संयोगावस्था में प्रिया प्रियतम के मधुर कोमल तथा प्रणय कोप भरे वाक्य रस कौ अनुभव ये श्रोत्र ही करामें हैं और वियोगावस्था में व्रजगोपीन कूं कामदूत या वेणुनाद के द्वारा भगवत्स्वरूप कौ अनुभव ये श्रवण ही करामें हैं। तथा आसक्ति पूर्वक गोपी कृत भगवद्गुण गानकौ बोध ये श्रोत्र ही प्रभु कूं करामें हैं, या प्रकार द्विविध शृङ्गार रस के उद्बोधक अनुभावक कर्णद्वय में एक कन्नेर पुष्प के स्थापन करवे ते रस उमगवे लगौ है। अर्थात् रसात्मक स्वरूप में श्रवण कर चरणादिक अवयव प्रकट होयवे लगे। याते ऐसौ आनन्दावयव साकार विकारवान् नटवर वपुः आलंबन रस रूप तौ गुप्त रहै तब ही रसत्व कूं प्राप्त होय है। यद्यपि स्वरूप में भृकुटि कटाक्षादि अनुभाव प्रकट हैं, तथापि भृकुटि कटाक्षादि अनुभावन में रस तौ गुप्त ही रहै है। यदि आलंबन रस रूप की नग्न दशा में, गोपी रस रूप कौ दर्शन करैगी, तब नग्न रस कौ ही वर्णन करवे लगैगीं, तब तौ नग्नावलंब रस के प्रकट होयवेते रसाभास है जायगौ। याते रसावलंबन रूपके ढकवे के लियैं पीताम्बर कौ वर्णन करै हैं कै "बिभ्रद्वासः कनक कपिशं" प्रभुनें रस रूप के छिपायवे के लियैं कनक-सुवर्णवत् पीताम्बर कटि में धारण कियौ यदि या समय गोपीन कूं यह ज्ञान है जाय। कै प्रभु उद्बुद्ध रसात्मक हैं। अर्थात् प्रभु में काम रस उद्बुद्ध भयौ है। तब तौ रसत्व कौ साधक जो पीताम्बर है, ताकी गणना नहीं करकै, रसाभासजनक जो नग्नावलंवन रस है ताकौ ही वर्णन करवे लगैगीं। अर्थात् अगारी श्लोकद्वयते वर्णनीय जो संयोग वियोगात्मक द्विविध रस रूप है। ताकौ वर्णन नहीं करैगीं। तब तौ रसाभास ही वर्णित होयगौ। अर्थात् रस के उद्बुद्ध भयेते, प्रभु में अति आसक्त भयीं व्रजगोपी, अति कामार्ति दशा में भगवत्पीताम्बर की गणना नहीं करकै रसात्मक श्रीअङ्गकौ अवलोकन करवे लगैगीं, तौ रसाभास है जायगौ। याते रस तौ गुप्त रहै तब ही रसता कूं प्राप्त होय है। याते रसके गोपनार्थ प्रभु नें तप्त सुवर्ण तुल्य कटि में पीताम्बर धारण किया। यहां कनक तुल्य पीताम्बर कौ पीत रङ्गमाया है। जैसें सुवर्ण मोहजनक होय है। यह शास्त्र प्रसिद्ध है। याते पीताम्बर का अर्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शास्त्रसंमति पूर्वक पीताम्बर कौ पीतवर्ण भी मोहजनक है याते प्रभु नें पीताम्बर धारण कियौ। कारण कै भगवत् साक्षात्कार में माया ही अन्तःपटकी भाँति आडी होय है। याते कटि में पीताम्बर रूपा माया स्थापन करी। सुवर्ण तुल्य पीताम्बर की चमचमाहट में चकाचौंधी रूपा रसाच्छादिका माया है। जब व्रजगोपी पीताम्बर के स्वरूप कूं ही भले प्रकार नहीं देख सकीं, तब माया रूपी पीताम्बर ते ढके रसा-वलंबन रूप कूं व्रजगोपी, कैसें उद्‌घाटन कर सकै हैं, कैसें उघाड़ सकै हैं वा कैसें जान सकै हैं वा कैसें देख सकै है वा कैसे वर्णन कर सकै हैं। अर्थात् वेणुनाद के द्वारा अनुभव किये भगवत स्वरूप में कटिस्थ पीताम्बर के अनुभव कियेते व्रज गोपीन कूं भगवत् इच्छाते ऐसौ मोह मद भयौ कै जा मोह मद के होयवेते व्रज-गोपीन कूं पीताम्बर ते ढके रसावलंबन कौ विचार मात्र भी नहीं भयौ। यह भावार्थ है। अब पीताम्बर सेहू अधिक आच्छादिका वैजयन्ती और वन माला कूं कहै हैं कै "वैजयन्तीं च मालां बिभ्रत्" यहां मध्य के चकारते वैजयन्ती और वनमाला दोनों कौ ग्रहण है। 'वैनिश्चयेन जयन्ति" वैजयन्ती माला सब के जीतवे वारी है। प्रभु स्वरूप तौ साक्षात् आधिदैविक काम के भी मनकौ मथन करवे वारौ है। प्रभु के नेत्र कमल खञ्जन मीन के जीतवे वारे हैं। किन्तु यह वैजन्यती माला, विक्षेप रूपा है। प्रभु स्वरूप कूं चारों ओरते आच्छादन करै है रसात्मक वस्तु के यथार्थ ज्ञान कौ आच्छादन करै है। यहां वैजयंती माला रत्नमयी नहीं है किन्तु पुष्पमयी है। (आपाद लम्बिनी माला व वनमाला प्रकीर्तिता) और बलदेवजी के तीर्थ यात्रा प्रसङ्ग में यही वैजयन्ती कही है॥

'वैजन्यतीं ददौ मालां श्रीधामाम्लान पङ्कजाम्'

ऐसी आपादलम्बिनी पुष्पमयी वैजयंती माला कूं धारण करै हैं। और वन माला कूं भी धारण करै है। ये दोनों माला रसात्मक स्वरूप के यथार्थ ज्ञानकूं आच्छादन करै हैं। या प्रकार रसात्मक रूप में रसद्वय २ रसोद्बोधक ३ रसाच्छादक ४ और रस विक्षेप ५ ऐसें पाँच प्रकार कहे। अब श्लोक के उत्तरार्द्ध में नाम लीला वेणुनाद कौ निरूपण करै हैं कै 'रन्ध्रान् वेणोरधर सुधया पूरयन्' वेणु के छिद्रन कूं अपनी अधर सुधाते पूरित करते प्रभु नें गोपवृन्दन के सहित वृन्दावन में प्रवेश कियौ। तहां वेणु के छिद्र सात हैं तिनमें छैरन्ध्र तौ भगवान् के ऐश्वर्यादि षट् गुणात्मक हैं। और एक छिद्र रस धर्मि स्वरूपात्मक है। याते वेणु के सप्त संख्यक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छिद्रन के तात्पर्यंते वेणुनाद में ऐश्वर्यादि षट् गुण सहित रस धर्मि स्वरूप को स्थापन है। और सुधा तीन प्रकार की है देव भोग्या १, भगवद्भोग्या २, और सर्वाऽभोग्य ३, ऐसैं सुधा तीन प्रकार की है। सुधा कूं तीन प्रकार की कहवेते, सुधा की उत्तमता जतायी है, यहां कोई यह शंका करै के 'सुधया' या पद में तृतीया विभक्ति को एक वचन है। तब सुधा तीन प्रकार की कैसें होय सकै है। तहां कहै हैं के 'दिवु' धातु क्रीड़ा अर्थ में है याते 'दीव्यन्ति क्रीडन्तीति देवाः' जे भक्त भगवत्सायुज्य मोक्ष कूं प्राप्त भये हैं, ऐसे मुक्त जीव, भगवान् के सङ्ग क्रीडा करवे के लियें या पुष्टि लाला सृष्टि में अवतरे हैं। जिन कूं प्रभु नें आधिदैविक देहेन्द्रियादि कौ दान दियौ है ऐसे सरिता सरोवर वृक्ष लता मृगी मेघ गौ गोपादिक देवता हैं। इनकूं आधिदैविक स्त्री देह के अभाव ते वेणुनाद द्वारा स्वरूप सौन्दर्याधर सुधा को पान श्रोत्र द्वारा ही होय है, याते यह देवभोग्या सुधा है। यह देवभोग्या सुधा सब के विषें भगवदीय भावकूं सम्पादन करै है। और संयोगावस्था में श्री स्वामिनीन के विषें प्रभु अपने स्वरूपानन्द कूं स्थापन करकें जा अधर सुधा को मुख द्वारा उच्छिष्टरीति ते प्रभु पान करै हैं सो भगवद्भोग्या सुधाहै। या भगवद्भोग्या सुधा कौ भोग, श्री स्वामिनीन के विना अन्य कोई नहीं करसकै है है। कारण कै यावत्काल पर्यन्त भक्त की अधर सुधा कौ भोग भगवान् नहीं करै तावत्कालपर्यन्त, या भगवद्भोग्या अधर सुधा कौ साक्षात उच्छिष्ट रीति ते भोग करनों भक्त कूं असम्भव है अर्थात् प्रभु के भोग करवे ते ही भक्त के मुख कूँ प्रभु अधरसुधा भोगवे की योग्यता प्राप्त होय है। याते ही अगारी फलप्रकरण में यह कहैंगे कै प्रथम भक्त निष्ठसुधा कौ भोग प्रभु करै हैं तदनन्तर रस की अधिकता में साक्षात् मुखोच्छिष्ट रीति ते भक्त, भगवत् अधरसुधा कौ भोग करै हैं। किन्तु यहाँ फलप्रकरण नहीं है। या प्रमेयप्रकरण में तौ व्रजगोपीन की आसक्ति कौ वर्णन है। व्रजगोपी भगवान् के निकट स्थिता नहीं हैं। तब भगवद्वियुक्ता व्रजस्थिता गोपीन कूं सुधा कौ भोग मुखोच्छिष्ट रीति ते, कैसे प्राप्त होय, याते भगवद्वियुक्ता व्रजगोपी तौ या वेणुनाद स्थिता भगवत् अधरसुधा कूं श्रोत्र द्वारा ही पान कर सकैं हैं। कारण नाद कौ और सुधा कौ सम्बन्ध है। और नाद है सो श्रोत्रमात्र ग्राह्य है। याते वेणुनाद सम्बन्धिनीसुधा भी श्रोत्र द्वारा ही पान करवे योग्य है। किन्तु आधिदैविक स्त्रीदेहधारिणी भगवत्तुल्या भगवद्भोग्या श्री स्वामिनी ही या भगवद्भोग्या अधरसुधा कू भोग सकैं हैं। श्री यमुनाजी ते अतिरिक्त अन्य जे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सरिता, सरोवर, वृक्षलता, मृगी, मेघ, गौ, गोपादिकन कूं या अधरसुधा कौ साक्षात् भोग नहीं है। याते यह अधरसुधा सर्वाऽभोग्या है। अन्य सब तौ श्रोत्र द्वारा देवभोग्या सुधा कौ ही भोग करै हैं। यद्यपि यह सर्वाऽभोग्याधर सुधा, संयोगावस्था में साक्षान्मुखोच्छिष्ट रीति सूँ स्वामिनीन के ही पान करवे योग्य है। तथापि वियोगावस्था में तौ वेणुनाद द्वारा ही सुधा श्रोत्रन ते ही पान करवे योग्य है। या प्रकार सुधा के त्रैविध्य में सर्वाऽभोग्या सुधा कौ समर्थन भयौ। या समय व्रजगोपीन की भगवद्वियोगावस्था में यह अधरसुधा आनन्द स्वरूप ते ही प्रकट भयी है यहाँ यह जानवे योग्य है कै—

"आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्"

"तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयादन्योऽन्तर आत्मानन्दमयः"

यह आनन्द है सो ब्रह्म है ऐसें जानों, या लौकिकानन्द ते परैं विज्ञानमय आनन्द है, विज्ञानमय आनन्द ते परैं अन्य आत्मानन्दमय है इत्यादि अनेक श्रुतीन में श्री पुरुषोत्तम कूं आनन्दरूप, आनन्दमय कह्यौ है। यामें यह विवेक है कै संयोगावस्था में प्रभु सर्वसामग्री सहित प्रकट होंय हैं। तहाँ सामग्री के आनन्दरूपा होयवे ते भगवान् आनन्दमय हैं। किन्तु विप्रयोगावस्था में सर्व सामग्री प्रभु स्वरूपाभेद ते प्रभु स्वरूप के अन्तर्गत रहै हैं याते केवल भगवान् के होयवे तें, भगवान् आनन्दरूप हैं। जैसें सुवर्ण के भूषण समूह कूँ सुवर्णमय कहै हैं, केवल भूषणकार्य के विना सुवर्ण कूं सुवर्ण कहै हैं। या प्रकार या समय व्रजगोपीन कौ भगवान् ते वियोग है याते विप्रयोगरसात्मक प्रभु केवल आनन्दरूप हैं। या आनन्द स्वरूप में ही अधरसुधा प्रकट भयी है। यह द्रवीभूताऽधरसुधा वेणुनाद द्वारा ही व्रजगोपीन कूं प्राप्त है सकै है। यह अधरसुधा आनन्दसारभूता है। आनन्दस्वरूप भगवान् के अङ्ग सम्बन्धि भोग्यपदार्थन में साररूपा है। क्यों जी भगवत् अवयव सम्बन्धि भोग्य पदार्थन में जब सब ही भोग्यपदार्थ साररूप हैं तब सार असार कौ कहनों योग्य नहीं है। तब अधरसुधा कूं ही साररूपा कैसें कह्यौ हौ। ऐसी शङ्का में अपने कहे सारत्व कूं श्री आचार्य जी स्वयं ही कहैहैं। कै यह अधरसुधा ब्रह्मानन्द ते भी अधिक आनन्दायिनी है। याते आनन्दसारभूता है। अन्य भगवत् अवयव सम्बन्धि भोग्यपदार्थ तौ साधनरूप और फलरूप हैं। जैसें भक्तन के बुलायवे में भगवान् के श्री हस्तसाधन रूप हैं किन्तु स्पर्श करवे में तौ फलरूप हैं। तैसें यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अधरसुधा साधनरूपा नहीं है। किन्तु अधरसुधा तौ केवल फलरूपा ही है। यह अधरसुधा कोई अन्य फल की साधनरूपा नहीं है। यद्यपि यह श्रोत्र द्वारा पान करी अधरसुधा, श्रोत्र द्वारा हृदय में प्रविष्ट भयी, वर्णन करते समय व्रज-सीमन्तिनीन के मुख कूं पवित्र करती मुख कूं साक्षान्मुखोच्छिष्ट रीति सूं अधर-सुधा के भोगवे योग्य करै है। याते या श्रोत्रपेयासुधा कौ ही साधन भाव है। तामें भी या श्रोत्रपेया अधरसुधा कौ साधन भाव साक्षात् मुखोच्छिष्ट रीति ते अधरसुधा भोग की प्राप्ति में ही साधन भाव है। किन्तु मुखोच्छिष्ट रीति ते पान करी अधरसुधा तौ केवल फलरूपा ही है। यामें यह सार है। अब सुधा के त्रैविध्य में हेतु कहे हैं कै "अधरसुधया" यह सुधा लोभी अधर के ऊपर अस्थापन करी है लोभी अधर कूं सौंप दीनी है। याते सुधा कहूं आपते भी नहीं जाय सकै है लोभी अधर तौ यथायोग्य विचार कैं ही अधरसुधा कौ दान करै है। याते सुधा तीन प्रकार की है। यद्यपि "अधरसुधया" या पद में एक वचन है याते सुधा भी एक ही प्रकार की है। तथापि भग-वत् अनुग्रह कौ तारतम्य जतायवे के अर्थ तथा सेवानुरूपसुधा फल की प्राप्ति जतायवे के अर्थ, प्रभु नें भक्तन कूं तीन प्रकार के निरोध कौ दान दियौ है। याते प्रेमन्निरोध, आसक्तिनिरोध, व्यसननिरोध, ऐसैं भक्तन कूं त्रिविध निरोध के होयवे ते, जाकूं जैसौ निरोध सिद्ध है ताकूं तैसे ही सुधाफल भोग की प्राप्ति है। याते त्रिविधनिरोध के अधिकारि भेद होयवे ते, सुधा भी तीन प्रकार की है। यह कर्ण द्वारा पान करी, देवभोग्या सुधा सब के देहेन्द्रियान्तःकरण प्राण जीव में तथा इन्द्रिव अधिष्ठाता देवतान में भगवदीयभाव कूं सम्पादन करै है। और जा अधरसुधा कूं अन्य कोई नहीं भोग सकै है केवल भगवद्भोग्या सर्वोत्तम भाववती व्रजगोपी ही भोगै हैं ऐसी सर्वाऽभोग्या सुधा है। या पूर्व-दलात्मिका संयोग शृङ्गार रसात्मिका सर्वाऽभोग्याधर सुधा कौ पान साक्षात् मुख द्वारा उच्छिष्ट रीति सूं श्री स्वामिनीन कूं मुख्य लीला रासलीला में संयोगावस्था में होयगौ। और या समय भगवद्वियोगिनी व्रज स्थिता गोपीन कूं या उत्तर दलात्मिका विप्रयोग शृङ्गार रसात्मिका सर्वाऽभोग्याधर सुधा कौ साक्षा-न्मुखोच्छिष्ट रीति सुं पान करामनों व्रजस्थितान के लियें नहीं बन सके है। यदि साक्षात् मुखोच्छिष्ट रीति ते सुधा कौ पान करायौ जाय, तब संयोग शृङ्गार रस है जायगौ। याते प्रथम तौ विप्रयोगरसात्मक वेणुनाद स्थित मेरे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वरूप कौ व्रज गोपीन कूं श्रोत्र द्वारा अनुभव हृदय में होयगौ, तदनन्तर हृदय में अनुभव किये मेरे लीला स्वरूप कौ मुख द्वारा वर्णन करवेते, सब के मुख मेरे, स्वरूप सौंदर्य माधुर्याधर सुधा ते उच्छिष्ट होय कर पवित्र होंयगे, तब व्रज-गोपीन के मुखन कूं सर्वाऽभोग्याधर सुधा के भोगवे की योग्यता प्राप्त प्राप्त होयगी। या प्रकार मद्वियोगिनी व्रजगोपीन कूं मुखोच्छिष्ट रीति ते अधरसुधा को पान होयगौ। यद्यपि अन्य के मुख ते लीलीस्वरूप के वर्णन करते समय भी लीलास्वरूप के श्रवण करवे तें, लीलास्वरूप कौ अनुभव होय है। याते अन्य कौ मुख परम्परा मात्र ते स्वरूप कौ बोधक है तथापि अन्य कौ मुख स्वरूप साक्षात्कार करायवे वारौ नहीं है। स्वरूप के साक्षात् करायवे वारे तौ अपने दोनों श्रवण ही हैं। याते यहाँ परम्परा मात्र ते स्वरूपानुभवकूं नहीं कह करकैं श्रोत्र द्वारा साक्षात् स्वरूपानुभव कह्यौ। याते यह सर्वाङ्ग सुन्दरी माधुर्य सारा सर्वा भोग्या अधरसुधामद्वियोगिनी व्रजस्थिता सुन्दरीन कूं 'अन्य, कोई प्रकार ते प्राप्त नहीं है सके है। याते ता अधर सुधा कूं नादब्रह्म में जोडवे के लियैं नाद ब्रह्म को उत्पत्ति स्थान जो वेणु ताके छिद्रन में तामें भी छिद्रान्तर वर्ती आकाश में अमूर्त (सूक्ष्म अवयव) रूप ते सुधा वेणु के छिद्रन में पूरित करी। यह सर्वाऽभोग्या अधर सुधा वेणु कौ स्पर्श नहीं करै है। याते कै प्रभु नें व्रजगोपीन के अर्थ पहुचायवे की इच्छा ते वेणु के छिद्राकाश में सुधा पूरित करी है। यद्यपि वेणु के छिद्रन ते सुधा कौ संबंध दीखै है। या सम्बन्ध ते तौ या वेणु ते सुधा कौ स्पर्श सम्भव होय है। तथापि सुधा वेणु कौ स्पर्श नहीं करे है या में कारण कहै हैं कै 'वेणो रित्यसमासात्' या षष्ठान्त वेणुपदके संग कोई पद कौ सम्बन्ध नहीं है। षष्ठान्त वेणुपद न्यारौ है। 'रन्ध्रान्' द्वितीयान्त पद न्यारौ है। 'सुधया' तृतीयान्त पद न्यारौ है। समासान्त एक पद नहीं है। याते वेणु ते सुधा कौ सम्बन्ध नहीं है वेणु ते सुधा पृथक् है सुधा वेणु कौ स्पर्श नहीं करै है याते व्रजगोपीन के समीप पहुचायवे के लिये ही सुधा कूँ प्रभु नें नाद ब्रह्म में जोड़ी है अन्यथा यदि यहां केवल वेणुवादन मात्र ही कहनौं होतौ। तबतौ 'वेणुं वादयन्' वेणुकूं बजायकर वृन्दावन में प्रवेश कियौ। इतने कहवे तें ही जब प्रयोजन सिद्ध हो तब 'अधर सुधयापूरयन्' वेणु के छिद्रन कूं अपनी अधर सुधा ते पूरण करते वृन्दावन में प्रवेश कियौ। इतनों विशेष वाक्य नहीं कहते। याते अधरसुधा गोपीन के लिये ही वेणु के छिद्रन में पूरणकरी है। यह अधर सुधा वेणु के भीतर भी नहीं रहै है। जा समय वेणु छिद्रन के द्वारा वेणुनाद बाहिर निकसै है तासमय नाद ब्रह्म के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सङ्ग ही अधर सुधा भी बाहिर निकस जाय है तत्पश्चात् व्रजगोपीन के श्रोत्रद्वारा हृदय में प्रविष्ट भयीं अधरसुधा, आसक्तिपूर्वक वर्णन करते समय व्रजगोपीन के मुख कूं पवित्र करती मुख कूं भगवत् अधरसुधा के भोगवे के योग्य करती व्रजगोपीन के मुखते बाहिर प्रकट होय है। या प्रकार ते व्रजगोपीन कूँ भगवत्स्वरूप सौन्दर्याधर सुधा माधुर्य कौ भोग मुखोच्छिष्ट रीति सूं होय है। क्यों जी नाद सम्बन्धिनी अधरसुधा तौ मूर्तिरहिता है तब अमूर्तासुधा श्री गोपीजनन के मुख कूं मुख्य रस भोग के योग्य कैसैं करै है। ऐसी आकांक्षा में गूढ़ाभिप्रायते हेत्वन्तर कहै हैं कै यावत्कालपर्यन्त यह सर्वाङ्गपूर्ण भगवत्स्वरूप सौंदर्याधरसुधा, जलधारा प्रवाह की भांति सर्वांश रूप ते हृदय में प्रविष्ट नहीं होय है तावत्कालपर्यन्त भगवल्लीला स्वरूप कूं मुखोच्छिष्ट रीती ते साक्षात् भोगवे की योग्यता प्राप्त नहीं होय है। याते भगवत्स्वरूप के सर्वांश प्रवेश करवे के लिये ही यह गोपीकृत वर्णन है। याकौ यह भाव है कै। यह उद्बुद्धरसात्मक अमूर्त वेणुनाद, जा समय जलधारा प्रवाह की भांति व्रजगोपीन के कर्ण द्वारा हृदय में प्रवेश होय है ता समय व्रजभक्तन के हृदय में सर्वेन्द्रियविषयक, विविधरसभाव के मनोरथ रूप झरना झरवे लगै हैं। इन रसभाव मनोरथ रूप झरनान के झरवे ते, जलप्रवाह की भांति पुष्ट भयौ रस, रसप्रवाह रूप होय है। या रसपूर के होयवे ते, समानशील व्यसनवती के परस्पर में वर्णन करवे ते वर्णनात्मक स्वरूप बाहिर प्रकट होय है। यह वर्णनात्मक रसस्वरूप, सब के हृदय में एक समान रूप ते ही प्रकट भयौ है। यह हृदयस्थित अधररस, मुख्यरस कौ अंशमात्र है यही रसांश सब गोपीन के हृदय में स्थित है। और यह रसांश ही क्रमानुसार सब गोपीन के हृदय में प्रविष्ट भयौ है। किन्तु भगवत्स्वरूप के वर्णन करते समय में एक अनिर्वचनीय उत्कट भाव के उदय होयवे ते साक्षान्मुख द्वारा अधरसुधा के भोगवे की योग्यता प्राप्त होय है। याते पूर्वोक्त रीति ते यावत्काल पर्यन्त, प्रभु स्वरूप सौन्दर्याधर सुधा कौ वर्णन नहीं होय, याते एक अनिर्वचनीय उत्कट भाव कौ उदय नहीं होय, याते स्वरूप सौन्दर्याधरसुधा कौ सर्वांश हृदय में प्रविष्ट नहीं होय, तावत्काल पर्यन्त प्रभुस्वरूप सौन्दर्याधरसुधा के साक्षात् भोगवे की योग्यता भक्तन के मुख कूं प्राप्त नहीं होय है। जब आसक्तिपूर्वक प्रभुस्वरूप के वर्णन करवे ते भक्तिरस कौ प्रवाह पुष्ट होय है तब स्वयं ही भक्तन के मुखते भगवल्लीला स्वरूप कौ हृदयोद्गार रूप वर्णन होय है। या सर्वान्श प्रवेश के लिये ही गोपीकृत वर्णन है। जब वह रसा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्मक स्वरूप सर्वान्श रूप ते हृदयारूढ़ होय है तब भक्तन के हृदय ते कदापि दूर नहीं होय है। तब ही आसक्तिनिरोध सिद्ध है। याते जा भक्त कौ जैसौ निरोधसिद्ध है ताकूँ तैसो ही सुधाफल भोग है। याते अन्तरङ्ग सखान कूं रसानुभव स्वरूप होय है, अन्तरङ्ग गोपन ते अन्य गोपन कू, रसानुभवस्वल्पतर है। और भगवद्भोग्या गोपीन के अतिरिक्त अन्य गोपीन कू भी रसानुभव स्वल्पं है। और सरिता, सरोवर, वृक्षादिकन कूं भी रसानुभव स्वल्पतम होय है। उत्कट निरोध तौ श्री स्वामिनीन कूं सिद्ध है याते अहर्निश सुधाफल भोग करैं हैं। याते ही नवम स्कंध में भक्तिरस निरूपण के अनन्तर दशम स्कंध में निरोध को निरूपण कियौ है। कारण कै शास्त्रविहित मर्यादा भक्तिवानन कूं भी यह सुधारस भोग, निरोधफल, प्रार्थनीय ही रहै है। केवल शास्त्रविहित मर्यादा भक्तिरस की प्राप्ति में ही, या निरोधफल, सुधारस भोग की प्राप्ति नहीं है जाय है। याते ही नवम स्कंध में, सूर्य चन्द्र वंशद्वय सम्बन्धिनी भक्तिरस के वर्णन करे पश्चात् दशमस्कंध में, निरोधलीला को वर्णन कियौ है। यामें एक अन्य भी तात्पर्य कहै हैं। कै पुष्टिलीला सृष्टि में उत्पन्न भये भक्तन कूं भक्तिरस कौ अन्तिमफल, साक्षात् भगवत् अधरसुधा भोग पर्यन्त है। यदि पुष्टिलीला सृष्टिस्थ भक्तन कूं भगवत् अधरसुधा भोग की प्राप्ति नहीं होय, तब तौ भक्तन कौ पुष्टिलीला सृष्टि में उत्पन्न होनों व्यर्थ ही है। तब भक्तिरहित जीवन के जन्म की व्यर्थता कौ तौ कहनों ही कहा है या कथन ते यह जतायौ। कारणकै

" नैष्कर्म्यमप्यच्युत भाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् "

जब मोक्ष कौ साधन जो निर्मल ज्ञान है यदि वह भगवद्भक्ति रहित होय तौ अत्यन्त शोभा कूं प्राप्त नहीं होय है जब भक्तिरहित ज्ञान ही शोभा कूं प्राप्त नहीं होय है तब भक्तिरहित जीवन के जन्म की व्यर्थता कौ तौ कहनों ही कहा है। याते प्रभु में आसक्ति निरोध ही महा फल है। क्यों जी जब निरोध ही मुख्य फल है। या निरोधते मुख्यरस भोग महाफल की प्राप्ति है गयी। तब याते अधिक कोई अन्य फल तौ शेष रह्यौ ही नहीं। तब याते अगारी एकादशस्कंध में मुक्तिलीला और द्वादशस्कंध में आश्रयलीला कौ वर्णन करनों निष्प्रयोजन है। ऐसी शङ्का में श्री वल्लभाचार्यजी कहै हैं कै या निरोध लीला ते अगारी मुक्तिलीला और आश्रयलीला कौ जो वर्णन है सो यहाँ पुष्टि लीला सृष्टि में "विमोचन" रूप ते और "स्वाश्रय" प्राप्ति रूप ते " प्रत्यापत्ति " रूप है। अर्थात् पूर्व भाव संपादन रूप है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाफल तौ निरोध ही हैं। "मुक्ति वा आश्रय" पुष्टि लीला सृष्टिस्थ भक्तन कौ फल नहीं है। सो कहै हैं कै भगवत्स्वरूप में सायुज्य भये, भगवत्स्वरूप अन्तरिस्थित मुक्त जीवन के ऊपर प्रभु नें परम अनुग्रह करकै तिनकूं निजस्वरूप ते मुक्त करके अर्थात् निकास करकैं, अपने सङ्ग लीला करवे के अर्थ, तिनके आधिदैविक देहेन्द्रियादिक संपादन करकैं तिनकूं पुष्टिलीला सृष्टि में प्रकट करकै, तिनकूं नित्यलीला मध्यपाति भक्तन के सङ्ग, या निरोध लीलारसकौ अनुभव कराय करकैं, पुनः अपने स्वरूप में स्थापन करनों है सो पूर्व भाव संपादन करनों है। यह प्रत्यापत्ति कौ अर्थ है। या मुक्ति कौ और आश्रय कौ लक्षण द्वितीय स्कंध में यह कह्यौ है कै "मुक्तिर्हित्वाऽन्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः" अन्यथा रूप जो जीवभाव है ताकूं त्याग करकैं भगवत्स्वरूप में जो स्थिति है, यह मुक्ति कौ लक्षण है। ऐसैं ही यहाँ पुष्टि लीला सृष्टि में, लीला के अर्थ रचे जे भगवदन्तःस्थित मुक्त जीव, तिनके मुक्तित्वभाव कं त्याग कराय करकैं, प्रभुलीलोपयोगि गौ गोप गोपी आदि स्वरूप में जो स्थिति है सो मोक्ष है। यह मुक्ति स्वभाव त्याग पूर्वक भगवत्स्वरूपते जो विमोचन है और लीलोपयोगिस्वरूप में स्थित होय कर प्रभुके सङ्ग लीलारसानुभव करनों है सो मोक्ष है। यह एकादश स्कंध कौ अर्थ है। और "आभासश्चनिरोधश्चयतः" जाते या जगत् के उत्पत्तिं, स्थिति, प्रलय होंय हैं। अथवा जो आधिभौतिक, आध्यात्मिक, आधिदैविक रूपत्रय कौ वेत्ता है। सो सबकौ आश्रय है। यह द्वादश स्कंध कौ अर्थ है। याते पुष्टि लीला सृष्टिस्थ भक्तन के आश्रय तौ श्रीकृष्ण हैं। या प्रकार सायुज्य ब्रह्मानन्दते अधिक भजनानन्ददायिनी रसमयी लीला कौ अनुभव करायवे के अर्थ स्वस्वरूपते जो विमोचन है, सो मुक्ति कौ अर्थ है। और प्रभुके सङ्ग लीलारसानुभव किये पश्चात् भक्तन की स्व स्वरूप में जो पुनः स्थिति है। सो आश्रय है। यह पूर्वभाव संपादनरूपा "प्रत्यापत्ति" है याते एकादश, द्वादश स्कंध की लीला भी व्यर्थ नहीं रही, और निरोध के परम फल में भी हानि नहीं भयी। और मुक्ति के वा आश्रय के लक्षण में भी कोई प्रकारते वैरूप्य नहीं रह्यौ। श्रीवल्लभाचार्य जी नें एकादश स्कन्ध की कारिका में भी कह्यौ है कै—

"निरोधलीला मुक्तानां मुक्ति स्तदनु वर्ण्यते।
मुक्ताना माश्रयः कृष्णो नान्येषामिति शाश्वतः॥"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निरोध लीलाते, प्रपञ्चविस्मृति पूर्वक जिनकी चित्तवृत्तीनकौ श्रीकृष्ण में निरोध है गयौ है ऐसे निरोध्य भक्तन की मुक्ति या एकादश स्कंध में कही है। "तदनु" तत्पश्चात् द्वादशस्कंध में मुक्त जीवन के आश्रय कौ वर्णन है। सो मुक्तन के आश्रय तौ श्रीकृष्ण ही है। निरोध्य भक्तन ते अन्य जीवन के आश्रय कृष्ण नहीं है। और भागवत शास्त्रके स्कंध क्रमते भी यह प्रतीत होय है। कै यद्यपि मर्यादा मार्ग न्यारौ है और पुष्टि मार्ग न्यारौ है। मर्यादामार्गीय मोक्षते पुष्टिमार्गीय मोक्षभी विलक्षण है और विपरीत है। किन्तु स्कंधक्रमते तौ, मर्यादा और पुष्टि दोनों एकसे क्रमते वर्णन किये हैं। याते निरोध लीलाही परम पुरुषार्थ रूपा है। या निरोध लीला रस कूं लोक में प्रकट करवे के अर्थ ही लीलासृष्टि कौ प्रादुर्भाव है। निरोध लीलारसके परम पुरुषार्थ रूप होयवे ते, या निरोध लीला रसकूं लोक में जहाँ कहूँ बृहद्वृन्दावनादि में प्रकट करवे ते ही लीला सृष्टि की सार्थकता है। अन्यथा यदि लोक में निरोध लीलारस प्रकट नहीं होतौ, तबतौ प्राण संबंध रहित देह सृष्टि की भाँति लीलासृष्टि कौ प्रकट होंनों ही व्यर्थ भयौ। अर्थात् यदि लीलासृष्टि कौ प्रादुर्भाव नहीं होतौ, तबतौ लीलासृष्टि की अनवतार दशा में निरोध लीलारस प्राप्ति के विना अगारी के आधुनिक जीवन कौ उद्धार कैसें होतौ। याते लोकोद्धारार्थ ही लीलासृष्टि कौ प्रादुर्भाव है। क्योंजी यदि लीलारसकी प्राप्ति के लिये ही लीलासृष्टि कौ प्रादुर्भाव है तबतौ लीलासृष्टि में प्रकट भये सबही जीवन कूं अधरामृत मुख्य फल भोग की प्राप्ति होंनी चाहियै, यामें फल भेद कैसें भयौ। और आधुनिक जीवलोक सृष्टि में भी मुख्य रस भोग की प्राप्ति कोई कूं भी देखवे में नहीं आवै है। तब लीलासृष्टि कौ प्राकट्य कैसें सार्थक भयौ। ऐसी शंका में मुख्यरस भोग में दुर्लभत्व सूचित करते कहै हैं कै प्रभु निज स्वरूपान्तःस्थित मुक्त जीवन कूं निज लीला रसानुभव करायवे के अर्थ, निज स्वरूपते विमुक्त करकैं तिनके आधिदैविक देहेन्द्रियादि संपादन करकैं, तिनकूं लीलासृष्टि में प्रकट करकैं, वेणुनाद द्वारा तिनमें पुनः ब्रह्मानन्द कूं प्रकट करकैं तामें भी आधिदैविक स्त्री देह की प्राप्ति में, आधिदैविकी लक्ष्मी शक्ति के प्रवेश भये ते, मुख्यलक्ष्मी की भाँति प्रभु के सङ्ग मुख्य रस भोग करै हैं। याते निरन्तर मुख्य रस भोगतौ भगवद्भोग्या श्रीस्वामिनीन कूं ही प्राप्त होय है। और भगवद्भोग्या श्रीस्वामिनीन के अतिरिक्त अन्य जे गोपी हैं तिनके आधिदैविक स्त्री विग्रह के होते भी ब्रह्मानन्द रूपा लक्ष्मी शक्ति के प्रवेश विना मुख्य रस भोग की प्राप्ति नहीं होय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। याते अन्य जे गौ गोप पशु-पक्षि वृक्षलतादिक हैं तिनके आधिदैविक विग्रहतौ हैं, किन्तु आधिदैविक स्त्री देह के विना तथा ब्रह्मानन्दरूपा मुख्य लक्ष्मी शक्ति के प्रवेश विना मुख्य रस भोग प्राप्त नहीं होय है। यहाँ "मुख्य लक्ष्मी" पद श्रीपुरुषोत्तम की स्वकीया प्रिया आलम्बनरूपा श्रीराधिका परक है। श्री नारायण की प्रिया परक नहीं है। मुख्य लक्ष्मी तौ श्रीवृषभानुनन्दिनी राधिकाजी हैं। यह श्री राधा तौ श्रीकृष्ण कौ स्त्री गूढभावात्मक निज हृद्गत स्वरूप सौन्दर्य हैं। कारण कै

'कृषिर्भूवाचकः शब्दोणश्चनिर्वृतिवाचकः'

श्रीकृष्ण सदानन्द हैं। स्त्री पुरुष भावद्वय युक्त हैं। याते मुख्य लक्ष्मी श्री राधिका हैं। यामें अन्य श्रुति भी प्रमाण है कै 'श्रीश्चते लक्ष्मीश्चपत्न्यौ' श्रीजगत्सम्पत्ति रूपा नारायण प्रिया है। राधा लक्ष्मी श्रीकृष्ण की स्वकीया प्रिया है। ब्रह्मवैवर्त कृष्ण जन्म खण्ड में यह वाक्य है कै

'श्रीकृष्णतेजसोऽर्द्धेन सा च मूर्तिमती सती,
एका मूर्तिर्द्विधाभूताऽभेदोवेदे निरूपितः।
इयं स्त्री वा पुमान् किं वासा वा कान्ता पुमानयम्।
राधा भजति श्रीकृष्णं स च ताँश्च परस्परम्॥

यह पुराण प्रमाण है। तथा-

'तस्माद्रूपमभूद्द्वेधा राधामाधवरूपकम्।

यह संमोह तन्त्र प्रमाण है। याते ब्रह्मानन्द रूपा मुख्य लक्ष्मी श्रीराधा, भी सदानन्द रूपा हैं श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम के समान ही रसात्मिका हैं। या प्रकार श्रीराधा लक्ष्मी के प्रवेश ते भगवद्भोग्या श्री स्वामिनी निरन्तर भगवन अधर सुधा रस कौ भोग करै हैं और श्री राधा लक्ष्मी की अंश रूपा जे रुक्मिणी आदि महिषी हैं तिनकूं विवाहिता न्याय, मर्यादा रीतिते ही मुख्य रस भोग की प्राप्ति होय है। अहर्निश मुखरस भोग की प्राप्ति तौ श्रीस्वामिनीन कूँ ही है। याते ही श्री शुकदेवजी नें या प्रमेय प्रकरणके अन्तिम अध्याय में मुख्य रस भोग के, प्रसङ्ग में स्त्रीनकौ ही विशेष माहात्म्य वर्णन कियौ है। कारण कै यह निरोध प्रभु नें स्त्रीनमें ही स्थापन कियौ है। याते भगवत्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृत भोग के अनन्तर रस की अधिकता में प्रभु स्वामिनी भावकूँ प्राप्त होंय हैं। और श्रीगोपीजन भक्त, पुरुष भाव कूं प्राप्त होय हैं। याते स्त्रीभावापन्न रसात्मक प्रभु कूं गोपीजन भोगै हैं। या माहात्म्यकूं जानकै ही अग्निकुमारन के हृदय में स्त्री भाव कौ उदय भयौ। कारण कै रसात्मक प्रभु, स्त्री पुरुष उभयभावात्मक हैं। याते पुरुष देहते वा स्त्री देहते कोई प्रकार ते भोगवे योग्य नहीं हैं। कारणकै पुरुष में तौ ऐसौ रस नहीं है। कै जा रस भोगते रसकी अधिकता में पुरुष स्त्री भाव कूँ प्राप्त है जाय, और स्त्री पुरुष भाव कूं प्राप्त है जाय. ऐसौ भगवान के समान रस भोग करनों, पुरुष में सम्भव नहीं है, और पुरुषोत्तम प्रभु पुरुष हैं। याते पुरुष देहसे तौ पुरुषोत्तम प्रभु की अधर सुधा कूँ अन्य पुरुष नहीं भोग सकै है यदि पुरुष देहते ही परुषोत्तम प्रभु की अधर सुधा कौ भोग है जातौ, तब तौ अपनी अधरसुधा कूं पुरुषोत्तम प्रभु आप ही नहीं भोग लेते। याते अपने पुरुष देहते तौ पुरुषोत्तम प्रभु कोई प्रकार ते भोग्य नहीं है सकै है। और पुरुषोत्तम पुरुष हैं। याते स्त्रीनके भोक्ता हैं, स्त्रीन के भोग्य नहीं हैं। पुरुष की स्त्री भोग्या हैं। याते रसात्मक प्रभु कूं स्त्री भी नहीं भोग सकै हैं। याते रसात्मक प्रभु अपने कोई प्रकार ते भोगवे के योग्य नहीं हैं। किन्तु भगवान् के भोग करते समय रसकी अधिकता में प्रभु जब स्त्री भावकूं प्राप्त होय हैं, और स्वरूपसौन्दर्याधरसुधा रस के भोगते गोपीन कूं जब पुरुषोत्तमावेश ते पुरुषोत्तमभाव प्रकट होय है तब स्त्री भावापन्न रसात्मक प्रभु कूं गोपी भोगै हैं। या माहात्म्य कूं जान करकैं ही, अग्नि कुमारन के हृदय में स्त्री भाव प्रकट भयौ। महा कूर्म पुराण में यह भी वाक्य कै-

'अग्निपुत्रा महात्मान स्तपसा स्त्रीत्वमापिरे'

"भर्तारं च जगद्योनिंवासुदेवमजं विभुं"

याते ही अगारी साधन प्रकरण के १६ मे अध्याय में प्रभु प्राप्ति के अर्थ अग्निकुमारिकाननें भगवत्प्रसाद शक्तिरूपा कात्यायिनी देवी की प्रार्थना करी है। याते या निरोधते ही मुख्य रस भोग महा फल प्राप्त होय है। क्योंजी जब व्रज-गोपिन कूं मुख्य रस भोग महाफल प्राप्त है गयौ, तब अगारी भ्रमरगीत में श्री उद्धवजी के द्वारा गोपिन कूं ज्ञानोपदेश कौ परिश्रम क्यों कियौ। ऐसी शंका में, कहे हैं कै भ्रमरगीत में भी निरोध कौ ही वर्णन है। ता ज्ञानोपदेश कूं श्रवण करकैं गोपीननें ता ज्ञानकूं तप्त तैल में परे जल विन्दु की भाँति मानकैं अत्युत्कट भाव कौ वर्णन कियौ है। प्रभुनें व्रजगोपीन के विरह दुःख दूर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करवे के लियें ज्ञानोपदेश कियौ है कै "भवतीनां वियोगो मे नहि सर्वात्मना क्वचित्" हे गोपिऔ ! तुम्हारें सर्वात्म भाव के प्रकट होयवेते मेरौ तुमते कदापि वियोग नहीं है । तुमनें मोते वियोग वृथा ही मान राख्यौ है, मैं तो तुम्हारे देहेन्द्रियान्तःकरण प्राण जीव सब में विद्यमान हूँ । और अन्तरदृष्टि ते देखौ तौ, आत्मा और ईश्वर के सम्बन्ध ते, देह कौ सम्बन्ध गौण है। याते विरह दुःख दूर करवे के अर्थ ज्ञानोपदेश दियौ। यद्यपि या निरोध ते, गोपीन कूं मुख्य रस भोग प्राप्त है, तथापि भगवत्स्वरूप कूं माहात्म्य ज्ञान पूर्वक जान करकैं अधर सुधा के पान करवे में महान् रसास्वादन होय है याते ही अगारी प्रभु कूं ज्ञानोपदेश दैवे में हठ भयौ। याते भगवन्माहात्म्य कूं जान करकैं ही अगारी अग्निकुमारिकाननें मुख्य रस भोग फल प्राप्ति के अर्थ कात्यायिनी आधिदैविकी स्त्री की प्रार्थना करी है । या प्रकार प्रभु अपने रूपते भक्तन कूं वश में करकैं अधरामृत पान कराय करकैं भक्तन की स्वच्छंदता संपादन करै हैं या स्वच्छन्दता कूं कहै हैं कै—

"गोपवृन्दैः सहवृन्दायाः स्त्रिया अरण्यं प्राविशत्"

गोपवृन्दन के सहित, वृन्दा स्त्री के वन में प्रवेश कियौ । यहां परोक्षवाद में अर्थ है याते स्थानत्रय कौ बोधक है। याते प्रथम वृन्दानाम्नी जालंधर दैत्य की स्त्री के वनमें प्रवेश कियौ १ वनस्थिता सुन्दरीन के समूह में प्रवेश कियौ २ और व्रजस्थिता सुन्दरीन के मन समूह में प्रवेश आवेश कियौ ॥ ३ ॥

प्रथम वृन्दावन में प्रवेश करकैं गोपवृन्द के संग स्थित रहे । पश्चात् वेणुनाद के द्वारा वन सुन्दरी समूह में कामोद्दीपन करकैं रमणलीला में सावधान करकैं वन सुन्दरी समूह में संयोगात्मक रूपते प्रवेश कियौ । व्रजस्थिता सुन्दरीन कूं वेणुनाद द्वारा या रमणलीला स्वरूप कौ बोध करायकैं लीलास्वरूप के गान करायवेके अर्थ प्रेमासक्ति भावोद्दीपन करकैं व्रज सुन्दरीन के हृदय में विप्रयोगरसात्मक स्वरूप ते आवेश कियौ । या प्रकार वृन्दावन में प्रवेश करकैं प्रभु स्वयं स्वच्छन्द विहार करै हैं। या प्रकार भक्तिरूप चरणारविन्द कूं वृन्दावन में स्थापन कियौ । वन सुन्दरीन के संग संयोग करकैं भगवत्कृतरमण सम्भोग द्वारा रस की अधिकता में पुरुष भावात्मक स्वाच्छन्द्य सम्पादन कियौ । और व्रजसुन्दरीन के हृदय वृन्दावन में प्रवेश करकैं भगवद्वियोगात्मक स्वरूपासक्ति रूप स्वाच्छंद्य सम्पादन कियौ । यह "प्राविशत्" क्रियापद के "प्र और आङ्" उपसर्ग कौ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ है। ऐसें स्वाच्छन्द्य में निर्भयता की भी अपेक्षा है। याते गोपवृन्द के साहित्य ते निर्भयता भी सम्पादन करी। कारण कै लीलारसानभिज्ञ पुरुष या गोप्यलीला में दोषारोपण नहीं करैं। याते ये अन्तरङ्ग लीला प्रेमी गोप सखा, साक्षीरूप ते संग में हैं। याते कै पुरुषन के संग में रहवे ते या गोप्यलीला की कोई सम्भावना भी नहीं करैगौ। और साधारण गोपवृन्द गोचारणादि कार्य के अर्थ संग राखे हैं। कारण कै अन्यकार्य के कर्त्तव्ये में चित्त की व्यग्रता ते स्वाच्छन्द कौ निर्वाह नहीं है सकै है। याते दो प्रकार के गोपवृन्द संग में राखे हैं। या प्रकार सर्व कार्य संपादन करकैं श्रीस्वामिनीन की स्वतन्त्रता संपादन करकैं प्रभु आप वृन्दावन में स्वतन्त्र हैं। याते गोपवृन्द कौ सङ्ग लैनों सार्थक भयौ। क्योंजी "**तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनां**" तथा "**यदा यदा हि धर्मस्य**" इत्यादि वाक्यन में प्रभु को प्रादुर्भावतौ, धर्मादि चतुर्वर्ग और भक्ति के स्थापनार्थ होय है। याते या लीलासृष्टि जगत् में धर्मादि भक्ति कौ स्थापनतौ कियौ ही नहीं, तब भगवान् की कृतकार्यता कैसैं सिद्ध भयी। ऐसी आकांक्षा में कहैं कै "**स्वपदरमणम्**" अपने चरणारविन्द के चिन्ह हैं जामें ऐसे लीलाधाम श्रीवृन्दावन में प्रवेश कियौ। भगवच्चरणारविन्द के संबन्ध ते वृन्दावन भूमि अनुरागवती भयी, याते भूमि आर्द्र भयी, आर्द्र भूमि में प्रभु चरणारविन्द चिन्हन कौ प्रादुर्भाव भयौ। याते वृन्दावन भूमि में "**स्वपदरमण**" सिद्ध भयौ। वनसुन्दरीन के हृदय वृन्दावन में रमण करवे ते विविध प्रकारके वंध विशेषते हृदय के ऊपर चरणन कौ स्थापन भयौ। याते कुंकुमाङ्कित चरण चिन्हन ते "**स्वपदरमण**" सिद्ध भयौ। व्रजस्थिता गोपीन के अन्तःकरण में वेणुनाद कूं श्रवण करकैं आधिदैविक कामभाव जाग्रत भयौ। याते व्रजगोपीन के अन्तःकरण में प्रभु लीला स्वरूप कौ प्रादुर्भाव भयौ, याते चरणारविन्दन कौ भी प्रादुर्भाव भयो याते स्वपदरमण सिद्ध भयौ। या प्रकार वृन्दावन भूमि में बनदेवीनके हृदय में, व्रजगोपीन के मनमें चरणन के स्थापनते, भक्ति कूं स्थापन कियौ। भगवच्चरणारविन्द भक्ति रूप हैं। भगवत्चरण चिह्नन के दर्शन करकैं आधुनिक जीवन कैं भी भक्ति उत्पन्न होय है। जा भूमि में, जा हृदय में, जा जीवके मन में भगवच्चरणारविन्द विराजैं हैं सो वृन्दावन रूप है। या प्रकार दैवी सष्टि जगत् में चरणन के स्थापन ते भक्ति कौ स्थापन कियौ। अब धर्म स्थापन कूं कहै हैं कै '**गोपवृन्दैःसह**' गोपवृन्दन के सहित वृन्दावन में प्रवेश करकैं गोप बालकन में गौचारणादि रूप धर्म

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri
...नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

स्थापन कियौ। अन्तरङ्ग लीला प्रेमी गोपवृन्द में भगवत् सेवा शृङ्गारादि करनो भगवद्धर्म स्थापन कियौं । वनसुन्दरीन में जो लज्जाते मुख गोपनादि स्त्री धर्म हो ताकूं अन्तरङ्ग गोपन के सङ्गते निवारण करकैं स्वाच्छंद्य सम्पादन कियौ। व्रजगोपीन के सर्वेन्द्रियान्तःकरण प्राण जीव में प्रवेश करकै भगवत्त्व पुरुष भाव रूप काम भाव सम्पादन कियौ। नायिका में रसाधिक्यके प्रकट होयवे ते पुरुष भाव कौ आवेश होय है। तबही नायिका स्वतन्त्रा होय है । ऐसौ रस पुरुष में नहीं है। याते ही श्रीशुकदेवजी नें प्रभु की गोप्य लीला आधिदैविकी शक्ति व्रजगोपीन के सङ्ग कही है। अब शेष पुरुषार्थन कूं कहै हैं कै '**गीतकीर्तिः**' व्रजगोपीन नें गान करी है कीर्ति जाकी। आसक्ति पूर्वक व्रजगोपीन कृत विप्रयोग रसात्मक प्रभु लीला स्वरूप कौ गान ही पुरुषार्थ रूप, धन है। श्री वनसुन्दरीननें गान करी है कीर्ति जाकी। आसक्तिमती श्रीबनसुन्दरी कृत संयोग रसात्मक प्रभु के चरित्रन कूं श्रवण करकैं भगवदासक्त भगवदीय जीवन कूं काम भावरूप पुरुषार्थ सिद्ध होय है। श्री शिव, शुक, सनक, नारदादिनें गायी है कीर्ति जाकी ऐसे श्रीकृष्ण प्रभु की कीर्ति कूं श्रवण करकैं आधुनिक भगवदीय जीवनकूं ब्रह्मानन्दते अधिक सर्वेन्द्रिय भोग्य मनोरथ रूप मोक्षफल की प्राप्ति होय है। या प्रकार '**गीतकीर्ति**' या पद ते अर्थ, काम, मोक्ष, कौ स्थापन कह्यौ। अथवा वेणुनाद स्थित स्वरूप सौन्दर्याधरामृत माधुर्य कौ वेणुनाद द्वारा व्रजगोपीनकूं अनुभव कराय करकैं व्रजगोपीन में स्वरूपानन्द स्थापन करकैं मोक्ष स्थापन कियौ। वन सुन्दरीन में स्वच्छन्द काम भाव स्थापन कियौ। गोपवृन्द सहित कहवेते, गोपवृन्द में गोचारणादि रूप, प्रभु सेवा शृंगारादि रूप दास्य धर्म स्थापन कियौ अथवा व्रजस्थिता, वनस्थिता गोपीन में 'स्वपद रमणं' या पद ते स्वपद रमणरूप उद्बुद्धरसात्मिकासक्ति रूपा भक्ति स्थापन करी। या प्रकार बनस्थितान में अर्थ, काम, आसक्ति पूर्वक गान रूप मोक्ष, ऐसैं पुरुषार्थत्रय स्थापन कियौ। व्रजस्थितान में एक आसक्ति पूर्वक गानरूप मोक्ष स्थापन कियौ । गोपवृन्दन में एक दास्य धर्म स्थापन कियौ। ऐसैं पाँच पुरुषार्थन कौ स्थापन कह्यौ।

'**वर्हापीडं**' या श्लोक की व्याख्या के अन्त में एक फक्किका श्रीवल्लभाचार्यजी नें कही है कै—

"**स्त्रीभावो गूढः पुष्टिमार्गे तत्वमिति कृष्णपदार्थः क्वचिद्धि वृतः**"

या श्लोक में सर्वा भोग्य सुधा पूरित वेणुरवके स्वरूप कौ निरूपण है सो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाक्यार्थ है सो या श्लोक की समाप्ति में बोध करायौ है । कै 'स्त्रीभावो गूढः' व्रज स्त्रीनके हृदय में वेणुनाद द्वारा पूरित कियौ जो सर्वाऽभोग्य सुधारूप गूढ भाव, सो पुष्टि मार्ग अनुग्रह मार्ग में तत्व है अनारोपित-स्वाभाविक मुख्यफल रूप है यही कृष्ण पद कौ अर्थ है। यद्यपि कृष्णस्वरूप सर्वत्र सबके हृदयमें है किन्तु बहुत कहबे में कहा है सब के हृदय में रमण करते समय में भी ढक्यौ ही रहै है किन्तु या वेणुनाद के श्रवण करेते श्रोत्रद्वारा 'क्वचित्' व्रजस्त्रीन के हृदय स्थान में प्रकट होय है सो या श्लोक में निरूपण कियौ है। अर्थात् या समय सर्वाऽभोग्य सुधा रूप प्रभु स्वरूप वेणुनाद द्वारा प्रकट भयौ है। याते वेणुनाद ही मुख्य फल के अनुभव करायवे वारौ है, याते स्वरूप, क्रीडा, वेणुनाद, तीनों के मध्य में स्वरूप क्रीडा दोनों उपसर्जनीभूत गौण हैं। स्वरूप क्रीडा दोनों की अपेक्षाते वेणुनाद ही मुख्य है। या हेतुते स्वरूप क्रीडा वेणुनाद तीनों के अनुभव में भी, स्वरूप क्रीडा दोनों कूं गौण करकैं, व्रजगोपीन नें मुख्य रूपते वेणुरवके वर्णन करवे कौ आरम्भ कियौ। या वर्णन के द्वारा ही व्रजगोपीन कौ अभिरमण है। सो 'इतिवेणुरवं' या श्लोक में कह्यौ है। ५। अथवा 'स्त्रीभावोगूढः' भगवान कूं स्त्री भाव, लक्ष्मी समान भावते होनों इच्छित है। रसके उद्रेकमें गोपीन के भोग्य होनों इच्छित है। ऐसौ स्त्रीभाव पुष्टि मार्ग में तत्व है। भगवान् स्त्रीन के भोग्य होयवेते भक्तन के आधीन होंय हैं। भक्त, भगवत् स्वरूप के भोक्ता होयवेते स्वाधीन होंय हैं। या समय प्रभु की यह इच्छा है। पुष्टिमार्ग में यह तत्व है। पंचम स्कन्ध निबन्ध में पुष्टि कौ यह लक्षण कह्यौ है कै-

"कृष्णाधीना तु मर्यादा स्वाधीना पुष्टिरुच्यते"

भक्तकूं सब ते वैराग्य होते भी भगवान् के आधीन होय कर भोग भोगवे में भक्ति की मर्यादा भंग नहीं होय है। जैसें प्रियव्रत नें पितृ आज्ञोल्लंघन करकैं ब्रह्माके द्वारा प्रभु आज्ञाते सप्तद्वीपवती पृथ्वी कौ राज्य भोग्यौ। किन्तु जब प्रभु भक्तन कूं स्वतन्त्र करकैं अपने स्वरूपानन्द कौ भोग करावें हैं। तब तो प्रभु कौ महान् अनुग्रह ही पुष्टिरूप है। स्त्रीभावापन्न भगवान के परमानन्द रूप होयवे ते ही कृष्णपद कौ अर्थ सदानन्द है। रसशास्त्र में ऐसें ही कह्यौ है कै—

"कृषिर्भूवाचकः शब्दोणश्च निर्वृति वाचकः—
तयोरैक्यं परब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"कृषि" भू सत्तावाचक शब्द है और "ण" निर्वृति आनन्दवाचक शब्द है। याते सत्ता आनन्द कौ जो ऐक्य है सो परब्रह्म कृष्णपद ते कह्यौ है। याते कृष्ण, पद कौ अर्थ, सदानन्द परमानन्दरूप कह्यौ है। यह सत्ता भी रसधर्मि प्रभु की हृदयगत स्वरूपसौन्दर्यवती मूर्ति राधिकासत्ता है। ब्रजस्त्रीन के हृदयगत गूढ़ भावन की समूहरूपा सत्ता श्री राधिका, प्रभु के हृदय में, स्त्रीभावात्मक गूढ़ रूप ते सदा विराजै है। याते कृष्णपद कौ अर्थ सदानन्द है। या प्रकार श्रुति में कृष्णपद कौ अर्थ परमानन्द रूप कह्यौ है। यद्यपि वेणुनाद बहुत बार भयौ है, किन्तु "क्वचित्" कोई समय वेणुनाद में अधरसुधा सम्वलित कृष्ण पदार्थ प्रकट होय है, सो यह है। या अधरसुधा कूं सार्थक करवे के अर्थ भगवान कूं स्त्रीभावापन्न होंनों अपेक्षित है। वेणुनाद में यह प्रकट होय है। स्त्रीभाव के बिना भगवत् अधरसुधा की निष्फलता है। याते या वेणुनाद कूं अधरसुधा सम्वलित कहवे ते प्रभु कूं स्त्रीभावापन्न होंनों अपेक्षित है। ऐसें वेणुनाद की मुख्यता ते वेणुनाद के वर्णन करवे कौ प्रारंभ कियौ यह "इतिवेणुरवं" या श्लोक ते कहै हैं॥ ५॥

अथवा "स्त्रीभावो गूढ़ः" क्यों जी जा आसक्ति के कारण यह गोपी कृत वर्णन है याते यद्विषयणी आसक्ति होय, ता विषय कौ ही वर्णन करनों उचित है। गोपीन की प्रभु में आसक्ति है। याते प्रभु स्वरूप कूं त्याग करके यहाँ ब्रजगोपीन नें वेणुरव कौ वर्णन कैसें कियौ। ऐसी शङ्का में कहै हैं कै "स्त्रीभावो गूढ़ः पुष्टिमार्गे तत्वम्" या पुष्टिमार्ग में प्रभु ते ही सब लीला सम्पत्ति कौ प्राकट्य है। जैसें मर्यादामार्ग में लोकवेद विख्यात पुरुषोत्तम प्रभु के सर्वात्मक स्वरूप होयवे ते प्रभु सर्व स्वरूप हैं। ऐसें या प्रमेयमार्ग में लोकवेदातीत श्री पुरुषोत्तम के ब्रजस्त्री श्री स्वामिनीन के हृदय में गूढ़ रसात्मक भाव, रतिस्थायि भाव ही तत्व है वास्तव रूप है। सब भक्तन के हृदय में भावात्मक स्वरूप के भगवदात्मक होयवे ते भावात्मक रूप भगवान् ही हैं, यह भावात्मक स्वरूप, श्री गोपीजनन के हृदय देशमात्रवर्ति सत्तानन्द स्वरूप है। सो "क्वचिद्विवृतः" या समय रसधर्मि कृष्ण रूपता कूं प्राप्त है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र रूप होय करकै पुनः कृष्ण- सदानन्द रूप ते प्रकट भयो है याते स्वप्रिया गोपिकान के हृदय में प्रकट है किन्तु सर्वत्र सब के हृदय में प्रकट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं है । याते कै कृष्णभगवान् भावात्मा हैं । स्वस्वरूपानन्द सार होयवें ते सुधा रूप है । याते अपनी स्वरूपानन्दसुधा कूं अपने परोक्ष में विद्यमाना व्रज-स्त्रीन में प्रवेश करवे के अर्थ सुधावेणुनाद में स्थापित करी है। याते वेणुनाद प्रभु स्वरूप सौन्दर्यानन्द सुधासार सम्वलित है । या अधरसुधा के प्रवेश ते हम सब कूं भूल गयीं । पूर्व में बड़े प्रेम ते बड़े हर्ष ते विविध रसणलीला विलासन में अनुभव कियौ जो प्रभुस्वरूप हो सो भी गौण है गयौ । हृदय में सुधा के प्रवेश ते आधिदैविक काम हो सो भी सर्वात्मभाव रूप है गयौ। या सर्वात्म भाव के होयवे ते, या समय समस्त लीलास्वरूप सम्पत्ति, या वेणुनाद में है । याते वेणुनाद में लीलास्वरूप कौ अनुभव होयवे ते वेणुनाद ही मुख्य है । याते आधिदैविक काम के अभाव ते पूर्वानुभूत स्वरूप कूं भूल करकैं वेणुनाद में अनुभव किये स्वरूप के कारण ते, व्रजगोपीन नें वेणुरव कौ ही वर्णनारम्भ कियौ । अस्मदाचार्यन नें यह कह्यौ है ॥ ५ ॥

श्री गूढ़ भावात्मक उभयालम्बन रूप रसात्मक भगवत्स्वरूप या पुष्टिमार्ग में तत्व है वास्तव स्वरूप है । यही कृष्णपद कौ अर्थ है सो "क्वचिद्विवृतः" कोई कोई विरली गोपीन के हृदय में वेणुनाद द्वारा प्रकट भयौ है याते यह अधरसुधा पूरित वेणुरव है ॥ ५ ॥

श्री शुकदेव जी कहै हैं कै जब वेणुनाद ही मुख्य है लीलास्वरूप सब अप्रधान हैं तब व्रजगोपीन नें वेणुरव के वर्णन करवे कौ प्रारम्भ कियौ यह कहै हैं कै—

इति वेणुरवं राजन् सर्वभूतमनोहरम् ।
श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयन्त्योऽभिरेमिरे ॥ ६ ॥

श्री शुकदेव जी कहै हैं कै– हे राजन् ! इति नाम पूर्वोक्त प्रकार के, सब प्राणीन के मन के हरवे वारे वेणुनाद कूं श्रवण करकैं सब व्रज की स्त्री, वेणुनाद कौ वर्णन करती अभिरमण करवे लगीं ॥ ६ ॥

व्याख्या—या श्लोक में श्रवण क्रिया कौ और वर्णन क्रिया कौ एक वेणुरव ही कर्म है । याते यह अर्थ भयौ कै व्रजस्थिता स्त्रीन नें ता वेणुनाद और वेणुगीत कूं भले प्रकारते श्रवण करकैं ता वेणुनाद के वर्णन करवे कौ प्रारंभ कियौ । जब स्वरूप लीला वेणुनाद इन तीनों के मध्य में, स्वरूप, लीला,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्मादि पंचपुरुषार्थ सम्पूर्ण लीलासंपत्ति, सब गौण हैं। ये समस्त स्वरूप लीला सम्पत्ति वेणुनाद में विद्यमान है। तब वेणुनाद ही मुख्य है। याते व्रजगोपनी नें वेणुनाद कूं श्रवण करकैं वेणुनाद के वर्णन करवे कौ प्रारम्भ कियौ। प्रथम तौ वेणुनाद के वर्णन करवे के अर्थ, वेणुनाद के श्रवण करवे में आदरसहित दोनों कर्ण किये। अरी! यह वेणुनाद कैसौ उच्च स्वरूप में स्पष्ट प्रकट है रह्यौ है। यह केवल नादमात्र ही नहीं है यह वेणुनाद तौ लीलास्वरूप सौन्दर्याधरसुधा संयुक्त है। वेणुनाद कौ या प्रकार ते सादर श्रवण कियौ। यहाँ तृतीय श्लोक में और षष्ट श्लोक में दो ठिकाने जो "आश्रुत्य, श्रुत्वा" क्रियापद हैं ये पूर्व श्लोकोक्त वेणुनाद ते या श्लोक के वेणुरव में भेदबोधक हैं। याते पहलौ वेणनाद तौ केवल नाद मात्र हो, याते व्रज स्त्री भले प्रकार ते श्रवण करकैं भी लीलास्वरूप कौ वर्णन नहीं कर सकीं। किन्तु यह वेणुरव तौ पञ्चम श्लोकोक्त स्वरूप सौन्दर्याधरसुधा संयुक्त है। यह तौ स्पष्ट ही स्वरूपार्थ बोधक है। और या श्लोक के पूर्व में जो "इति" पद है यह भी "संयोग पृथक्त्वन्यायते" पूर्व श्लोकोक्त पदार्थ कूं ग्रहण करै है जो एक पद, दो अर्थन कूं कहै सो "संयोग पृथक्त्व न्याय" है। याते यह "इति" पद पूर्व श्लोकोक्त पदार्थ कौ ग्रहण करकैं वेणुरव कौ अर्थ करै है। याते यहाँ पूर्व श्लोकोक्त वाक्यार्थ के संबंधते "इति" पद प्रकारवाची है। याते यह अर्थ भयौ, कै यह वेणुरव केवल पूर्व कौ सौ नादमात्र नहीं है। यह तौ पूर्वके पञ्चम श्लोकोक्त प्रकार कौ अधरसुधा संमिलित है। किन्तु यहाँ वेणुनाद में वेणुगीत पद नहीं कहकै यहाँ जो यह "रव" पद कह्यौ है। याकौ यह अभिप्राय है कै "रव" पद में जो रकार है सो अग्निवीज है। और वकार है सो अमृत वीज है। याते प्रथमतौ वेणुनाद विरहाग्नि कूं प्रकट करै है याते ताप क्लेश को दैवे वारौ है। पुनः संयोगावस्था में अधरामृत पान करावै है याते परमानन्द कौ दैवे वारौ है। याते यहाँ "रव" पदते श्रीशुकदेवजी नें द्विविध शृङ्गार रसात्मक स्वरूप कौ बोध करायौ। कारण कै प्रभुनें वनसुन्दरीन के समूह में प्रवेश करकैं वनसुन्दरीन की स्वच्छन्दता संपादन करकैं प्रभुनें संयोग रसात्मक स्वरूप कौ अनुभव करायौ। और व्रज स्त्रीन कूं तौ प्रभुनें अधर सुधा संयुक्त वेणुनाद द्वारा ही स्वस्वरूपानन्दानुभव करायौ है। याते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीत्रद्वारा अधरसुधा के हृदय मे प्रवेश होयवे ते हृदयान्तर में प्रभुके सङ्ग आन्तर-रमण भयौ । यह आन्तररमण गुप्त रस है । यातें श्रीशुकदेवजीनें गुप्त रीति सं "रव" पदते कह्यौ । स्वरूप स्पष्टार्थ बोधक कोई पद नहीं कह्यौ । याते यहाँ परीक्षित कूं या गुप्त लीलारस कौ अनभिज्ञ जतायवे के लिये "हे राजन् !" यह संबोधन पद कह्यौ । अर्थात् राजा गुप्त कार्य के कर्ता होंय हैं किन्तु श्रोत्र इन्द्रिय कौ विषय जो वेणुनाद है यामें प्रभुकौ द्विविध रसात्मक स्वरूप, गुप्तरीति ते विद्यमान है किन्तु तैनें या रसकूं समझौ नहीं है । याते तू या गुप्तरस कौ अनभिज्ञ है याकूं तू अच्छी रीतिते समझियो । यह सूचित कियौ । अथवा राजर्षिसत्तम इत्यादि पद न कहकै यहाँ केवल धर्मनिष्ठ वाचक जो हे राजन् ! पद कह्यौ है याते यह जतायौ । कै केवल धर्मनिष्ठ पुरुष या रसकूँ नहीं समझ सकै हैं याते तू या लीलारस कौ अनभिज्ञ है । तू सावधान होयकर श्रवण करियो। क्योंजी राजा तौ या लीलारस कौ अनभिज्ञ है, तब या लीलारस के श्रवण करवे में राजाकी प्रवृति कैसैं भयी । ऐसी शंका में कहै हैं । कै प्रभु कृपावलते ही राजा की श्रवण करवे में प्रवृत्ति भयी, या अभिप्रायते कहै हैं कै "सर्वभूतमनोहरम्" यह वेणुनाद सर्वप्राणीन कौ मनोहर्ता है । स्वतः ही सर्वजन वशीकरण समर्थ है । वेणुरव में प्रमेय स्वरूप विद्यमान है या प्रमेयवलते व्रजसुन्दरीन कौ मनोहरण है गयौ । जब मनोहरण है गयौ, तब मनसिज आधिदैविक कामकौ भी अभाव है गयौ । याते भगवत्स्वरूप सौन्दर्याधरसुधायुक्त वेणुगीत कूं श्रवण करकैं वेणुनाद में अनुभव किये विप्रयोग रसात्मक भगवल्लीला स्वरूप कौ साक्षात वर्णन करती व्रजगोपी, विप्रयोग रसात्मक स्वरूप के सङ्ग "अभितः" सर्व प्रकार ते आन्तररमण करवे लगीं । और या प्रमेय बलते ही धर्मनिष्ठ राजा की, तथा तपोनिष्ठ, ज्ञान वैराग्य योगनिष्ठ ब्रह्मनिष्ठ ऋषीन की, या लीला रस के श्रवण करवे में प्रवृत्ति भयी । सर्वभूत मनोहर पदतें यह सूचित कियौ । क्योंजी व्रजस्त्रीन कूं गृहके कार्य करवे में चित्तकी व्यग्रता ते वेणुनाद कौ श्रवण करनों वर्णन करनों अभिरमण करनों कैसैं बनतौ होयगौ ऐसी शङ्का में कहै हैं कै "व्रजस्त्रिय" इन व्रजस्थिता गोपीन कूं व्रजसंबंधिनी होयवेंते ही प्रभुनें अङ्गीकार कियौ है । यातें व्रजस्त्रीन के तौ एक प्रभुही आश्रय हैं । याते कै प्रातःकाल ही आवश्यक सब कार्यन कूं करकैं पुरुष तौ सब वनकूं चले जाँय हैं सायंकाल पर्यन्त पुरुषन के आयवे की तौ संभावना भी नहीं रहै है । याते व्रजगोपी सब

Question

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवद्वियोगावस्था में आसक्तिपूर्वक प्रभुलीला स्वरूपगुण वर्णन करकें ही, दिवस कूं वितामें हैं। और संयोगावस्था में प्रभुकी सेवा करैं हैं। व्रजस्त्रीन कूं ऐसो विवेक है। या हेतु ते सब व्रजगोपी पूर्व पश्चात् क्रमते अपने अपने ओसरे ते विप्रयोग रसात्मक प्रभुके स्वरूप लीला गुणन कौ वर्णन करती, विप्रयोग रसात्मक प्रभुके सङ्ग आन्तराभिरमण करवे लगी। दुःखात्मक प्रपञ्च कूं भूल करकें परमानन्द विलास करवे लगी॥ अब श्लोकार्थ सङ्गति कूं कहै है कै पूर्व के "तद्व्रजस्त्रियः" या तृतीय श्लोक में यह कह्यौ कै व्रजगोपीननें ता वेणुनाद वेणुगीत कूं श्रवण करकै ता वेणुनाद में अनुभव कि स्वरूप कौ अपनी सखीनते वर्णन करवे कौ प्रारम्भ कियौ। सो कौन प्रकारते वर्णन करवे कौ प्रारम्भ कियौ। ऐसें प्रकार जानवे की इच्छा में कहै है कै "तद्वर्णयितुमारब्धाः" वर्णनारंभ करते ही कृष्णचेष्टित स्मरणजनित स्मरवेगतें विक्षिप्त भयी व्रजगोपी, वर्णन नहीं कर सकीं। याते वर्णन करवे की अशक्ति कही। तत्पश्चात् "वर्हापीडं" या श्लोक में वर्णन करवे की शक्ति कौ हेतु जो भगवत्स्वरूप ज्ञान कह्यौ। या भगवत्स्वरूप सौन्दर्याधरसुधा के हृदयान्तर में प्रवेश होयवेते रसकी अति अधिकता में परितः गलनरूप हृदयोद्गार रूप वर्णन कह्यौ। याते "इति वेणुरवं" या श्लोकते अन्तमें वर्णनद्वारा अभिरमण कह्यौ। याते पूर्वके तृतीय श्लोक में जो "स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन्" अपनी सखीनते जो अनुवर्णन करनों कह्यौ है ताकी अर्थसङ्गति कौ समर्थन भयौ। यह षष्ठ श्लोक पर्यन्त कौ आशय कह्यौ॥ ६॥

अब "अक्षण्वतां फलमिदं" इत्यादि त्रियोदश श्लोकन में व्रजगोपी कृत वर्णन है इन त्रयोदश श्लोकन कौ तात्पर्य श्रीवल्लभाचार्यजी नें ढाई कारिका में कह्यौ है। New chapter begins

रसद्वयार्थं द्वितयं वेणुपूरणमेकतः स्वच्छन्दपादगमने हेतुश्चापितथापरः॥ १॥

चतुर्भिः पीठिकैवं स्यात् षड्भिर्वेणोस्तुवादनम्।

द्वाभ्यां भक्तेः प्रतिष्ठा च दोषः स्याद्वर्णनेऽन्यथा॥ २॥

वैपरीत्यात्समाधान मन्यथा स्यात्तु दूषणम्॥ २½॥

कारिकार्थः—श्रीवल्लभाचार्यजी कहै हैं कै संयोग वियोग द्विविध शृङ्गार रसात्मक स्वरूप के निरूपणार्थ दो श्लोक व्रजगोपीननें कहे हैं। तहाँ "वर्हापीडं"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

या श्लोक मे कहे "वरवत" स्वरूप कौ निरूपण "अचरावतां" या सप्तम श्लोक में है। और "चूतप्रवाल" या अष्टम श्लोक में "नटवत्" विप्रयोग रसात्मक स्वरूप कौ वर्णन कियौ है। और "गोप्यः किमाचरदयम्" या नवमश्लोक में अधरसुधाकौ वेणुमें पूरण करनों कर्यौ है। और "वृन्दावनंसखि" या दशम श्लोक में वृन्दावन भूमिकौ कीर्ति विस्तार, भूमि में स्वच्छन्द गमन, स्वच्छन्द विहार, भूमि में भक्ति मार्गरूप चरणन कौ स्थापन, चरणारविन्दन कूं भक्ति मार्गरूप कह्यौ है। या प्रकार चार श्लोकन में पीठिका वर्णन करी, अर्थात् ये चार श्लोक सम्पूर्ण लीला स्वरूप के सिंहासन–आधार हैं। तत्पश्चात् 'धन्यास्तु मूढमतयोपि' इत्यादि एकादश में श्लोकते लै करकैं 'दृष्ट्वातपे' या षोडशमे श्लोकपर्यन्त छै श्लोकन में वेणु बजायवे कौ वर्णन है याते हरिणी आदि में भगवान् के ऐश्वर्यादि षट् धर्मनकौ स्थापन वर्णन है। याते अगारी 'पूर्णाःपुलिंद्यः' 'हन्तायमद्रि' सप्तदश, अष्टादश, दो श्लोकन में भक्ति की प्रतिष्ठा वर्णन है। अर्थात् भक्ति मार्ग रूप चरणन कौ माहात्म्य, भक्तिमार्ग रूप प्रभु चरणन की स्थापना कौ वर्णन है। कारण कै प्रभु चरणारविन्द भक्तिमार्ग रूप हैं। प्रभुचरणारविन्द के वर्श स्पर्श ते प्राणीन कैं भक्ति उत्पन्न होय है। पुलिन्दीनकूं प्रभु चरणारविन्द सम्बन्धि कुङ्कुमके सम्बन्ध ते लक्ष्मी समान भाग्य प्राप्त भयौ, पूर्ण मनोरथ भयौ। गोवर्द्धन के ऊपर चरणन के स्थापनते, हरिदासवर्य गिरिराज कूं प्रमोद भयौ यह सब भक्ति मार्ग रूप प्रभु चरणारविन्द की प्रतिष्ठा है। यदि इन दो श्लोकन कौ तात्पर्य अन्यथा समझ्यौ जाय, तबतौ प्रभु चरित्र में दोष प्राप्त होय है। कारण कै हीन जाति की पुलिन्दीन के सम्बन्ध ते प्रभु में नीच नायकदोष प्राप्त होय है, श्रीपतिकूं पुलिन्दीन के दिये कंद मूल फल फलन कौ खायवौ नीचनायक भावकौ ही समर्थक है। याते इन दो श्लोकन कौ भक्तिमार्ग में ही तात्पर्य है। तथापि यदि लोक दृष्टि ते देख्यौ जाय, तब तौ दोष आवै ही है ऐसी शंका में कहे हैं कै 'वैपरीत्या त्समाधानं' यहां यह समझनौ चहियै कै समयप्रभु भक्ति मार्ग प्रकट करवे के अर्थ प्रकट भये हैं। यह पुष्टि भक्ति मार्ग, मर्यादा मार्ग ते विपरीत है और वलिष्ठ है। कारण कै मर्यादा मार्ग में जे दूषण कहे हैं। ते ही पुष्टिमार्ग में भूषण रूपहैं। याते पुष्टिमार्ग में मर्यादा मार्गके दूषण ही भूषण रूप हैं। जब मर्यादा मार्गीय मोक्षते, पुष्टिमार्गीय मोक्ष कौ उत्कर्ष (वडप्पन) सिद्ध है, तब मर्यादामार्गते पुष्टिमार्गकूं विपरीत और वलिष्ठ कहनों योग्य ही है, अन्यथा यदि लोक वेद प्रमाण रीति सों इन दो श्लोकन कौ अर्थ समझौ जाय, तब तौ पुष्टिमार्ग कौ उत्कर्ष सिद्ध नहीं होय।

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रभुचरित्र में दोषारोपण होय है । याते पुष्टिमार्ग में जो विपरीत धर्म हैं इनते ही इन दो श्लोकन कौ समाधान है । इन दो श्लोकन कौ भक्तिमाहात्म्य में ही तात्पर्य है । याते अगारी १६ मे श्लोक में वनशुद्धि कहीं है । और प्रभु चरित्र कौ वैपरीत्य कह्यौ है । प्रभु चरित्र विपरीत है, गतिवारेन की गति कूं रोके है, तरून में पुलक रोमांच प्रकट करै है । अयोग्या पुलिन्दीन में रमण की योग्यता सम्पादन करै हैं । स्वजातीया स्त्रीन कूं रमण के अयोग्य बनावै है, याते प्रभुचरित्र विपरीत है । व्रजस्त्रीनने ऐसैं कह्यौ है । और २०मे श्लोक में लीला की समाप्ति कही है । या प्रकार १३ श्लोकनमें १३ लीलान की अर्थ संगति, लीला तात्पर्य कह करकैं १४ मे श्लोक में समाप्ति कही है ॥

अब प्रथम व्रजगोपी, संयोग शृङ्गाररसात्मक 'वरवत्' स्वरूप कौ वर्णन करै हैं ।

॥ गोप्यउचुः ॥

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः सख्यः पशूननु निवेशयतोर्वयस्यैः ।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणु जुष्टं यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥ ७ ॥

व्रजगोपी कहै है कैं हे सखीऔ ! अपने वयस्यन के संग गौ आदि पशून के पीछैं २ गमन करते गौ आदि पशून कूं वनमें प्रवेश करकैं चरावते, व्रजेश, श्रीनन्दरायजीके पुत्र श्रीराम कृष्ण कौ जिनने सर्वेन्द्रियतेप्रीति पूर्वक सेवन कियौ, अथवा श्रीरामकृष्णके वेणु बजावते और अनुराग भरे नेत्र कटाक्षन कूं छोडते श्रीमुख कौ जिनने नेत्रन के द्वारा पान कियौ उनके इन्द्रिय धारण करवे कौ उनके नेत्रन कौ यही मुख्य फल है । और पर जो सायुज्य मोक्ष है सो कुछ भी फल नहीं है ॥ ७ ॥

भगवता सह संलापो दर्शनं मिलितस्य च । आश्लेषः सेवनं चापि स्पर्शश्चापि तथाविधः ॥१॥ अधरामृत पानं च भोगो रोमोद्गमस्तथा । तत्कूजितानां श्रवणमाघ्राणं चापि सर्वतः ॥ २ ॥ तदन्तिकगतिर्नित्यमेवं तद्भावनं सदा' इदमेवेन्द्रियवतां फलं मोक्षोपि नान्यथा ॥३॥ यथान्धकारे नियतास्थिति र्नाक्षणोः फलं भवेत् । एवं मोक्षोपीन्द्रियादियुक्तानां सर्वथा न हि ॥४॥ बाधकानां परित्यागे साधकानां न तद्भवेत् ॥ ४½ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याख्या—श्री शुकदेवजीनें 'बर्हापीडं' या श्लोक में जो 'वरवत्' स्वरूप कह्यौ है। प्रथम व्रजगोपी ता संयोगशृङ्गाररसात्मक 'वरवत्' स्वरूप कौ वर्णन करे हैं कै 'अक्षण्वतां फलमिदम्' हे सखीओ! इन्द्रियधारी अथवा नेत्रधारीन कौ यही मुख्य फल है। जो हमनें मनोरथ प्रकारते अपने हृदयमें अनुभव कियौ कै श्रीपुरुषोत्तम स्वरूप कूं एकादश इन्द्रियनते भोग करनों अथवा श्रीकृष्णके मुखारविन्दकूं अपने नेत्रन के द्वारा पान करनों यही मुख्यफल है। और 'पर' जो सायुज्य मोक्ष है सो कोई फल नहीं है। या श्लोक में 'अक्षण्वत्' पद सर्वेन्द्रिय वाचक है और नेत्र-वाचक भी है। पुरञ्जीनोपाख्यान में नारदजी कौ वाक्य है कै—

'अक्षण्वतामधिपतिस्ताभ्यां याति करोति च'

याते 'अक्षण्वतां, पद सर्वेन्द्रियवाचक और नेत्रवाचक है, और या श्लोक में 'जुष्टं यैर्वा निपीतम्' यहां विकल्पवाची 'वा' पद भी कह्यौ है। और 'पशुननु' या पद में जो 'अनु' उपसर्ग है याते पदन की आवृत्ति करकै विकल्पते अर्थ कियौ है। यदि श्रीशुकदेवजी कूं तथा व्रजगोपीनकूं विकल्पते अर्थ करनों इच्छित नहीं हो तौ, तब तौ या श्लोक में विकल्पवाचक 'वा' पद नहीं कहते। याते या श्लोक में विकल्प ते अर्थ कियौ है। प्रथम व्रजगोपी मुख्य पक्ष कूं कहै हैं। कै 'अक्षण्वतां' इन्द्रियधारीन के इन्द्रियन कूं यही मुख्य फल है कै 'भगवतासह' भगवान् के संग सम्भाषण करनों यह वाणी कौ कार्य फल है। प्रभुते मिलनों प्रभु कौ दर्शन करनों यह नेत्रन कौ कार्य फल है। प्रभु स्वरूप कूं आलिंगन करनों यह भुजान कौ कार्य है। प्रभु कूं पुष्पमाला गूँथ कै पहरामनों सामग्री सम्पादनादि अन्य कार्य करने, पाद संवाहनादि सेवा करनी, यह करन कौ कार्य है। ऐसे हस्तेन्द्रिय के दो कार्य कहे। प्रभु स्वरूप कौ तथा चरणनकौ स्पर्श करनों त्वचा इन्द्रिय कौ कार्य है। प्रभु अधरामृत पान करनों प्रभु प्रसादी वीडा कौ आस्वादन करनों यह जिह्वा इन्द्रिय कौ कार्य है। प्रभुके सङ्ग सम्भोग करनों तथा प्रभु अङ्ग स्पर्श करकैं रोमांचित होंनों यह गुह्य इन्द्रिय कौ कार्य है। कारण कै—

'सर्वेषां च विसर्गाणां पायुरेकायनं स्मृतं'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

या श्रुति प्रमाण ते पायु इन्द्रियनके कार्य में अन्य इन्द्रियन कौ भी उपयोग है। ब्रह्मा कृत स्तुति में भी कह्यौ है कै—

'येषां तु भाग्य महिमाच्युत तावदास्तां' एतद्धृषीक चषकैरसकृत्पिबाम'

तथा 'पुलकोद्भिन्नसर्वांग' इत्यादि वाक्यन में स्वेद रोमांच कौ होनौं भी दशम पायु इन्द्रिय कौ कार्य है। पुरुष में तौ भगवत्सेवोपयोगि पुत्रादिके उत्पादन द्वारा पायु इन्द्रिय कौ उपयोग है। प्रभु के मधुर कोमल रसीले वचनन कौ और वेणुकूजित कौ श्रवण करनौं यह श्रोत्रेन्द्रिय कौ कार्य है। प्रभुके श्रीअङ्गनकौ, भगवत्प्रसादी पुष्पमालान की सुगंध लैनौं यह घ्राण इन्द्रिय कौ कार्य है। प्रभु के समीप नित्य गमन करनौं, यह चरणन कौ कार्य है। प्रभु विषयक विविध प्रकार के मनोरथ करनौं यह अन्तःकरण कौ कार्य है। या प्रकार रसात्मक धर्मविशिष्ट प्रभु की सदा भावना करनी। ऐसें एकादश इन्द्रिय के द्वारा रसात्मक प्रभु कूं भोग करनौं ही इन्द्रियधारीन कूं सदा भक्तिफल में इच्छित है। हम कूं सायुज्य, मोक्ष, भक्तिफल में इच्छित नहीं है। याते गोपी कहै हैं। कै—

"न परं विदामः पिपर्ति स्वार्थेन ब्रह्मानन्देन पूरयतीति परं॥"

पर जो सायुज्य मोक्ष है सो हम कूं इच्छित फल नहीं है। क्यों जी "आत्मलाभान्न परं विद्यते" आत्म लाभ ते परैं तौ कोई सुख ही नहीं है। या श्रुति के कथनानुसार सायुज्य मोक्ष तौ परमानन्द रूप है। तब सायुज्य मोक्ष परम पुरुषार्थ कैसें नहीं है। तहाँ कहै हैं कै "विदामः" या फल प्रकरण कूं हम उपनिषद्रूपा गोपी ही जानें हैं। कारण कै हम उपनिषद्रूपान के विचार में ऐसौ कोई धर्मफल नहीं है, जाय हम नहीं जानती होंय। हमारे निर्णय करकैं कहे विना तौ कोई धर्मफल ही नहीं है। याते सायुज्य मोक्ष में और सर्वेन्द्रिय ते प्रभु स्वरूप के संग संभोग सुख में जो तारतम्य है न्यूनाधिक भाव है ताकूं हम उपनिषद् रूपा गोपी ही जानें हैं। और "आत्मलाभान्न परं" यह श्रुति भी हमारी ही एक अंशरूपा है। विशेष विश्वास करवे योग्य है। या श्रुति कौ कथन मिथ्या नहीं है, सत्य है। किन्तु या श्रुति कौ कह्यौ फल, और हमारौ अनुभव कियौ फल विरुद्ध नहीं है। विचार करकैं देखौ तौ हमारे अनुभव किये प्रभु के संग सम्भोगानन्द के समान,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सायुज्य मोक्ष में आनन्द नहीं है । सायुज्य मोक्ष फल तौ अनुभव अपर्यवसायि दीखै है । कारण कै ब्रह्मानन्द के अतिरिक्त अन्य कोई प्रकार कौ आनन्द, सायुज्यमोक्ष में नहीं है, सायुज्यमोक्ष में इन्द्रिय और इन्द्रिय जन्य ज्ञान के अभाव ते, इन्द्रियजन्य ज्ञान और क्रिया कौ भी अभाव है । याते तत्तत् इन्द्रियन के तत्तत्प्रकार के रसन कौ अनुभव नहीं है । याते कैवल्यमोक्ष तौ निरिन्द्रिय मुक्त जीवन कौ फल है । और आधिदैविक देहेन्द्रियादिधारीन कूं तौ श्रीपुरुषोत्तम के संग तत्तत् इन्द्रियन के तत्तत् रसन कौ अनुभव करनों ही फल रूप है । यह व्रजगोपीन नें "व्यवस्थितविकल्प" कह्यौ है । अर्थात् जब कोई विषय के निश्चय करवे के लियें संकल्प विकल्पात्मक मन में अनेक प्रकार के विचार उठे हैं ताकूं विकल्प कहै हैं । जब विचार करते करते चित्त में निश्चय नहीं होय चित्त कूं स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होय, तब शास्त्र के द्वारा जा विषय की व्यवस्था करी जाय है ताकूं व्यवस्थितविकल्प कहै हैं । याते सायुज्यमोक्षफल तो अनुभव अपर्यवसायि दीखै है अर्थात् सायुज्य मोक्षफल, अनन्तानन्द रूप है। कारण कै "वाङ्मनसि दर्शनात्" इत्यादि सूत्रचतुष्टयोक्त प्रकार ते देहादि संघात के लयभये पश्चात् प्रभुस्वरूप में सायुज्य भये, जिन मुक्तजीवन कूं प्रभु नें अपनी सेवा के उपयोगि दिव्यदेहेन्द्रियादि कौ दान नहीं दियौ है । तिनकी पुरुषोत्तम में सदा स्थिति रहै है । और जिन मुक्तजीवन कूँ प्रभु नें अपने स्वरूप ते मुक्त "न्यारे" करकैं लीला करवे के अर्थ अलौकिक देहेन्द्रिय प्राणान्तःकरण सम्पत्ति कौ दान दियौ है, तिन जीवन कूं प्रभुअनुग्रह के तारतम्य ते, सेवाफल ग्रन्थोक्त रीति सूं अलौकिकसामर्थ्य १ सायुज्य २ और वृहद्वृन्दावन वैकुण्ठादि धाम में स्थिति ३ ये तीनों ही फल क्रम ते प्राप्त होंय हैं। ऐसैं हम उपनिषद् रूपा ही जानें हैं। यामें श्रीवल्लभाचार्य जी दृष्टांत देंय हैं कै "यथान्धकारे" जैसैं कोई कमलनयन पुरुष, सदाकाल अन्धकार में स्थित रहै तौ वाके नेत्रन कूं कहा फल है अर्थात् नेत्र धरे कौ कुछ भी फल नहीं है। यद्यपि स्पर्शादि करकैं वस्तु कौ ज्ञान तौ होय है तथापि सुनेत्रन कौ धारण करनों तौ विफल ही है । ऐसैं ही दिव्यदेहेन्द्रिय प्राणान्तःकरणयुक्त जीवन कूं सायुज्य मोक्ष में कहा फल है। यदि इन्द्रियन कूं तत्तत्प्रकार कौ रसानुभव नहीं होय, तब तौ प्रभु के संग सम्भाषणादि कार्यन के बिना इन्द्रिय धारण करवे को कुछ भी फल नहीं है । यदि नेत्रवान् पुरुष, किंचित्काल पर्यन्त अन्धकार में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थित रहैं तब तौ कोई चिन्ता नहीं है, अन्धकारानुभव किये पश्चात् प्रकाश में आयबे ते नेत्रन कूं सफलता प्राप्त होयगी ही । किन्तु सदाकाल के लियैं अन्धकार में स्थित रहवे ते तौ नेत्रन कूं कुछ भी फल नहीं है । ऐसैं ही दिव्य-देहेन्द्रियादि युक्तन कूं, कोई समय भगवद्भाव के उद्रेक में, देहेन्द्रियादि की अस्फूर्ति दशा में ब्रह्मानन्द की प्राप्ति में किंचित्काल पर्यन्त भगवत् रूपता में स्थित रहवे में तौ कोई चिन्ता नहीं है, किन्तु सदाकाल के लियैं भगवत् रूपता में स्थित रहवे ते तौ इन्द्रिय वारेन की इन्द्रियन की विफलता है । याते जैसैं नेत्र वारे कूँ सदा अन्धकार में रहनों इच्छित नहीं है । ऐसैं ही इन्द्रियादि युक्तन कूं निरिंद्रिय सायुज्य मोक्ष इच्छित नहीं है । यहाँ नेत्रन के वैफल्य कौ सम्पादक अन्धकार कह्यौ । और इन्द्रियन के वैफल्य कौ सम्पादक सायुज्यमोक्ष कह्यौ । याते इन दोंनों कौ परस्पर में उपमानोपमेय भाव सम्बन्ध है । याते अन्धकार में "नियता" सदाकाल के लियैं । और सायुज्य मोक्ष में "सर्वथा" सदाकाल के लियैं, ये दो विशेषण पद कहे । याते इन्द्रियरहितन कौ सायुज्य मोक्ष-फल है । और सेन्द्रिय भक्तन कौ सर्वेन्द्रिय भोग्य भगवत्स्वरूप फल है । सायुज्यमोक्ष निष्प्रकार के रसानुभव करायवे वारौ है । और सर्वेन्द्रिय भोग्य स्वरूप में तौ तत्तत् इन्द्रियन कौ तत्तत् रसानुभव होय है । याते पर जो सायुज्य मोक्ष है । सो हम कूं इच्छित फल नहीं है । या अर्थ में अन्य श्रुतिरूपा गोपीन की सम्मति सूचित करती कहै हैं कै "हे सख्यः" हे सखीओ ! यह निर्णय सत्य है न ! याते कै समान शील व्यसनवतीन ते ही सखी कहैं हैं, अपने हृदयान्तर्गत भाव उनके सन्मुख में ही प्रकट करे जाँय हैं। क्यों जी सायुज्यमोक्ष की इच्छा भलै ही भक्तन कूँ नहीं होय । तथापि— Questio

"हृतात्मनो हृतप्राणांश्च भक्तिरनिच्छतो गतिमणवीं प्रयुंक्ते"

यद्यपि हरिभक्तन कं मोक्षेच्छा नहीं है तथापि हरे हैं प्राणान्तःकरण जिनके ऐसे हरिभक्तन कूं यह भक्ति तौ सायुज्य मोक्ष देय ही है । इत्यादि वाक्यन ते हरिभक्तन कूँ भी सायुज्य मोक्ष अवश्य मिलै है । तब सर्वेन्द्रियसेवी भक्तन कूं सायुज्य मोक्ष क्यों नहीं मिलै है। ऐसी शंका में कहै हैं कै "वाधकानांपरित्यागे" या सर्वाभोग्या अधरसुधा माधुर्य मुख्यफल की प्राप्ति में प्रभु स्वरूप के अतिरिक्त या लोक परलोक के मोक्षपर्यन्त सम्पूर्ण पदार्थ वाधक हैं । याते सर्वात्मभाव-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वात्मभाव द्वारा ही पुष्टिमार्गीय या मर्यादामार्गीय (मोक्ष) मिलता है

वान् भक्तन कूं बाधकरूप सर्व पदार्थन के परित्याग ते, पुष्टिमार्गीय मोक्षेच्छुकन कूं कैवल्य मोक्ष नहीं मिलै है किन्तु श्री पुरुषोत्तम के सङ्ग दर्शन स्पर्श सम्भाषणादि रूप सर्वेन्द्रियन ते सर्वकामोपभोग रूप मुख्य फल ही मिलै है और मर्यादामार्गीय मोक्षेच्छुकन कूं तौ बाधक पदार्थन के बुद्धिपूर्वक बड़े यत्न ते परित्याग करते भी " सर्वात्मभाव " के बिना मुख्यफल की प्राप्ति नहीं होय है। याते मुख्यफल की प्राप्ति में " सर्वात्मभावः " ही साधन है। याते सर्वात्मभाव कूँ कहै हैं कै—

" सर्वत्र आत्मनो भाव सर्वात्मभावः । "

भक्त के इन्द्रियान्तःकरण प्राण जीव में सदा सर्वात्मा श्रीकृष्ण में भाव रह्यौ आवै ऐसे विद्यमान वियोगानुभव कौ नाम सर्वात्म भाव है। यह सर्वात्मभाव भक्ति की पराकाष्ठा है। यही पराभक्ति है। ऐसे भावके होयवे ते या लोक परलोक के मोक्षपर्यन्त सर्व पदार्थन कौ सर्व सुख फलन कौ परित्याग भी या भावके अन्तर्गत है जाय है। किन्तु ऐसौ भाव आधुनिक जीवन में नहीं है। याते साधनावस्था वारे जीवन के लियैं, तृतीयस्कन्ध के बत्तीसमे अध्याय में यह कह्यौ है कै—

" तस्मात्त्वं सर्वभावेन भजस्व परमेष्ठिनम् । "

श्रीसुबोधिनी व्याख्या में याकौ यह भाव कह्यौ है कै देहादिवे लैंकरकें पति पत्नी पुत्रादिक जितने हैं ते जा २ भावते भजनीय हैं। वे सर्वभाव प्रभु में ही करने यह सर्वात्मभाव श्रीकपिलदेवजी नें प्रथम कक्षावारे जीवन कूं उपदेश कियौ है। यामें ऐसी व्युत्पत्ति है कै—

"आत्मनिभाव आत्मभावः सर्वश्चासावात्मभावश्चेति सर्वात्मभावः ।"

आत्मा में जो भाव सो आत्मभाव, संपूर्ण ही यह आत्मा में जो भाव हैं सो सर्वात्म भाव हैं। जैसो स्नेह अपने आत्मा में होय है तैसौ प्रेम देहेन्द्रियादि में वा पति, पत्नी, पुत्र धनादि में नहीं होय है। या आत्मसुख के लिये ही अहंता के स्थान जे देहेन्द्रियादिक, और ममता के स्थान जे पतिपत्नी पुत्रादिक हैं ते प्रिय लगै हैं। अन्यथा देहगेहादि पत्नीपुत्रादि अपने आत्मसुखके उपयोगि नहीं होंय. तबतौ कोई भी प्रिय नहीं लगै है। याते सबके आत्मा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्तर्यामि श्रीकृष्ण हैं। याते देहेन्द्रियादि पति पत्नी पुत्रादि पदार्थ जा जा भावते सेवनीय हैं। ते, सब भाव श्रीकृष्ण में कर्तव्य हैं। यदि देह गेह पत्नी पुत्रादिक भगवत्सेवा के उपयोगी नहीं होंय, भगवद्भजन में बाधक होंय, तबतौ स्वबुद्धिपूर्वक तिनकौ परित्याग करनों ही उचित है। कारण कै बाधक पदार्थन के परित्यागते ही सर्वात्म भाव सिद्ध होय है। या प्रकार सर्वात्मभाव कूँ प्रभुमें करवे ते—

"तत्क्रतु, तत्पूर्वं कृतं यत्सर्वात्मभावेन भगवद्भजनं, क्रतुर्यस्य सस्त त्क्रतुर्भक्त।"

पूर्व में कियौ है सर्वात्मभावते भगवद्भजन जाने वह भगवद्भक्त क्रतु रूप है जाय है। या न्याय के अनुसार अगारी जायकैं या जन्म में वा अन्य जन्म में ये समस्त भाव भगवान् में ही फलित होंय हैं। या प्रकार सर्वात्म भाववान् भक्तन कूं कैवल्य मोक्ष नहीं मिलै है। तिनकूं तौ "सोश्नुते सर्वान्कामान्सह ब्रह्मणा" या श्रुति के कथनानुसार श्री पुरुषोत्तम के सङ्ग दर्शन स्पर्श संभाषण संभोगादि सर्वेन्द्रियभोग्य मुख्य फलकी ही प्राप्ति होय है। ऐसी कितनी एक विरली भगवद्भोग्या सर्वात्मभावती गोपीन कूं सर्वेन्द्रिय भोग्य मुख्य फलकी प्राप्ति है। और सर्वात्म भाववतीन के अतिरिक्त अन्य गोपीन कूं सर्वात्मभाव के अभाव ते मुख्य फलकी प्राप्ति नहीं है। या प्रकार मुख्य पक्षकूं कह करकै अब सबके साधारण पक्षकूं कहै हैं। या पक्षमें "अक्षण्वतां" पदकौ अर्थ "चक्षुष्मतां" कह्यौ है। और विकल्पवाची वा पदते, पदन की आवृत्ति भी करी है। यद्यपि मुख्य पक्ष में और गौणपक्ष में एक प्रभुस्वरूप ही भोग्य फल है। कारण कै दोनों पक्ष में एक प्रभु स्वरूप ही तौ सबके दृष्टिगोचर है। प्रभुस्वरूपते अतिरिक्त कोई अन्य सायुज्य मोक्षादि फलकी इच्छा तौ कोई कै नहीं है। किन्तु अनादरवाचक "वा" पदते पूर्वोक्त मुख्य फलते यह गौण फल है। व्रजगोपी कहै हैं, कै—

"पशूनतु, पशूनां पश्चाद्भागे, वयस्यैः सह पशून् वनं निवेशयतो रा कृष्णयोर्वक्त्रमेकं यैर्वा निपीतं"।

"वा" यह पद अनादर में है। और "पशूनतु" या पदमें जो अनु उपसर्ग है याते "पशून्" पदकी आवृत्ति करकै अर्थ कियौ है। याते यह अर्थ भयौ कै गौ आदि पशून के पीछे पीछे अपने बरोबर के वयस्य सखान के द्वारा पशुतुल्य अन्तरङ्ग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लीलारसके अनभिज्ञ बहिरङ्ग गोपबालकन कूं गौ आदि पशून के चरायवे के लियैं वनमें प्रवेश करते श्रीरामकृष्ण के एक श्रीमुख कौ जिनने नेत्रन के द्वारा पान कियौ अपने अन्तःकरण में प्रवेश कियौ, अथवा अपने नेत्रन के द्वारा प्रीतिपूर्वक सेवन कियौ, उनके नेत्र धारण करवे कौ एक श्रीमुखकौ दर्शन करनो ही मुख्य फल है। पर जो सायुज्य मोक्ष है सो कुछ फल नहीं है। यहाँ प्रभुके सङ्ग कितने हू गोप बालकतौ या अन्तरङ्ग लीला रसके अनभिज्ञ पशुतुल्य हैं। और कितनेहू गोपबालक वयस्य हैं। ये अन्तरङ्ग लीला में साक्षिरूपते प्रभुके सदा सङ्ग रहै हैं। वयस्य बेही हैं जिनकौ जन्म भगवत्प्रादुर्भाव के सङ्ग भयौ है। जो भगवान के सङ्ग लीला करवे के अर्थ ही जन्मे हैं। याते लीला में और अवस्था में तुल्य हैं। ये श्री भावाढ्य वयस्य गोपसखा अन्तरङ्ग लीला में साक्षिरूपते सदा प्रभु के सङ्ग रहै हैं। याते अन्तरङ्ग लीलारसानभिज्ञ पशुतुल्य गोपबालकनकूं गोचारणादि कार्य के अर्थ अपने वयस्यन के द्वारा प्रभु पशून के पीछै वनमें भेज देंय हैं। कारण कै निर्गुणावस्था में जिनकौ अधिकार नहीं है। तिनकूं सात्विकावस्था में रहनों ही उचित है। याते लीलारसानभिज्ञ पशुतुल्य ग्वालान कूं पशु चरायवे के लियैं पशून के पीछैं वनमें भेज दैंय हैं। कारण कै ये पशु तुल्य बालक लीलारस के अनभिज्ञ हैं। और यह आधिदैविकी लीला तौ स्वाभाविकी है, नित्यायिनी है, नित्य ही होय है। याते ये पशुतुल्य गोपबालक, लीला में दोषारोपण नहीं करने पामें, याके लियैं प्रभु अपने वयस्यन के द्वारा इन पशुतुल्यन कूं भिजवाय दैंय हैं। जब ये वनमें प्रविष्ट भये पशुपाल बालक पशून के चरायवे में श्रमित होयकर कहै हैं कै—

'गता गावो दूरं प्रखरखुरचिह्नान्यपि वने न लक्ष्यंते हन्त द्रुततरमिहागच्छत विभो'

हे प्रभो, गाय दूर चली गई तिनके पैने खुरन के चिह्न भी कहूँ दिखाई नहीं देय है, याते हम बड़े कष्ट में हैं, आप कृपा करकैं अति शीघ्र ही यहां पधारौ। जब ऐसें निवेदन करै हैं। तब वन प्रविष्ट बालकनकी सहायताके लियैं अपने वयस्य सखान कूं भेज दैंय हैं। सदा तौ वयस्य सखा प्रभुके संगही रहै है। या प्रकार अपने वयस्यन के द्वारा पशून के चरायवे के लियैं पशु तुल्य बालकन कूं वनमें प्रवेश करते श्रीराम कृष्ण के श्रीमुख कौ जिनने अपने नेत्रन के द्वारा पान कियौ, हृदय में प्रवेश कियौ, उनके नेत्र धरे कौ यही मुख्य फल है। यहां 'वक्त्रं' या पदमें एक वचन है। याते एक ही मुख

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कौ दर्शन पान कह्यौ । श्री बलदेवजी के मुखमें श्रीकृष्णकौ ही मुख आविष्ट है । याते मुख पृथक् स्पष्ट नहीं कह्यौ । किन्तु आवेश कौ आधार जो संकर्षण स्वरूप है, तामें ही श्रीकृष्ण कौ मुख मिल रह्यौ है । याते मुख्य में प्रकट जो मुख है, सो दोंनों स्वरूप में एक श्रीकृष्ण कौ ही मुख है । याते रामाविष्ट मुख और श्रीकृष्ण मुख दोंनों मुख में एक श्रीकृष्ण कौ ही मुख कह्यौ । याते जिनने अपने नेत्रन के द्वारा एक श्रीकृष्ण के श्रीमुख कूं अपने अन्तःकरण में प्रवेश कियौ तिनके नेत्र धारण करवे कौ यही मुख्य फल है । या मुख दर्शन में प्रमाण संमति कहै है कै—

" तत्सर्वव्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत्
नान्यानि चिन्तयेद्भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम् "

प्रभु के सर्वाङ्ग में व्यापक जो चित्त है, ताकूं सब ओरते खेंच करकें प्रभु के एकाङ्ग में धारण करै अन्य अङ्गन कौ चिंतमन नहीं करै, बारम्बार प्रभुके मधुरस्मित युक्त एक श्रीमुखकी ही भावना करै । या वाक्य के अनुसार जिनने नेत्रनके द्वारा प्रभुके एक श्रीमुखकौ प्रीति पूर्वक सेवन कियौ, अथवा नेत्रन के द्वारा पान कियौ हृदय में प्रवेश कियौ तिनके नेत्र धारण करवे कौ यही मुख्य फल है । ये व्रजगोपीतौ अपने हृदय में भावना किये मुखकौ निरूपण करै हैं । याते साधारण पक्षमें श्रीबलदेवजी के निरूपणमें भी सामान्यरीतिसूं बलदेवजी कौ निरूपण कियौ है । यद्यपि 'व्रजेशसुतयोः' या षष्ठी विभक्तिके द्विवचनते सामान्यरीतिसूं श्रीरामकृष्ण दोंनों स्वरूप कहे हैं । तथापि व्रजगोपीननें बलदेवजी कौ नाम नहीं लियौ है । और मुख के निरूपण में 'वक्त्रं' मुखमें एक वचन, और मुखके विशेषण पदन में भी एकही वचन कह्यौ है । यद्यपि मुखके अतिरिक्त श्रीरामकृष्ण के अन्य अङ्गन की उपस्थिति भी व्रजगोपीन के दृष्टिगोचर है बलदेवजी के सर्वांग गौर वर्ण हैं । श्रीकृष्ण के श्रीअङ्ग श्यामवर्ण हैं । किन्तु श्रीमुखतौ अधरामृत भोग्य रस युक्त है । याते श्रीमुख की उपस्थिति तौ व्रजगोपीन के हृदय में रसकी भावनाते है । याते रसात्मक प्रभुके उपासक भक्तन कूं रामाविष्ट मुखमें भोग्य रस की संभावना भी नहीं है । याते मुखके निरूपण में व्रजगोपीन के हृदय में रामाविष्ट मुख नहीं समावै है । याते रामाविष्ट मुखकौ पृथक् निरूपण नहीं कियौ । मुख द्वय कूं नहीं कहकैं एक श्रीकृष्ण कौ ही मुख कह्यौ । अथवा प्रभुमें आसक्ति की अधिकताते एक ही मुख कह्यौ । अब व्रजगोपी, मुख दर्शन में भेद कहै हैं कै कै कितने हू गोप गोपी तौ ईश्वर भावते आराधन बुद्धिते मुख दर्शन करैं हैं कै ये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हमारे ग्रामाधिपति के पुत्र हैं, जैसें श्रीनन्दरायजी हमारे आराधनीय हैं, तैसें व्रजेश श्रीनन्दराय के पुत्र भी आराधनीय हैं। और किदने हू या भावते मुख दर्शन करै हैं, कै ये हमारे स्वामी श्री नन्दराय के पुत्र हैं हमारे रक्षक है वृत्तिदाता हैं, हमारे अनुकूल रहैं। हमारी जीविका वनी रहै। ऐसे भावबुद्धिते जिनकौ मुख दर्शन करनों हैं, सो लौकिक भाव की अपेक्षाते दर्शन करनों है। याते व्रजगोपी, लौकिक भाव सापेक्ष मुख दर्शन के अनादरमें हेतु कहै हैं कै 'व्रजेशसुतयोः' व्रजेश श्रीनन्दरायजीके पुत्र श्रीराम कृष्ण के मुखकौ जिननें दर्शन कियौ। सो श्रीवलदेवजी तौ व्रजेश श्री नन्दराय के पुत्र नहीं हैं। श्रीवलदेवजी तौ वसुदेवनन्दन हैं। और आवेश पक्ष में तौ दोंनों स्वरूप में श्रीकृष्ण कौ ही आवेश है तब तौ दोंनों कूं व्रजेश सुत कहनों योग्य ही है। यद्यपि ये व्रजगोपी, श्री बलदेवजीके अंग कौ दर्शन, व्रजेशसुत भावतेही करै हैं। तथापि श्रीवलदेवजी के मुख कौ दर्शन, स्वभोग्यरसयुक्तभावते नहीं करैं हैं। इन व्रजगोपीनकूं तौ श्रीकृष्ण के मुखतेही स्वभोग्यरस पान करनों इच्छितहै। याते विकल्पवाची 'वा' पदते वलदेवजी के मुख के दर्शनमें अनादर सूचित कियौ। जब लौकिकभाव सापेक्ष मुख दर्शन में ही व्रजगोपी कौ अनादर है। तब रामाविष्ट भगवन् मुखपान के अनादर कौ तौ कहनों ही कहा है। ये वर्णन करवेवारी व्रजगोपी लौकिक भावकी अपेक्षाते मुख दर्शन करवे वारी नहीं हैं। ये व्रजगोपी तौ अलौकिक रसभावते मुख दर्शन करवेवारी हैं। याते लौकिक भाव सापेक्ष मुख दर्शन ही अनादरमें कारण है। और कितने हू गीतरसज्ञ व्रजभक्त, वेणुगीत श्रवण करवे के लियें ही प्रभुके मुखारविन्द कौ दर्शन करै हैं, याते कहै हैं कै "अनुवेणुजुष्टम् 'अनुगतो वेणुर्यस्य" वेणुवादनपरकमुख वेणुके अनुगत है। ता वेणुनाद कूं लक्ष्य करकैं जो मुख वर्तै है, ता वेणुवादन परक मुख कौ दर्शन करै हैं। तामें कोई कोई तौ, यह वेणुनाद कैसौ मनोहर है याते केवल वेणुनाद के श्रवण करवे के लियें ही मुख दर्शन करै हैं। और कितने हूं याते मुख दर्शन करै हैं, कै हम भी ऐसौ वेणुबजायवौ सीखजाँय, देखौ यह श्याम सुन्दर कैसे मधुर स्वरन में वेणु बजाय रह्यौ है। या श्रीकृष्ण की लटक, मटक, चटकते अङ्गुलीन कूं पटककैं हमहूं ऐसैं ही वेणुबजायवौ सीखजाँय। या भावते श्रीकृष्ण कौ मुख दर्शन करै हैं। या अर्थ में भी विकल्पार्थ बोधक 'वा' पदते, अनादर तौ स्वरते ही आय जाय है। या प्रकार वेणुयुक्त श्रीकृष्ण के मुखारविन्द कौ जिननें प्रीतिपूर्वक सेवन कियौ अथवा नेत्रन के द्वारा पान कियौ अन्तः प्रवेश कियौ उनके नेत्र धारण करवे कौ यही मुख्य फल है। या प्रकार वेणुनाद के मनोहर होयवेते, नाद ब्रह्ममें मनके प्रवेश होयवेते राजस भजन कह्यौ। अब काम सम्बन्ध ते तामस भजन कूं कहै हैं कै—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काम सम्बंधी तामस भजन करने वाली गोपीयाँ

"अनुरक्त कटाक्ष मोक्षम्, अनुरक्तानां कटाक्षाणां मोक्षो यस्मिन्मुखे" ।

कोई-कोई प्रभु अनुरागीभक्त भगवान् श्रीकृष्णके मुखमाधुर्य रसा सवते उन्मत्त भये अपने नयन कटाक्षनकूं श्रीकृष्णके मुखके ऊपर छोडे हैं केवल कामभावतेही मुखावलोकन करै हैं। अथवा "अनुरक्तेषु कटाक्षमोक्षोयस्मान्मुखात्" प्रभु स्वस्वरूपानुरक्त भक्तन के ऊपर भृकुटि कामकोदंड तानकर, नयनशर संधानकर, कृपा कटाक्षणन कूं छोड़कर, भक्तन के हृदय कूं वेधकर, स्वस्वरूपानुरक्त करकैं, मनोजकाम कूं दूर कर, भक्तन के हृदय में निजाधिदैविक कामभावकूं स्थापन करै हैं । भक्तन की निकृष्ट कामना कूं भी प्रभु शुद्धभाव में परिणित करै हैं। प्रभुकी यह प्रतिज्ञा है कै "मन्निष्ठो निर्गुणो भवेत्" मेरे विषें कियौ भाव निर्गुण है जाय है । या प्रकार अलौकिक रसभावते रसात्मक स्वरूप कूं सर्वेन्द्रियते भोग करनों १। और अलौकिक रस भावते मुखावलोकन करनों २। और लौकिकभाव सापेक्ष मुखावलोकन करनों राजसभावते दो प्रकार कहे। और एक प्रकार तें तामसभावते मुखावलोकन करनों कह्यौ। ऐसें निर्गुण सगुण भेदते पाँच प्रकार कहे । यहाँ प्रथम व्रजगोपीन नें संयोग शृङ्गार रसात्मक स्वरूप कौ वर्णन कियौ है । यातें यह संपूर्ण ही व्रजगोपीकृत वर्णन फलरूप है साधनरूप नहीं है ॥ ७ ॥ V. Imp

New Chapter

अब व्रजगोपी "बर्हापीडं" श्लोक में कहे विप्रयोगरसात्मक केवल रसरूप नटवतस्वरूपकौ वर्णन करै हैं । विप्रयोगरसात्मक केवल रसरूप नटवत् स्वरूप का वर्णन

चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्जमालानुपृक्तपरिधानविचित्रवेषौ ।
मध्ये विरेजतुरलं पशुपालगोष्ठ्यां रङ्गे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ ॥८॥

आम्र के पल्लव, श्रवणन में हैं, मयूरपक्षगुच्छकौ मंडलाकार मुकुट मस्तक पै शोभा दै रह्यौ है, नानाप्रकार के कमलन की माला गले में शोभा दै रही है, और इनते मिले भये नीलाम्बर पीताम्बर वस्त्रन करकैं विचित्र हैं वेष जिनके ऐसे श्रीरामकृष्ण दोनों भ्राता रङ्ग भूमि में दो नट जैसें, तैसें पशुपालन की गोष्ठी में अत्यन्त शोभा कूं प्राप्त हैं । कभी-कभी गान भी करै हैं ॥ ८ ॥

गुणा माया च वेषार्थमुपयुक्ता भवन्ति हि । अतो रसस्याभिनये चत्वा-
रोऽर्था निरूपिताः ॥ १ ॥ रसरूप सुगन्धानां प्रतिष्ठा त्रिषु निश्चिता ।
धर्म्याच्छादनबोधाय मायाऽप्यत्र निरूप्यते ॥ २ ॥ वस्तु निर्देशमात्रेण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रोतृणां काव्यवद्रसः । रसवत्फलबोधाय प्रथमं पल्लवो मतः ॥ ३ ॥ शास्त्रार्थस्य परिज्ञानाद्भावस्य कलिका भवेत् । ततस्तस्य च वैचित्र्यं पुष्पस्थान मिहोच्यते ॥ ४ ॥ अहोरात्रं वासनास्यात्तत आच्छादनं स्मृतं । रसोत्पत्यर्थ मेतावन्निरूपितमिति स्थितिः ॥ ५ ॥ आविर्भावे रसास्वादान्नृत्यं शोभा ततो भवेत । अतोऽतिगुप्तो भगवान् रसत्वं प्रतिपद्यते ॥ ६ ॥

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी, या "नटवत" स्वरूप के परिधेय पदार्थन कौ तात्पर्य छै कारिकान में कहै हैं कै "गुणा माया च" आम्रपल्लव, मोरपच्छगुच्छ, कमलनकी माला, और पीताम्बर परिधानरूपा माया, ये चार पदार्थ नटवत्स्वरूप धारण करवे में उपयोगि हैं याते अभिनय में रसोत्पत्ति के अर्थ चार पदार्थ निरूपण किये । ये आम्रपल्लादि तीनों पदार्थ गुण हैं। और पीताँबर परिधानरूपा माया है। यह रसरूप के आच्छादन करवे के लिये है । ये तीनगण, रसस्थापिभाव, व्यभिचारिभाव, और विगाढ़भाव रूप हैं । यहाँ "विगाढभाव" कौ अर्थ, कटाक्षस्मितादिरूप "अनुभाव" अर्थ है । यहाँ रसस्थायिभावात्मक स्वरूप के आलंबन विभाव होयवे ते, रसस्थायिभाव और "विभाव" एक रसधर्मि स्वरूप ही है । याते आलंवन विभावात्मक रसधर्मि स्वरूप कौ वैचित्र्य, रसधर्म रूप स्थायिभाव और व्यभिचारिभाव और अनुभाव करकैं होय है । याते विशेष करकैं मनके मथन करवे वारे जे कटाक्षस्मितादिक अनुभाव हैं सो विगाढभाव है । या प्रकार ये आम्रपल्लवादि तीनगुण रसस्थायिभाव, व्यभिचारिभाव, विगाढ भाव रूप हैं । और रसरूप के ढकवे के लियैं पीतांबर परिधानरूपा माया कौ निरूपण है । ये चारों पदार्थ नटवेष में उपयोगि हैं । तहाँ आम्रपल्लवन में तौ रस प्रतिष्ठित है । याते आम्रपल्लव रसस्थायिभावात्मक हैं । यहाँ "रस" श्लेषार्थक है । याते रस धर्मि स्वरूप में और आम्रपल्लवन में दोनों में रस धर्म समझनों । और बर्हस्तवक में रूपमात्र प्रतिष्ठित है । मयूर में रसकौ व्यभिचार होय है । कारण कै जब मयूर रसोन्मत्त होय है । तबही पच्छन कूं फैलाय करकैं नृत्य करै है । नृत्य किये पश्चात् पच्छन कूं सकोर करकैं, पीछे कूँ पटक देय है याते मयूर में रसकौ व्यभिचार है । याते बर्हस्तवक व्यभिचार भाव है। और उत्पलाब्जमाला में सुगन्ध प्रतिष्ठित है । उत्पलाब्ज माला के सुगन्धते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चुंबनादिते रसानुभव होय है याते उत्पलाब्जमाला "अनुभाव" रूपा है। किन्तु रसधर्मि स्वरूप के रसधर्मन कूं आच्छादन करनों चहियै "रस" तबही रसता कूं प्राप्त होय है। रसके लोक में प्रकट भये पै तौ रसाभास है जाय है। या जतायवे के लियैं पीतांवर परिधानरूपा मायाकौ निरूपण है। अथवा रसात्मक आम्रपल्लव रजोगुणयुक्त हैं। याते रजोगुण युक्त आम्रपल्लवन के दर्शन करकैं रसधर्मि स्वरूप में विविध प्रकार के रसभाव उत्पन्न होय हैं। बर्हस्तवक में रूप प्रतिष्ठित है। याते यह तमोगुण युक्त है। तमोगुणते भगवान् के श्रीअंग में आसक्ति के आधिक्यते भगवत्स्वरूप में मन लीन होय है। कमलन में सुगंध है, याते कमल माला सत्वगुण रूपा है। या सत्वगुणते संपूर्ण भगवत्संबंधि पदार्थ रसोपयोगि हैं रसानुभव करवे योग्य हैं एसौ ज्ञान होय है। और रसधर्मि स्वरूप के रसधर्म कार्यन के गोपनार्थ, पीताम्बर परिधानरूपा माया कौ निरूपण है। अर्थात् भगवद्भक्तन कूं भगवत्सम्बंधिरस वार्तान के छिपायवे के लियैं कपटचातुर्य करनों परमावश्यक है। क्योंजी इन आम्रपल्लवादि कूं स्वरूप में धारण करवे कौ कहा प्रयोजन है। ऐसी आकांक्षा में कहै हैं कै सर्वात्मभाववती भगवद्भोग्या व्रजसीमन्तिनीन के भोगवे योग्य रस, रूप, सुगंध, या रसात्मक स्वरूप में विद्यमान हैं। या जतायवे के लिये ही प्रभु नें अपने स्वरूप में आम्रपल्लवादिक स्थापन किये हैं। तहाँ आम्रपल्लवन में रस की स्थिति है। बर्हस्तवक में रूप की स्थिति है। कमलन की मालामें सुगन्ध की स्थिति है। या क्रमते तीनों के रस, रूप, सुगन्ध की स्थिति निश्चित है। तहाँ रसधर्मि स्वरूप में रस के सूचनार्थ आम्रपत्रन कौ धारण है। बर्हस्तवक कौ सुन्दर रूप होयवे ते, स्वरूप सौन्दर्य सूचनार्थ बर्हस्तवक कौ धारण करनो है। और कमलन की माला में सुगन्ध बाहुल्य होयवे ते आनन्द रूप विग्रह में सहजसुगंध सूचनार्थ कमल माला कौ स्थापन करनों है। और रसधर्मिस्वरूप के तथा एकान्तभाषण आलिंगनादिरस कार्यन कूं रसवार्तान कूं गोप्य राखनों या जतायवे के लिये, स्वरूप में पीताम्बर परिधान रूपा माया कौ स्थापन है। क्यों जी यहाँ पल्लवादि समस्त पदार्थ शब्द ते ही निरूपण किये हैं। तब रसधर्मि स्वरूप के संग रसानुभव करे बिना, केवल पल्लवादि के कथन मात्र ते रसानुभव कैसें है सकै है। जैसे कोई रसज्ञपुरुष कही कै शर्करा मधुर होय है। ऐसें कथनमात्र ते शर्करा के माधुर्यरस कौ व्रजगोपीन कूं अनुभव कैसै है सकै

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। अर्थात् नहीं है सकै है । ऐसी शङ्का में कहै हैं कै "वस्तुनिर्देशमात्रेण" साक्षात्स्वरूप के अनुभव करे बिना भी रस, रूप, सुगन्धित वस्तु के कथनमात्र ते भी रसानुभव होय है । यामें दृष्टान्त कहै हैं कै "जैसैं" रसीले वाक्यन ते युक्त काव्य के श्रवणकर्त्ता रसज्ञ श्रोता, काव्यस्थितरस कूं मिठाय २ करकैं आस्वादन करै हैं, ऐसैं ही वनस्थिता व्रजसुन्दरी तौ भगवत्स्वरूप में स्थित आम्रपल्लवादि के दर्शन करकैं आम्रपल्लवादि ते संसूचित रसरूप सुगंध कौ अनुभव, रसात्मक स्वरूप के संग रसानुभव करै ही हैं। और व्रजस्थिता सुन्दरीन कूं तौ, या विप्रयोग रसात्मक नटवर स्वरूप के परस्पर में वर्णन करवे ते, श्रवण करवे ते, साक्षात्स्वरूप के अनुभव किये बिना ही, या काव्यवत् वाक्यनष्ठ स्वरूप सौन्दर्याधरसुधारस कौ अनुभव होय है । या प्रकारवेणुनाद द्वारा अनुभव किये स्वरूप में आम्रपल्लवादि कौ दर्शन करकैं, आम्रपल्लवादि ते सचित किये रस, रूप, सुगन्ध कौ अनुभव रसात्मक स्वरूप विषैं व्रजगोपीन कूं होय है । अब पदार्थचतुष्ट के क्रम ते निरूपण में हेतु कहै हैं कै "रसवत्फलवोधाय" रसवान् फल के बोध करायवे के लियें प्रथम पल्लव कौ निरूपण है । अर्थात् हरे २ लाल २ पत्तान के दर्शन ते यह जतायौ है कै अगारी रसवान् फल की प्राप्ति होयगी, अधरसुधारस फलभोग प्राप्त होयगो। अब अगारी के वर्हस्तवक धारण के प्रयोजन कूं कहै हैं कै "शास्त्रार्थस्य" रसशास्त्र कौ अर्थ अधरसुधारस भोगरूप प्रयोजन है या सुधारस भोग के परिज्ञान ते, भगवद्विषयक स्नेह भाव की कलिकारूपा आसक्ति होय है । प्रेम के अनन्तर आसक्ति कौ होंनों उचित ही है । पूर्व के प्रमाण प्रकरण में प्रभु नें बाललीला करकैं व्रज के गोपी गोपन के हृदय में प्रेम उत्पन्न कियौ । या प्रमेय प्रकरण में श्रृङ्गाररसात्मक लीला करकैं प्रेम कूं आसक्तिभाव में करै है । जैसैं कलिका में रस, रूप, सुगन्ध के होते भी सब अप्रकट रहै हैं, किंचित २ ही प्रकट होंय हैं, ऐसैं ही आसक्तिभाव में कटाक्षस्मितादिक भावकार्य, अव्यक्तरूप ते होते भी किंचित् ही प्रकट होंय हैं । याते कलिका तुल्य आसक्तिभाव के सूचनार्थ, कलिका तुल्य मयूरपक्ष गुच्छ कौ मुकुट कह्यौ । अब तृतीय भाव कूं कहै हैं "ततस्तस्य" तदनन्तर ता कलिकारूपा आसक्तिभाव कौ तथा चकार ते नटवर वेश कौ वैचित्र पुष्पस्थान व्यसनभाव कह्यौ । जैसै कलिका के विकसित होयवे ते पुष्परूप भये पै रस, रूप, सुगन्ध सब ही प्रकट होंय हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसें ही कलिका तुल्य आसक्ति भाव ते व्यसन भाव के प्रकट भये पै, फलरूप जे आलिंगनादि विविधविलास रूप कार्य, व्यसन भाव में प्रकट होंय हैं, याते पुष्पन कौ स्थान कमलन की माला कही । अब चतुर्थ भाव कूं कहै हैं कै "अहोरात्रं" जैसें पुष्प के भये पै रस, रूप, सुगन्ध प्रकट है जाय हैं। ऐसें ही पुष्प की "वासना" सुगन्ध सब कूं नित्यप्रति प्रकट रहै है। ऐसें ही व्यसनभाव के भये पै व्यसनभाव के कार्य जे नित्यप्रति गमन दर्शन स्पर्श आलिंगनादिकार्यन के नित्यप्रति प्रकट होयवे ते "वासना" रसवार्तान की वासना लोक में प्रकट है जाय, तब तौ रसवार्तान के प्रकट होयवे ते रसाभास है जायगौ, रस नहीं रहैगो । याते रसतत्त्वसाधन के अर्थ रसाच्छादन की अपेक्षा होय है । याते रसस्वरूप कूं तथा रसवार्तान कूं आच्छादन करवे के अर्थ, माया रूप पीताम्बर परिधान कौ धारण करनों है । अर्थात् प्रभु के दर्शनालिंगनादि कार्यन के गोपनार्थ चातुर्य विशेष कपट की अपेक्षा है । भगवत्सम्बन्धि रसवार्तान कूं गोप्य-राखवे में ही फल प्राप्त होय है । अब या इतनी सामग्री के निरूपण कौ प्रयोजन कहै हैं कै "रसोत्पत्त्यर्थम्" यह तत्तद्भाव सूचक आम्रपल्लवादि पदार्थन कौ जो निरूपण है सो रसोत्पत्ति के अर्थ हैं । या प्रकार की क्रियान के करवे ते ही रसोत्पत्ति होय है । क्यौं जी या प्रकार, रससामग्री सहित स्वरूप के वर्णन करवे ते तौ संयोगरसात्मक स्वरूप कौ वर्णन भयौ, तब तौ या श्लोक के आभास में जो यह कह्यौ है कै केवल रसरूप कूं कहै हैं, या कथन में विरोध आवै है, ऐसी शङ्का में कहै हैं कै "रसोत्पत्त्यर्थं" इन व्रजगोपीन के हृदय में विप्रयोग रसात्मक स्वरूप के प्रादुर्भाव के अर्थ ही यह इतनों निरूपण है । संयोग रसात्मक स्वरूप कौ निरूपण नहीं है । क्यौं जी प्रभु नें या प्रणाली के विना ही व्रजगोपीन के हृदय में अपनों रसात्मक स्वरूप क्यों नहीं प्रकट कियौ । तहाँ कहै हैं कै "इतिस्थिति" यद्यपि प्रभु सर्वकरण समर्थ हैं या प्रणाली के बिना भी रसोत्पत्ति कर सकैं हैं, तथापि रसोत्पत्ति करवे में रसशास्त्र की ऐसी ही मर्यादा है । याते रसमर्यादा के स्थापनार्थ इतनों निरूपण है । यही भरतसूत्र में कह्यौ है कै—

"विभावानुभावव्यभिचारि संयोगाद्रसनिष्पत्तिः ॥"

आलंवनोद्दीपनद्विविधविभाव, अनुभाव, व्यभिचारिभाव के संयोग ते ही रसो-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्पत्ति होय है। याते या रस शास्त्र की मर्यादा भंग न होय, याके अर्थ ही इतने आम्रपल्लवादि परिकर कौ निरूपण है। या प्रकार रस, रूप के प्रादुर्भाव के अनन्तर रसास्वादन करवे ते नृत्य होय है। या नृत्य तें शोभा होय है। याते अविगुप्त रसरूप भगवान् रसरूपत्व कूं प्राप्त होय है। याते "रसोवैसः" या श्रुति में कह्यौ भगवान् कौ रसरूपत्व समर्थित भयौ। यह छै कारिकान कौ अनुवादार्थ है॥

अथ श्लोक व्याख्या--याते पूर्व के "अक्षण्वतां" या श्लोक में "वरवत्" स्वरूप कौ वर्णन कियौ। "चूतप्रवाल" या श्लोक में "नटवत्" स्वरूप कौ वर्णन करै हैं। या प्रकार द्विविध शृंगार रसात्मक स्वरूप कौ वर्णन भयौ क्योंजी चूतप्रवाल यह श्लोक केवल "वर" पदकूं त्याग करकैं "वर्हापीडं" या श्लोक के पूर्वार्द्ध कौ अनुवाद रूप है। किन्तु "वर्हापीडं" श्लोक में कर्ण में कन्नेरकुसुम धारण करनों कह्यौ है। या श्लोक में आम्रपल्लव धारण करनों कह्यौ है। याते आम्रपत्रन के संग एक कन्नेरपुष्प भी कान में धारण कियौ है। किन्तु "वर्हापीडं" या श्लोक के सब विशेष्यविशेषण पदन में एक वचन है। और या श्लोक के सब विशेष्य विशेषण पदन में द्विवचन है। या कौ यह अभिप्राय है। कै जैसैं भगवत् अवतार दशा में श्रीबलदेवजी भूभार हरणादि कार्य करकैं प्रभुकूं प्रसन्नकरै हैं। तैसैं या नाट्यलीला में रसोत्पत्तिके अर्थ दो स्वरूप की आवश्यकता है। याते रसाभिनयमें रसोत्पत्ति के अर्थ श्रीबलदेवजी में श्रीकृष्ण कौ आवेश है। याते श्रीबलदेवजी हू रस रूप हैं। नाट्यलीलामें रस बढायवे के अर्थ, साधु साधु व्वाह व्वाह प्रशंशा करवे के अर्थ, गले में भुजा मेलवे के अर्थ प्रिया प्रियतम के अन्तर्गत भाव प्रकट करवे के अर्थ बलदेवजी कौ उपयोग है। याते श्रीबलदेवजी संग में हैं, याते द्विवचन है। वास्तव में तौ दोंनों स्वरूप श्रीकृष्ण के हैं। अब नटवर स्वरूपकौ वर्णन करै हैं कै 'चूतप्रवाल' हरे हरे, लाल, लाल कोमल आम्रपल्लव श्रवणन में हैं। मोरपक्षके गुच्छाकौ मण्डलाकार मुकुट मस्तक पै शोभित है। दिन विकासी, रात्रि विकासी कमलन की पादावलम्बिनी माला कण्ठमें शोभित है, ये आम्रपल्लवादिक एकते एक सब मिलेभये हैं। और इनतेही अनुयुक्त मिलेभये नीलाम्बर पीताम्बर के धोती उपरना हैं, इन आम्रपल्लवादि कूं धारण करकैं विचित्र हैं वेष जिनके ऐसे रामकृष्ण दोंनों भ्राता पशुपाल सभा के मध्य में अत्यन्त शोभित है रहे हैं। यहाँ मोर मुटकुके अधोभागमें पीताम्बर खण्ड में बँधे आम्रपत्र, मोरमुकटते मिल रहे हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पीताम्बर के उपरना धोती कमलमालाते मिल रहे हैं, इन आम्रपल्लवादि परिधेय पदार्थन के धारण करवेते श्रीराम कृष्ण दोनों के विचित्र वेश अत्यन्त शोभित हैं। या नाट्य में प्रभुको विचित्र वेश धारण करनों नवरस के अभिनिवेशके अर्थ है। ये आम्रपल्लवादिक नवरस के साधन हैं। कारण कै ये रजस्तमः सत्वगुण रूप आमूपल्लावादिक स्थायिभाव, व्यभिचारिभाव, विगाढ भाव रूप हैं। इन तीनों के परस्पर में गुण प्रधानते नवरसनकी उत्पत्ति होथ है। जैसैं जहां हास्य प्रधान होय, रतिगौणी होय तब हास्यरस होय है, और जहां हास्य गौण होय, और रतिकी मुख्यता होय, तब शृंगार रस होय है। ऐसैं ये त्रिगुणात्मक तीनों भाव, नौहू रसके साधक हैं, और शोभा तौ रसधर्मि स्वरूप के अन्तर्गत है। याते या रसधर्मि शोभावान् स्वरूप कौ निरूपण या श्लोक में वाक्यार्थ है। या प्रकार रसरूपभगवत्स्वरूप कौ निरूपण करकैं, अब पशुपाल समाजमें ता रसके पोषक गीत वाद्य विशेष कौ निरूपण करे हैं, कै " मध्ये विरेजतुरलम् " श्रीराम कृष्ण दोंनों पशुपाल गोष्ठी के मध्यमें अत्यन्त शोभाकूं प्राप्त है रहे हैं। पशुपाल गोष्ठी अत्यन्त छिपी भयी नहीं है। सबके सन्मुख है। याते रस सुलभ सूचित कियौ। यदि रसरूप गोपिकागोष्ठी में होतौ तब तौ रस रूप दुर्लभ हौ किन्तु अबतौ रस सुलभ है। पशुपाल समाजमें या कथनते तौ समाज में गीत वाद्य भी होंय हैं याते समाज में गीत वाद्य भी सूचित किये याते दृष्टान्त कहे हैं. कै ' रङ्गे यथा नटवरौ ' रंगभूमि स्थानमें दो नट जैसैं, तैसैं शोभित है रहे हैं। या नटके दृष्टान्तते गीत वाद्य भी कहे। और नृत्य भी सूचित कियौ। और ' क्वचगायमानौ ' कभी कभी गानभी करै हैं। या पदते गान कह्यौ। और नृत्यभी सूचित कियौ। ऐसैं दो पदते तीन कार्य कहे। नृत्य, गीत और वाद्य, इन तीनों की समानता ही सर्वोत्तम रसोत्पत्ति कारिणी होयहै। जैसो स्वर ताल लय उत्थान पतन सहित गान होय, तैसेही ताल स्वर युक्त बाजे होंय, और तैसौही विविध रस भाव बोधक सुन्दर नृत्य होय। तब ही रसोत्पत्ति होय है। क्योंजी ' नटवर ' पदमें नृत्य वाच्यार्थ है। और वाद्य सूचित अर्थ है। ऐसौ अर्थ क्यों नहीं कियौ। तहां कहे हैं कै ' क्वच ' गीत वाद्य तौ बहुत काल पर्यन्त होते रहे हैं, किन्तु नृत्य तौ कदाचित् रसके उद्रेक आधिक्य में ही होय है। याते यहां ' नटवर ' पदकौ वाच्य अर्थ वाद्य ही कह्यौ। क्योंजी पशुपाल गोष्ठी में प्रभु कोई समय ही विराजे होंयगे, तहां कहे हैं कै ' अलं ' बहुत काल पर्यन्त विराजे हैं। क्योंजी यह रसोत्पादक रसाभिनय, रसशास्त्रानुसार नहीं है। ऐसो शंकामें दृष्टान्त कहे हैं, कै ' रङ्ग यथानटवरौ '

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रसशास्त्रोक्त आधार भूमि जो रङ्ग मण्डप हैं, तामें दो नट जैसें रस शास्त्र के अनुसार अभिनय करें हैं। तैसें ही रामकृष्ण दोनों भैय्या रसशास्त्र के अनुसार ही रसाभिनय करें हैं। यहां 'नटवर' 'पदमें जो 'वर' पद है याते धर्मसंहित रस धर्मिस्वरूप के निरूपण की शंका के निवारणार्थ कहे है, कै यहाँ 'वर' पद अलौकिकाभिनय, जतायवे के अर्थ है। या प्रकार नटवर पदते राजस नृत्यकूं कह करकें सात्विकभाव युक्त नृत्यकूं कहे हैं कै 'क्वचगायमानौ' कोई समय रंगभूमि में बैठकर हस्ताभिनय मात्र पूर्वक गान करें हैं। अर्थात् हातनकूं नचायकर भाव बताय.कर, श्रम रहित गान करें हैं। बर्हस्तवक धारण करकें तारुसभाव युक्त नृत्य है। सबके मोह करायवे के लिये ही मोरमुकुट धारण कियौ है ॥ ८ ॥

क्योंजी केवल रसके निरूपण में आम्रपल्लवादि सामग्री के वर्णन करवे कौ कहा प्रयोजन है। कारण कै केवल रसतौ सामग्रीके अभावते नाट्यमें होय है। याते सामग्री सहित स्वरूप के वर्णन करवेते तौ संयोग शृंगार रसात्मक स्वरूप कौ वर्णन भयौ। याते तौ प्रभुकूं नायक अथवा नाट्य कर्ता कहनों चहियै। केवल रस रूप नहीं कहनो चहियै। ऐसी शंका में श्रीवल्लभाचार्यजा नें 'गुणा माया' इत्यादि कारिका कही है। यामें यह अभिप्राय है कै—

(नाटचशब्दो रसे मुख्यो रसाभिव्यक्त कारणम्।
चतुर्धाभिनियोपेतं लक्षणा वृत्तितो बुधैः ॥
नर्तनं नाटचमित्युक्तं सत्वत्रा भिनयोभवेत ')

नाट्य शब्द रसोत्पत्ति में मुख्य है, रसके प्रकट करवे में नाट्यही कारण है। कारणकैं चार प्रकार के अभिनयते युक्त जो नृत्य है ताकूं ही पण्डित जन लक्षणा 'मुख्यार्थ सम्बन्धिनी फलार्थ लक्षणा' या लक्षणा ते रसकौ अनुभव होय, यही या लक्षणा कौ मुख्य फल है। ऐसी समुदाय वृत्तिते नृत्य कूं ही नाट्य कहे हैं। यह नाट्य ही या रसशास्त्र में अभिनय नामते प्रसिद्ध है। रूढ है। याते यहां रस सम्बन्धि आंगिकादि चतुर्विधभिनय युक्त जो नृत्य विशेष है, सो लक्ष्य अर्थ रस कौ, अवबोधक है। और ऐसे नृत्य विशेष में वर्तमान सो लक्ष्य अर्थक नाट्य शब्द है, सो लाक्षणिक है याते रसोत्पादक नृत्य में रूढ है। या प्रकार संगीत रत्नाकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्रन्थ में और वाके मूल स्वरूप जो भरत सूत्रादि आर्ष ग्रन्थन में भी नाट्यशब्द कौ यही अर्थ कह्यौ है। किन्तु या नाटय शब्द में योग भी है। कारण कै "नट" अवस्कन्दनें, अवस्कंन्दन नाम नाटय कौ है। ऐसैं "नट" धातुते "अर्हार्थक" "कृत्य" प्रत्यय के प्रयोग करवे ते नाट्य शब्द सिद्ध होय है। याते "नर्तितुं, अभिनेतुं वा योग्यं नाटयं" नर्तन करवे योग्य, वा अभिनय करवे योग्य जो कार्य है, सो नाट्य है। या प्रकार योग शक्तिते नाट्य शब्दकौ अर्थ केवल अभिनय करवे योग्य कार्य मात्र में होय है। याते नाटय शब्द योगरूढ है। या प्रकार एक शब्द के अनेकार्थ होयवे ते कहे हैं कै "अन्यायश्चानेकशब्दत्वं" या जैमिनिस्मृति के वाक्य में यह निर्णय कियौ है कै एक शब्दकौ एकही वाच्य अर्थ करनों। या नियम के अनुसार जा शब्द कौ अर्थ, धर्म विशेष में पर्यवसान-अन्त होय सोही अर्थ मुख्य है। याते नर्तन के द्वारा प्रकट कियौ जो रसविशेप वाचक ही नाट्य पदकौ अर्थ है। अर्थात् जो नृत्य विशेष रसकूं प्रकट करै सो नाटय है। और नाटय पदके नर्तन अर्थ में भी नटकौ भाव और नृत्यकार्य ही नाटय में मुख्य है। याते योगरूढ के विचार में भी, भाव में और कर्म में "ण्यत्" प्रत्यय के विधान ते यद्यपि भावकौ और कर्म कौ नृत्य में तुल्य प्रयोग है, तथापि रससत्ता के विना नृत्य कर्म कौ प्रयोग करनों उत्तम नहीं है। रसोत्पादक भाव के विना नृत्य अयोग्य ही है। याते नर्तन में भी रस प्रयोजक भाव ही मुख्य है। याते "ण्यत्" प्रत्यय कौ विधान, भाव में ही मुख्य है। और नृत्यकर्म में सामान्य रीतिते प्रवृत्त भयौ भी "ण्यत्" प्रत्यय योग विशेषते रसाभिव्यंजक नृत्यकर्म तौ संकोचवृत्ति में ही रहैगौ। अर्थात् भाव के विना केवल नृत्य रसोत्पादक नहीं होय है। याते नर्तव्य अर्थ में भी नाटय शब्द कौ अर्थ शक्यसंबंध युक्त लक्षणागर्भित है। ऐसैं दोनों प्रकारते नाटय शब्द के अर्थ विचार में नृत्य रस प्रकट करवे वारौ ही है, याते नटकथित वाक्यार्थ पदार्थन के द्वारा भाव सहित, नटकृत अभिनय है आत्मा स्वरूप जाकौ, ऐसौ जो नृत्य है सो नाटय है। सोही कहे हैं कै—

" आङ्गिकाभिनयैरेव भावानेव व्यनक्ति यत्तन्नृत्यं, मार्गशब्देनप्रसिद्धं नृत्य वेदिनान्। "

नाट्य, रस भाव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"गात्रविक्षेपमात्रं तु सर्वाभिनय वर्जितम्, आङ्गिकोक्त प्रकारेण नृत्तं नृत्तविदो विदुः ॥"

जो नृत्य आङ्गिकादि अभिनयन की रीति ते शब्दन के द्वारा अनेक प्रकार के भावन कूँ प्रकट करै है, वह नृत्य वेत्तान कौ नृत्य, नाट्य नामते प्रसिद्ध है। और जो नृत्य आङ्गिकादि चतुर्विध अभिनय करकैं वर्जित है किन्तु केवल आङ्गिकाभिनयोक्त प्रकारतं अङ्ग प्रत्यङ्गोपाङ्ग प्रकारते किये केवल गात्रविक्षेपमात्र कूं जे नृत्तवेत्ता हैं, ते नृत्त कहै हैं। ऐसैं नर्तन, नृत्त और नृत्य, नृत्य के तीन भेद कहकैं पुनः कहैं हैं कै—

"काव्यवद्धं विभावादि व्यजन योर्थो नटे स्थितः सामाजिकानां जनयन् निर्विघ्नरससंविदम्।"

कविरचित जे नाटकादि रूपक हैं ते विभाव अनुभाव व्यभिचारि भावन करकैं स्थायिभाव रसकूं पुष्ट करकैं प्रकट करै हैं, ऐसौ जो पदार्थ नटके हृदय में स्थित है, सो सामाजिकनकूँ निर्विघ्न पूर्वक रस ज्ञान कराय करकैं आनन्द रसानुभव करावै है सो अभिनय है। ऐसैं अभिनय के स्वरूप कूं कह करकैं, पुनः कह हैं। कै—

आङ्गिको वाचिकस्तद्वदाहार्यः सात्विकोऽपरः। चतुर्धाऽभिनयस्तत्राङ्गिकोङ्गैः संप्रदर्शितः, वाचाविरिचितः काव्य नाटकादिस्तु वाचिकः ॥ आहार्यो हारकेयूरकटकादि विभूषणम्। सात्विकः सात्विकै र्भावै र्भावुकेन विभावितः ॥

तहाँ नयन कटाक्ष भृकुटि भुजाकरादि अङ्ग चेष्टान के सहित कियौ नृत्य आङ्गिकाभिनय है ॥ १ ॥ वाणीते निरूपण किये काव्य नाटकादि के वर्णन सहित कियौ वाचिक अभिनय है ॥ २ ॥ हार बाहुबंध कंकण किंकिणी नूपुरादिभूषण धारण करकैं कियौ आहार्य अभिनय है ॥ ३ ॥ और स्तंभ स्वेद रोमाँच अन्तःकरण के सात्विक भावन के प्रकट करवे ते कियौ सात्विक अभिनय है ॥ ४ ॥ विशेष करकैं रसज्ञ पुरुषन कूं रसकौ अनुभव सात्विक भावन करकैं ही होय है। या प्रकार चतुर्विध अभिनय के मध्य में वेषात्मा जो आहार्य अभिनय है ताके अर्थ, रस, रूप सुगंधगुण और पीताम्बर परिधानस्था कनक कपिशतारूपा माया, या वेषात्मक आहार्य अभिनय में उपयोगि हैं या हेतु ते रसोत्पत्तिकारक आहार्याभिनय के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निरूपण में ये आम्रपल्लवादि परिधानान्त चार पदार्थ निरूपण किये । कारण के या प्रकार ते ही रस अभिव्यक्त होय है किन्तु रसतौ विभावानुभाव व्यभिचारि भावादि ते वृद्धि कूं प्राप्त भयौ स्थायिभावात्मक अमूर्त रस आलम्बनविभाव के विना प्रकट नहीं है सकै है । याते रसात्मक आलम्बन स्वरूप के विषे आम्रपल्लवादि के द्वारा रसादि धर्मन कूं प्रकट करकैं "कैवल्यं त्यजन्" अर्थात् उद्दीपन विभादि सामग्री के अभाव कूं त्याग तौ नाटयरूपता कूं भी त्यागे हैं । अर्थात् प्रभु व्रजगोपीन के हृदय में रसधर्म कूं प्रकट करकैं रस धर्मि स्वरूपते ही प्रकट होंय हैं । ऐसें संयोग वियोग उभयकार्य साधन करवे के अर्थ, नटवेषात्मक आहार्याभिनयरूप आम्रपल्लवादि के द्वारा अपने रसधर्मि स्वरूप में आलंवनत्व आरोपण करकैं, "अङ्गिक" वाचिक, सात्विक, अभिनय त्रयते, सामाजिक गोपीजन भक्तन कूं रसात्मक स्वरूप ज्ञान कराय करकैं विप्रयोग रसानुभव करामें हैं । पुनः यहाँ तौ आलंवन विभावात्मक रसात्मक स्वरूपकौही नटभाव है । तामें भी नाट्यदशा में अपने आलिंगनादि मुख्य धर्मन कूँ प्रकट नहीं करवे ते नट वेष में आलम्बनता भी गौणी है । याते रसात्मक स्वरूप में गुप्त रस कूँ नहीं जानवे वारे गोपीजन भक्तन कूं अर्थ रसात्मक स्वरूप में नटरूप ते आलंवनता आरोपण करी है । यद्यपि रसात्मक स्वरूप में ब्रह्मानन्दात्मक रस और रसावलंवनता पूर्वोक्त प्रकार ते दोंनों विद्यमान हैं । यामें कोई विरोध नहीं है । तथापि कोई समय प्रभु अपने रसभावन कूं गौण करकैं अपने आलम्बनत्व कूं ही प्रकट करै हैं । तैसें यहाँ स्वावलंवनत्व कूं गौण करकैं अर्थात् अपनी रसात्मकतालम्बनता कूं प्रकट नहीं करकैं, नटवेष कूं ही प्रकट करकैं "रसोवैसः" या श्रुति में कहे अपने रसात्मक स्वरूप कूं संगीत शास्त्रोक्त रीति ते अभिनय करकैं व्रजगोपीन कूं विप्रयोग रसानुभव करामें है, याते नटवेष धारण करवे में आम्रपल्लवादि कौ उपयोग है । याते यहाँ पल्लवादि कौ निरूपण है । क्यों जी तब तौ यहाँ रस, रूप, सुगन्ध, गुणन कौ ही निरूपण करनों हो, पल्लवादि गुणीन कौ निरूपण क्यों कियौ । तहाँ कहे हैं कै "धर्म्याच्छादनवोधाय" रसधर्मि स्वरूप में गुप्त रसबोध करायवे के अर्थ पल्लवादि कौ निरूपण है । याते कै पल्लवादि में क्रम ते रस, रूप, सुगन्ध, गुणन की स्थिति निश्चित है । केवल गुणन के निरूपण में तौ रस, रूप, सुगन्ध, गुण की आगंतुकता मानी जाती, अर्थात् पीछे धारण किये माने जाते, स्वरूप में रस, रूप, सुगन्ध नहीं माने जाते । याते पल्लवादि गुणी निरूपण किये । और रस कूं गुप्त राखनों चाहियै । या बोध करायवे के अर्थ पीताम्बर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिधानस्था कनक कपिशता रूपा माया कौ भी निरूपण कियौ । क्यों जी रस तौ आम्र के फलन में होय है पल्लवन में नहीं होय है, याते पल्लवादिकन कौ उपयोग नहीं है । याते कोई प्रकार ते पल्लवादि कौ उपयोग होते भी पल्लवादिकन कूं हाथ ते दिखाय करकैं ही अभिनय करनों हो । वेष में पल्लवादि कूं स्थापन नहीं करनों चाहियै । तहाँ कहै हैं कै "वस्तुनिर्देशमात्रेण" नाट्य में रसनेन्द्रिय ग्राह्य रसास्वादन नहीं है, किन्तु मानसिक रसास्वादन होय है । जैसें रसवत्काव्य कूँ श्रवण करकैं शब्द द्वारा रसास्वादन होय है । तैसें नाट्य में मानसिक रसास्वादन होय है । यद्यपि नाट्य में पल्लवादि वस्तून के श्रीहस्त में धारण करवे ते नेत्रन के द्वारा मानसिक आस्वाद तौ होतौ, तथापि रसरूप में अभिव्यक्त रसात्मक अर्थ कौ बोध नहीं होतौ । याते रसवत्फल बोधनार्थ प्रथम पल्लव धारण करनों कह्यो । हरे २ लाल २ रसीले आम्रपल्लवन के दर्शन ते अगारी रसवत्फल की प्राप्ति अवश्य होयगी । यह उत्पलाब्जमाला के द्वारा बोध करायौ । याते मानसिक आस्वाद की सिद्धि भयी याते रस की प्रतिष्ठा आम्रपल्लव में भी दुर्घट नहीं है । याते पल्लव धारण करनों उचित है। कारण कै अभिनयोक्त प्रकार ते प्रभु जा व्यक्ति में अपने रसात्मक स्वरूप कूं स्थापन करै हैं ता व्यक्ति के हृदय में ते रसात्मक स्वरूप कदापि नहीं जाय है। किन्तु रसात्मक स्वरूप के बीजरूप होयवे ते फलप्रदान ही करै है । या रसात्मक वस्तु की ऐसी ही स्थिति है । याते रसशास्त्रोक्त नाट्य रीति ते प्राप्त भयौ है रसभाव जिन कूं, ऐसे सर्वात्मभाववान् भक्तन कूं रसवत्फल की प्राप्ति अवश्य होयवे के अर्थ रसात्मक स्वरूप में प्रथम पल्लवस्थापन करनों कह्यौ । क्यों जी यह पल्लवादि कौ स्थापन भलै ही या ही हेतु ते होय, तथापि रसशास्त्र में तौ इष्टमित्रादि के दर्शन श्रवण स्मरणादि करकैं तत्तत्कारणन करकैं प्रकट भयौ जो प्रमोदात्मा स्थायिभाव, सो तत्तत् रसानुकूल, देश, काल, कलावेश भोगादि के सेवनादि द्वारा तत्तत्कारणन करकै आकर्षित भयौ चित्त सोही २ रसरूप कह्यौ है । सो रस तौ मानस विकार है । यह आन्तर कौ मानस विकार तौ अनेक रूप है और अनित्य है । किन्तु भगवान् तौ अनेक रस, रूप और अनित्य वस्तु नहीं हैं । और पूर्व के "अवतावतां" श्लोक में प्रभु कौ वरवत्स्वरूप कह्यौ । और या श्लोक में नट के दृष्टान्त ते प्रभु कूं नाट्यकर्ता कह्यौ है। और या श्लोक की विवरण कारिकान में भी प्रभु कूँ अभिनयकर्ता ही कह्यौ है । या कथन ते तौ प्रभु कौ नायक आलम्बनभाव तथा अभिनेता भाव ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्पष्ट होय है। याते "सर्वगन्धःसर्वरसः" या श्रुति के कथनानुसार प्रभु कौ सर्वगन्ध सर्वरसत्व तौ सिद्ध नहीं होय है। तब या श्लोक में विप्रयोगरसात्मक केवल रस कह्यौ है। या प्रतिज्ञा की पूर्ति कैसें भयी। ऐसी आकांक्षा में कहै हैं कै "शास्त्रार्थस्यपरिज्ञानात्" याकौ यह अर्थ है कै "रसोवैसः" या श्रुति में भगवान् कूं रसरूप कह्यौ है। तथा "ह्यसद्वा इदमग्रआसीत्" यह दृश्यमान जगत् पूर्व में आनन्दस्वरूप में ही लीन हो। इत्यादि श्रुतीन में सर्वोपादान रूप ब्रह्म कौ रसत्व बोध करायौ है। और लोक में भी रसशब्द रसनाग्राह्य गुण में रसीले चलायमान द्रव्य में सारभूत आस्वाद्य स्वानन्दजनक पदार्थन में तहाँ २ रसप्रसिद्ध है। तिन प्रसिद्ध रसपदार्थन में ते कौनसौ रस या मूल श्लोक में कहनों इच्छित है। ऐसो आकांक्षा में श्रुति कहै है कै—

"रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति को ह्येवान्यात्कः
प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यादेष ह्येवानन्द याति ॥"

यह जीवात्मा रस प्राप्त करकै ही आनन्दयुक्त होय है, ऐसौ कौन जीव है जो रस के विना आनन्दित होय। ऐसौ कौन जीव है जौ रस के विना प्राण धारण करै, यदि हृदयाकाश में यह सर्व व्यापक आनन्द रस नहीं होतौ तब यह जीव कोंन अर्थ प्राण धारण करतौ, याते यह रसरूप ही आनन्द प्रदान करै है। या श्रुतिनें या रस कूं ही आनन्दरूप और प्राण धारण प्रयोजक, हृदयाकाशस्थ, आनन्दजनक रस कूं ही कह्यौ है। याते प्राणीन के हृदयाकाश में स्थित आनन्दजनक जो आनन्द है, सो रस है— यह सिद्ध भयौ। यद्यपि रसानुभव करवे में यह आनन्दोत्पत्तिरूप रसरूपकार्य, शरीर के सर्वाङ्गन में अनुभव होय है याते रसकार्य आनन्द सर्व शरीर व्यापी है, तथापि "समानसीन आत्मा जनानां" या श्रुति नें सर्व शरीरांगव्यापि आनन्दरस कार्य की विशेषस्थिति प्राणीन के मन में ही रहै यह निश्चय कियौ है। जब रसकार्य की स्थिति विशेष रूप ते मन में ही है तब तो रसशास्त्रोक्त प्रणाली ते उत्पन्न भयौ जो प्रमोदात्मा मनोविकार है, सो भी रसात्मा भगवान् कौ कार्यरूप है। कारण कै "एषह्येवानन्दयाति" या निश्चयात्मिका श्रुति कौ भी "हि" शब्द ते निश्चयात्मक कथन है। याते मानसविकार भी रसात्मा भगवान् कौ कार्यअंश है। यामें अन्य श्रुति की सम्मति कहै है कै—

"तस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति"

ता कारणानन्द रसात्मा भगवान् की मात्रा कौ ही अन्य प्राणी उपभोग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करे हैं। याते कारणरूप रसात्मा भगवान् के कार्य रूप रसांशते ही लोकन कूँ रसत्व की प्रतीति होय है। याते "रसोवैसः" भगवान् ही रसरूप हैं। अन्य ब्रह्मादि देव तिर्यङ् मनुष्यादि प्राणीन में रस मात्रांश रूप ते बट्यौ भयौ है। अन्य सब प्राणी रसात्मा प्रभु के अंशमात्र के भोक्ता हैं। याते ही रसात्मा भगवान् में पुरुषपद कौ प्रयोग है। अन्य सब तौ भगवान् के बटे भये अंश ते पुरुष कहे जाँय हैं। ऐसै ही लोक में रस बट्यौ भयौ है। लोक में पूर्ण रस नहीं है। क्योंजी जब सब में रसात्मा प्रभु कौ अंश है। तब तौ सब ही आनन्दमात्र रसरूप हैं, तब शास्त्रोक्त प्रणाली ते रसोत्पत्ति करवे में ही कहा विशेषता है, ऐसी शङ्का नहीं करनी। कारण कै रस कौ स्वरूप ही ऐसौ है शास्त्रोक्त रीति ते ही रसोत्पत्ति होय है। यामें प्रमाण कौ अभाव नहीं है। पूर्व में भी बहुत श्रुतीन के प्रमाण दीने हैं। लौकिक रीति ते रस के अभिव्यक्त भये पै, या नट के दृष्टान्त ते अलौकिक रसोत्पत्ति में भी ऐसौ ही अनुमान कर्तव्य है। कारण कै रस धर्मि कारण ब्रह्म के धर्म ही, रस कार्य में अभिव्यक्त होय है। याते रसकौ ब्रह्मरूप होयवेते पूर्वोक्त रसके अनित्यत्व कौ भी संदेह निवारण भयौ। जब ब्रह्म रस नित्य है, तब रस मनोविकार भी नहीं है, और ब्रह्म रसके अनेक रूपते प्रकट होयवेमें दोष नहीं है। कारण कै रस ब्रह्मको अनेक रूप होनों रसोत्पत्ति प्रणालोक्त है। याते वास्तवरसरूपके अनेक रूप होयवेते वास्तवरसरूपमें कोई बाधा नहीं है। कारण कै 'अनन्तरूपं' या श्रुति में वास्तवरस रूपकौ अनन्त रूप होनों कह्यौ है। याते यह सिद्ध होय है कै रसात्मक परब्रह्मही रसशास्त्रोक्त रीतिते हृदय में प्रकट होय है, सोभी परब्रह्म रस है। हृदय में प्रादुर्भूत भये रसमें चिदंशभी न्यग्भूत (गौण) रहै है। याते ही 'कृषिर्भूवाचकः शब्दः' या श्रुति में 'कृष्ण' पदकौ अर्थ सदानन्द कह्यौ है। या श्रुति में कृषि शब्द के भूसत्त्वार्थ वाचक होयवेते, सत्तानन्द अर्थ होय है। सदानन्द अर्थ नहीं होय है। ऐसी शंका नहीं करनी, कारण कै यहां रसधर्मि स्वरूप सच्चिदानन्दकी आत्म रूपा सत्ता है। धर्म रूपसत्ता नहीं, किन्तु रसधर्मि सत्ता है। याते यामें चिदंशभी गौण है। केवल आनन्द की सत्ता है। याते कृष्णपदकौ अर्थ सदानन्द ही है, और व्याकरणमतते भी 'स्वतन्त्रः कर्ता' तथा 'उभय प्राप्तौकर्मणि' इत्यादि सूत्रनतें कृष्ण पद कौ अर्थ सदानन्द ही होय है। याते कै रसधर्मि परब्रह्म के सदानन्द होयवेते, रसशास्त्रोक्त प्रणाली ते हृदय में प्रकट भयौ रस भी परब्रह्म सदानन्द रूप है। क्योंजी कृष्णपद कौ अर्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सदानन्द भलेही हो, तथापि श्रुति में, श्रीकृष्ण कूं रसरूप कह्यौ है । रसकूं परब्रह्म रूप नहीं कह्यौ है । याते वाहिर प्रकट भये रसधर्मिभगवत्स्वरूप में रसत्वके अभावते भगवान् केवल रसरूप कैसें है । तब प्रतिज्ञा की पूर्ति कैसें भयी । तहाँ प्रतिज्ञापूर्तिके प्रकारकूं कहै हैं, कै या श्लोकमें जो रसात्मक स्वरूप कौ वर्णन कियौ है, वह रसात्मकस्वरूप वाहि प्रकट नहीं है, किन्तु व्रज सुन्दरीन के इन्द्रियान्तःकरण प्राणजीव में ही भगवत् प्रादुर्भाव है । और 'वर्हापीडं' ,या श्लोक के स्वतन्त्र लेखमें भी रसरूप कौ ऐसे ही प्रतिपादन कियौ है । याते रसात्मक प्रभुकौ जो वहिः प्राकट्य है, सो आसक्ति भ्रम न्यायते हृदयस्थित स्वरूप कौ ही वहिः प्राकट्य है । अर्थात् व्रजगोपी यह नही जानें है कै हम गृहमें है, कै बनमें है, आसक्ति भर प्रभावते वनस्थित लीला स्वरूपकौ अपने अपने हृदय में अनुभव करकैं, वनस्थित रसात्मक प्रभुकृत लीला स्वरूपकौ साक्षात्कार किये विनाही, बनमें साक्षात्कार किये की भाँति रसस्वरूपानुभव करै हैं, किन्तु आसक्ति भ्रमन्यायते भगवत्स्वरूप के वहिः प्राकट्यमें भी गोपीन के मनमें तौ तासमय में भी स्वरूप प्रकट ही रहै है । याते 'स मानसान आत्मा जनानां' रसोवैसः, इत्यादि श्रुतीन के कथनानुसार रसधर्मि प्रभु स्वरूप कौ आसक्ति भ्रमन्यायते व्रजगोपीन की बुद्धीन्द्रियादिमें प्रादुर्भाव होयवेते ही प्रभुकौ वहिः प्रादुर्भाव है । या प्रकार केवल रस निरूपण की प्रतिज्ञापूर्ति है गयी । क्योंजी या प्रकारते तौ बुद्धिकी वृत्ति विशेष रूप होयवे ते, रसरूप भगवान् नहीं है । यदि यह कहौ सो बात नहीं है । लोकमें बुद्धि वृत्तिते ग्रहण कियौ घटपटादि पदार्थ देशकालते परिच्छिन्न (ढक्यौ) होयवेते, तादेशमें ताकालमें तावस्तुके अभाव में भी, विरहादि दशामें संस्कारके प्राबल्यते, बुद्धिवृत्तिके वाहिर निकसवेते 'ख्याति' ही स्वीकार करी जाय है । अर्थात् कालक्षोभवे रजस्तमः सत्वगुण कृत बुद्धि की अवस्था विशेषकौ नाम वृत्ति है । और बुद्धि वृत्तिकौ जो विपर्यय है, 'उलट कैं पलटनों है' यह 'ख्याति' कौ लक्षण है । याते संस्कारके वश पूर्वमें अनुभव किये पदार्थकौ जो उद्बोध होय है तब ता पदार्थ के अभावमें भी, मायाकारवती बुद्धि वृत्तिकौ वहिर्निर्गमन होय है । तब मायाकारवती बुद्धिवृत्ति तौ पुरोवर्ति पदार्थके एकांशकूं वा अर्द्धांशकूं वा सर्वांशकूँ ढाँककरकैं स्वयंही तद्रूप में प्रतिभासित होय है । याते यह 'ख्याति' कार्य है, सो असत्य है । किन्तु रसधर्मि स्वरूपतौ ऐसौ नहीं है। यहां ग्राह्यवस्तु जो रसधर्मि भगवान् है, सो देश कालते परिच्छिन्न (ढकौ भयौ) नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। किन्तु अनन्य भक्तिलभ्यहै। याते जैसी जाकी भक्ति है, तैसौही ताके हृदय में रसात्मक प्रभुकौ प्रादुर्भाव होय है। और भक्ति है, सो मनोधर्मरूपा भक्तिते मनमें प्रकट भयेते, वहिः प्रादुर्भूत रसधर्मी भगवान् मनमें भी विद्यमान रहै ही हैं। याते रसात्मक प्रभु बुद्धिवृत्ति ग्राह्य नहीं हैं। जैसें मायावादिके मतमें बुद्धिवृत्ति अवच्छिन्न चैतन्य न्यारौ है। और विषयावच्छिन्न चैतन्य न्यारौ है। या प्रकार चैतन्यद्वयके होयवेते, चैतन्य एकत्व के अभाव में वहिःस्थित घटपटादिवस्तुकूं मायावादि वृत्तिते अवच्छिन्न (ढकी) मानते भी, वस्तुमें वृत्तिकौ अभाव स्वीकार करै हैं। अर्थात् वृत्ति अवच्छिन्न चैतन्यते भिन्न विषयवच्छिन्न चैतन्य कूं मानवेवारे मायावादि यद्यपि वहिःस्थित घटपटादि पदार्थकूं वृत्ति ते अवच्छिन्नमानेहैं, तथापि वस्तुमें वृत्ति कौ अभाव स्वीकार करै हैं, तैसैही यहां वहिःस्थित रसात्मक स्वरूप में भी वृत्तिकौ अभावही मन्तव्य है। क्योंजी रसधर्मि स्वरूपमें वृत्तिकौ अभाव भलै ही होय, तथापि मूल श्लोकके आशयते तौ प्रभु कूं शृंगार रसात्मक कहनों ही उचित है। किन्तु शृंगाररसकी तौ ऐसीस्थिति है, कै परस्पर में साकांक्ष स्त्रीपुरुष व्यक्तिद्वयते आलम्बन द्वय के आधीन स्थिति है। याते यहां साकाँक्ष स्त्रीपुरुष व्यक्तिद्वयकौ आलम्बनद्वय होनों चहियें। किन्तु यहां तौ एक पुरुषोत्तमके ही होयवेते शृंगार रसमें विरोध आवै है। एकालम्वनते तौ रसाभास प्राप्त होय है। यदि कोई ऐसी शंका करै सो नहीं करनी कारणकै रसात्मक प्रभु, स्त्रीपुरुषात्मक आलम्बनद्वय युक्त हैं। उभयालम्बनस्वरूप हैं। याते ही " कामिनां दर्शयन्दैन्यं " या श्लोक की टिप्पणी में रसात्मक प्रभुकूं रसधर्मि और रस धर्मवान् श्रीविट्ठलेश प्रभुनें अपने कण्ठ रवते कह्यौ है, याते श्रीविट्ठलनाथ प्रभुके कथनमें कोई विरोध नहीं है। क्योंकै पूर्वमें भी कृष्णपदकौ अर्थ सदानन्द कह्यौ है। याते भगवान में प्रियालम्बन रूप भावकी स्थिति श्रुति सिद्ध है। जैसें कोई जीव कामके होयवेते कामी वा कामवान् कह्यौ जाय है, किन्तु कामतौ स्वतःही कामरूप और कामवान् है, जैसे कोई फल रसके होयवेते रसवान् है। रसतौ स्वयं ही रसरूप और रसवान् है। यह कथन भी प्रभुमें सुन्दर घटै है। याते प्रभुतौ स्वयं ही रसरूप और रसवान हैं। याते वाहिर में प्रकट भये रसात्मक स्वरूपमें कोई वाधा नहीं है। याते प्रियालम्बनरूपभावके स्थित होयवेते भगवान् में यह प्रसंग नहीं घट सकै है। या प्रकार शास्त्रार्थ के श्रुत्यर्थके परिज्ञानते विचार पूर्वक निश्चय करवेते भगवद्विषय स्नेह भावकी रति स्थायिभावात्मिका आसक्ति रूपा कलिका होय है। और " यमेवैष वृणुते ।तेन लभ्यः " या श्रुतिके कथना-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नुसार भगवदनुग्रहात्मक भक्ति के बीजङ्कुरादिक तौ पहलें ही सिद्ध है। याते प्रेमभाव, कलिकारूपा आसक्तिभाव में प्राप्त होय है। तदनन्तर रतिस्थायिभाव कौ व्यभिचारिभावादिकृत वैचित्र्य व्यसनभाव होय है। सो या श्लोक में पुष्पस्थानीया उत्पलाब्जमाला कही है। और "विचत्रवेषौ" या पदते भी, पुष्पस्थानीय, व्यसनभाव कौ "वैचित्र्य" कह्यौ है। या पुष्पस्थानीय व्यसनभाव के प्रकट भये ते अहोरात्र तत्तद्भावनारूपा वासना लोक में प्रकट होंय हैं। वासनान की लोक में प्रसिद्धि होयवे ते रसत्व नहीं रहै है। याते पीताम्बर में सुवर्णवत्पीततारूपा माया या रस की तथा रसरूप की आच्छादिका (ढकवे वारी) कही। यदि यहाँ पल्लवादि वस्तून कौ प्रयोजन नहीं होतौ, तब इतने परिकर कूं नहीं कहते। याते इतने परिकर कौ वर्णन सब प्रयोजन के लियें है। या प्रकार अर्थसंग्रह कूँ कह कर कैं साधकन कूँ शिक्षा दैवे के अर्थ कहै हैं। कै यह इतनों परिकर रसोत्पत्ति के अर्थ, निरूपण कियौ है। यद्यपि प्रभु रस शास्त्रोक्त प्रणाली के विना भी रसोत्पत्ति करण समर्थ हैं। तथापि रसोत्पत्ति की मर्यादा बनी रहै। याते इतनों वर्णन कियौ। रसोत्पत्ति की ऐसी ही मर्यादा है। रसोत्पत्ति की सिद्धि दशा में नृत्यहोय है। या श्लोक के उत्तरार्द्ध में व्रजगोपी फलानुभव प्रकार कूं कहै हैं कै "मध्येविरेजतु" याही आशय ते श्रीआचार्यजी कहै हैं कै "आविर्भावे रसास्वादान्नृत्यं" जा समय प्रभु भक्तन के हृदय में अपने रसात्मक स्वरूप कूं प्रकट करै हैं तब रस के आस्वाद ते नृत्य होय है। सो कहै हैं कै जा समय मानसीन रसात्मक प्रभु भक्तन के मन में प्रकट होय करकें, हृदयोद्गाररूप रसात्मक स्वरूप के वर्णन करवे ते प्रभु अपने रसधर्मिस्वरूप के रसधर्मन कूं प्रकट करै हैं तब रसरूप प्रभु के आस्वादते नृत्य होय है। या नृत्य ते शोभा होय है। अब सिद्ध अर्थ कूं कहै हैं। कै "अतोतिगुप्तो" याते अति गुप्त रसात्मक प्रभु रसत्व कूं प्राप्त होंय हैं। रसशास्त्रोक्त प्रणाली ते अन्तराविर्भूत रसरूप तौ केवल रसरूप हैं। और मानसीन रसरूप कौ हृदयोद्गाररूप वर्णन द्वारा जो रसरूप कौ वहिःप्रादुर्भाव है सो रसधर्मन के सहित वर्णन होयवे ते यह व्रजगोपीकृत हृदयोद्गार रूप वर्णन रसकौ उद्बोधक होयवे ते, आन्तररस कौ साधन है। याते स्थानभेद ते, आन्तराविर्भूत रसरूप और वहिराविर्भूत रसरूप, दोनों ही रसरूप अविरुद्ध रसरूप हैं ॥ ८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आभास—या प्रकार दो श्लोकन में द्विविधरसात्मक स्वरूप कौ वर्णन करकैं, "वर्हापीडं" या श्लोक में जो "रन्ध्रान्वेणोरधरसुधयापूरयन्" या वाक्यते वेणु के छिद्रन में अधरसुधा कौ पूरनों कह्यौ है। या विचार ते अगारी के श्लोक में व्रजगोपी, ता स्वरूप सौन्दर्याधरसुधा संयुक्त वेणुनाद कौ वर्णन करै हैं कै यह वेणुनाद आधिदैविकरूप कौ संपादक है। यह वेणुनाद हमारे अन्तःकरण में प्रवेश करकैं हमारे अन्तःकरण में प्रकट भयौ जो सहज मनोजकाम, ता सहजमनोजकामभाव कूँ दूर करकैं, भगवदीयकामभाव रसरूपता कूं प्रकट करै है। याते वेणुनाद आधिदैविक रसरूपता कौ सम्पादक है। याते या वेणुनाद में लौकिक समान धर्म के होते भी, लौकिकत्व शंका कौ भी निवारण है गयौ। "गोप्यः किमा" या श्लोक में "सुधामपि" या वाक्य में जो "अपि" शब्द है याकौ यह अर्थ है कै "वेणु" नादब्रह्म कौ भोजन करै है यामें तौ कुछ कहनों ही नहीं है यह तौ निर्विवाद है, किन्तु 'सुधामपि गोपिकानां' गोपीन की सुधा कौ भी भोजन करै है, कहा? याते वेणु के सुधाभोग में गौणत्व और गोपीन के सुधाभोग में मुख्यत्व सूचित कियौ। यहाँ मुख्य में वेणुनाद कौ ही वर्णन है याते या श्लोक में नाद कौ निरूपण ही वाक्यार्थ है। यह वेणुनाद अधरसुधा संयुक्त होयवे तें आधिदैविक रसरूपता कौ सम्पादक है। याते व्रजगोपी "गोप्यः किमाचरदयं" या श्लोक में वेणुनाद कौ वर्णन करै हैं कै—

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्मवेणुर्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम्।
भुंक्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो हृष्यत्त्वचोऽश्रुमुमुचुस्तरवो यथार्याः ॥९॥

हे गोपीओ! या वेणु नें ऐसौ कौन कुशलाचरण कियौ है कै या क्षेमाचरण ते यह वेणु, गोपीन के भोगवे योग्य जो दामोदर प्रभु की अधरसुधा है ताकूं यह स्वयं इकलौ ही भोगै है, याते हम कूं यह निश्चय है कै या वेणु के भोगते शेष बचे रस कूं ह्रदिनी सरोवर वृत्तलता पान करैं हैं। हम यह प्रत्यक्ष देखैं हैं कै जैसें महात्मा पुरुष, ब्रह्मानन्द में मग्न भये रोमांचयुक्त होय कर अश्रुमोचन करै हैं। ऐसी ही दशा इन ह्रदिनी वृत्तलतान की है रही है। याते ही यह अधरसुधाभोग "स्म" प्रसिद्ध होय है। यहाँ ह्रदिनीन में कमल रोमांच हैं मकरन्दरस अश्रु हैं। वृत्तन में फूलफल रोमांच हैं मधुधारा अश्रु हैं। ये वेणुनाद ते तत्काल में ही प्रकट भये हैं ॥ ९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याख्या—" वर्हापीडं " या श्लोक में वेणु के छिद्रन कूं अपनी अधर-सुधा ते पूरण करनों कह्यौ है। व्रजगोपी ताही वेणुनाद कौ वर्णन करै हैं। कै " गोप्यः " हे गोपीऔ! यह जो संबोधन है सो पूर्वरस के जतायवे वारौ है। पूर्व में जो श्रुतीन कूं वरदान दियौ है कै—

" कल्पं सारस्वतं प्राप्य व्रजे गोप्यो भविष्यथ "

सारस्वत कल्प में तुम व्रज में गोपी होओगी, तब तुम्हारे मनोरथन कूं मैं पूरण करूंगौ, या गुप्त कामरस वरदान को बोधक है। गोपी कहै हैं कै हे गोपिऔ! या वेणु कूँ अधरसुधा के संबन्ध में किंचित् भी विशेष जानवे, कहवे, सुनवे, विचारवे योग्य वार्ता नहीं हैं, तुम प्रत्यक्ष देख रही हौ कै या वेणु कूं अधरसुधा ते संबन्ध है। यद्यपि या वेणु नें अधरसुधारस पियौ नहीं है। तथापि हमारे लियें अधरसुधा दान करवे के अर्थ, प्रभु नें यह वेणु अपने श्रीमुख के अधर पै धारण कियौ है। याते ऐसौ दीखै है मानों वेणु अधरसुधा कौ पान करै है। ऐसी संभावनामात्र होय है। तथापि " किंकुशलमाचरत् " या वेणु नें ऐसौ कौन कुशल आचरण कियौ है कै जा साधन ते यह वेणु प्रभु नें अपने अधर के ऊपर स्थापन कियौ किन्तु वेणु कूं सुधाभोग नहीं है। यामें हेतु कहै हैं कै " अयम् " यह वेणु तौ पुरुष है याते पुरुष तौ प्रभु अधरसुधा कूं कोई प्रकार ते नहीं भोग सकै है। यदि पुरुष ही भगवद्धर-सुधा कूं भोग लेय, तब तौ श्री पुरुषोत्तम ही अपनी अधरसुधा कूं स्वयं आप ही क्यों नहीं भोग लेते। याते प्रभु अधरसुधा तौ स्त्री देहते ही भोगवे योग्य है। याते कहै हैं कै " गोपिकानां " प्रभु अधरसुधा तौ गोपीन के ही भोगवे योग्य है। याते प्रभु अधरसुधा गोपीन की है। यहाँ " गोपिकानां " या पदमें बहु-वचन है। याते समुदायरूपा लक्ष्मी भी सूचित करी।

" गोपिकानां समुदाये आवेशेन रूपं यस्याः। "

गोपीन के समुदाय में आवेशते है रूप जा लक्ष्मी कौ ऐसैं लक्ष्मी भी सूचित करी। क्योंजी भगत्स्वरूप की भोगवे वारी तौ केवल लक्ष्मी ही हैं। इन गोपीन कूं प्रभु अधरसुधाकौ संबन्ध कैसैं भयौ। ऐसी आकांक्षा में कहै हैं कै गोपिका यूथ में लक्ष्मी को आवेश है। क्योंजी या प्रकार ते तौ लक्ष्मी कूं सुधाभोग गौण भयौ, और गोपीनकूं सुधाभोग मुख्य भयौ। ऐसी शंका में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

कहे हैं। कै ये गोपिका तौ कारणरूपा मुख्य लक्ष्मी श्रीराधिकाजी की अंशरूपा हैं। याते श्री राधिकाजी के संबन्धते ही गोपीनकूं प्रभु अधरसुधा भोगवेकी योग्यता प्राप्त है। याते मुख्य संबंध तौ आनन्द रसात्मिका श्रीराधा लक्ष्मी कौ ही है, याते लक्ष्मी के संबन्ध कौ तौ कहनों ही कहा है। और प्रभु अधर सुधाकौ भोग श्रीलक्ष्मीजी के अतिरिक्त अन्य कोई स्त्रीनें वा पुरुषनें कियौ होय, ऐसी लोक में प्रसिद्धि भी नहीं है। याते प्रथमतौ पुरुषोत्तम वस्तु कौ भोक्ता पुरुष नहीं है सकै है। तब तिर्यङ्गादियोनि में जन्मे अन्य जीव कौ तो कहनों ही कहा है। ऐसौ जीव प्रभु अधरसुधा कूं कैसें भोग सकै है। तामें यह वेणुतौ जडवंश में उत्पन्न भयौ है स्थावर है। स्थावरन के मध्य में भी यह वेणुतौ नीरस है। आम्रपल्लवादि वत् सरस भी नहीं है। याते ऐसौ स्थावर और नीरस पुरुष वेणु अधरसुधाकौ भोक्ता कैसे है सकै है। तामें यह वेणुतौ चिदंश चेतन जीव नहीं है। केवल सदंश स्थावर है ऐसौ वेणु प्रभु अधर सुधाकौ भोक्ता कैसें है सकै है। ये व्रज स्त्री सब प्रभुकी आधिदैविकी शक्ति हैं। याते यहाँ वेणुकौ आधिदैविक चेतन-भाव सूचित करतीं व्रजगोपीननें या प्रकार ते वचन कह्यो है। यहाँ हम सब आधिदैविकी गोपी, अधर सुधा संबंधिनी हैं। याते अपनी गोष्ठी में, या आधिदैविक अधरसुधा सम्बंधि वेणुकौ विचार कर्तव्य है। याते व्रजगोपी, वेणु के सुधाफल भोग में विचार करे हैं। कै सब धर्मकौ फल है। धर्मते ही फल मिलै हैं। यह वैदिक सिद्धान्त है। सर्व साधन मनोनिग्रह पर्यन्त कर्तव्य हैं। याते धर्म चित्तशोधक है। याते साधन विचार में तौ सब धर्मकौ फल है और अनुग्रह विचार तौ वैदिक सिद्धान्त ते न्यारौ है। याते प्रथम व्रजगोपी कारण रूप धर्म कौ विचार करे हैं। कै "किमाचरत" या वेणुनें ऐसौ कोंन धर्माचरण कियौ है, कै या धर्माचरणते या वेणुकूं अधरसुधाकौ संबन्ध भयौ। धर्म सब वेदसिद्ध है। और श्रुतिरूपा हम सब गोपीहू वेदरूपा हैं। याते हमारौ विना जान्यों धर्म कैसें है सकै है। याते हमकूं और या वेणुकूं एक सुधाफल के लाभते तौ यह ज्ञात होय है कै जो धर्म हम सब गोपीन नें कियौ है। सोही धर्माचरण या वेणुनें कियौ है। याते ही हम सबकूं और वेणुकूं आधिदैविक रूपकी प्राप्ति भयी, और एक सुधाफलकौ लाभ भयौ याते मर्यादा-न्यायते तौ हमारे धर्म साधन में और वेणुके साधन में कोई विरोध नहीं है। तबतौ वेणुके सुधाभोग में संदेह ही कहा है। ऐसे संदेह में कहे हैं कै हमारे किये धर्म साधनते हमकूं स्त्रीदेहकी प्राप्ति होयवेते हमकूं अधरसुधा भोग सिद्ध है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

पर सन्देह ... करते हैं कि नहीं ।।

किन्तु यह वेणु तौ स्त्रीविग्रह के अभावते अधरसुधा कूं नहीं भोग सकै है। याते वेणुके धर्म साधन में और हमारे धर्मसाधन में विरोध है । याते संदेह होय है कै यह वेणु अधरसुधा कौ भोग करै है वा नहीं करै है । किन्तु वेणु के धर्मसाधन में विरोध होते भी प्रभुनें अपने अधर के ऊपर वेणुकूं स्थापन कर राख्यौ हैं याते वेणुकूं सुधाफल कौ लाभ तौ प्रत्यक्ष दीख रह्यौ है । या विचार में सबकी संमति के अर्थ, "हे गोप्यः" यह संबोधन पद कह्यौ । याते गोपी कहै हैं कै वैदिकी मर्यादा न्यायते तौ हमारे धर्म साधन में और या वेणुके धर्मसाधन में विरोध है । याते कै हमकूं अधरसुधा भोगवेके अर्थ स्त्री देह प्राप्त भयौ है। और वेणुमें स्त्री देहकौ अभाव है । पुरुष अधरसुधा भोग नहीं कर सकै है याते "अयम्" यह पुल्लिङ्ग निर्देशवाधक है । और वेणुके मधुरनादते वेणुकी जो 'स्म' प्रसिद्ध है सो भी सुधारस भोग में वाधिका है । याते कै सुधारस भोगतौ एकान्त में है सकै है । यह वेणुतौ वनमें और दिनमें गर्जना कर रह्यौ है । याते या वेणुकूं सुधाभोगकी प्राप्ति नहीं है । याते या वेणुकौ धर्मसाधन वलतौ केवल आधिदैविक स्वरूपकौ ही संपादक है याते‍ही यह प्रभुकौ वेणु भयौ है। किन्तु वेणु कूं सुधारस भोग प्राप्त नहीं है । यह तौ "वर्हापीडं" या श्लोक में पहलैं भी कहि आये हैं । याते जब वेणुके साधन वलते, वेणुके सुधाभोग में अनेक वाधा उपस्थित हैं तब यह निश्चय होय है कै साधन वलते तौ वेणुकूं अधरसुधा भोग की प्राप्ति नहीं है । यह पूर्व पक्ष भयौ । और प्रभु अनुग्रह वल विचारते तौ साधन की कोई आवश्यकता ही नहीं है । कारण कै "यमेवैष वृणुते तेनलभ्यः" यह प्रभु जाकूं वरण करै हैं अपने अङ्गीकार करै हैं, ताकूं स्वतः ही प्राप्त होय है । यह अनुग्रह मार्गीय भक्तिसिद्धान्त है । याते ही या वेणु के ऊपर कृपा करकैं प्रभुनें अपने अधर के ऊपर स्थापन कियौ है । याते संदेह होय है कै यह वेणुसुधा भोग करै है वा नहीं करै है । अपनी गोष्ठी में वेणुके सुधाभोग फलमें भी विचार करनों चहियै । कारण कै यह अधरसुधा आधिदैविकी है । यह आधिदैविकी अधरसुधा, गोपिका संम्बधिनी है अर्थात् गोपीन की है । याते सुधाकौ विचार उपेक्षा करवे योग्य नहीं है । याते गोपी कहै हैं कै "अयंवेणुः" यह वेणु है ।

"वश्च इश्च वयौ तावणू कृतौ येन ।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Etymology of वेणु

यहाँ वकारते परैं इकार के होयवेते 'वे' भयौ । या "वे" ते परैं "अणु" शब्द के आकार कौ पूर्व रूप भयौ । ऐसैं " वेणु " शब्द सिद्ध भयौ । वकारते ब्रह्मनन्द सुख और इकारते लक्ष्मी साध्य कामसुख, इन दोनों सुखन कौ अणु तुच्छ कर्ता यह वेणु है । दोनों सुखन कूं तुच्छ करकैं दोनों सुखते अधिक परमानन्द सुखकौ दाता यह वेणु है । याते यह निश्चय होय है कै या वेणु में धर्म है । यद्यपि या वेणु में सुधाभोगकी योग्यता नहीं है । तथापि सबके लियैं परमानन्द सुखदान दैवे ते, या वेणुमें स्वरूप कौ सौन्दर्याधर सुधाभोगकी योग्यता सम्पादन करणरूप धर्म है । किन्तु प्रभुके अधर सम्बन्ध ते कदाचित् यह वेणु प्रभु अधरसुधाकौ भोग भी करतौ होय, याते धर्मकौ अनिश्चय भी होय है । अर्थात् वेणु अधरसुधाकौ पान करै है वा नहीं करै है, यह कोई निश्चय नहीं है, तथापि सुधाके भोगवेमें वेणु स्वयं साधन रूप है, याते यह निश्चय होय है, कै वेणु कूं श्रीकृष्ण कृपाबलके आश्रयते सुधाफलभोग की सिद्धि है । या बातके जतायवे के लियैं, अनुग्रह मार्ग ते मर्यादा मार्ग की हीनता प्रकट करती गोपी कहैहै कै 'दामोदराधरसुधां' दाम नाम रस्सी है उदर में जाके जैसैं श्रीयशोदाजी नैं श्रीकृष्ण के उदरमें रस्सी बाँध करकैं अपने वशमें कर लिये ऐसैं ही हमनें प्रेम रूपी रस्सी बाँधकर प्रभु अपने वशमें कर राखे हैं। या प्रकार ' दामोदर ' प्रभु गोपिका आधीन सूचित किये । मर्यादा मार्गमें ऐसौ कोई साधन नहीं है, जाते प्रभु वशमें है जाँय । ऐसौ तौ भगवत्कृपा बलसाधनसाध्य भक्ति मार्ग ही है, या भक्ति ते निःसाधन भक्त के वश भगवान् स्वतः ही है, जाँय हैं । और प्रभुनें सुधाअधर के ऊपर स्थापन करी है । और अधर है, सो लोभात्मक है । याते लोभी अधर तौ अधिकारि अनधिकारि के लियैं शोचविचार करकै ही सुधा कौ दान करै है । याते या वेणु कूँ सुधा आपते वा कोई साधन ते प्राप्त नहीं है सकै है । याते सुधा की प्राप्ति में साधन कौ अभाव सूचित कियौ । यदि वेणुअधर के सम्बन्ध ते सुधारस भोगतो होय सो भी नहीं बन सकै है । कारण कै सुधा तौ रस है । याते रस तौ रसना इन्द्रियग्राह्य होय है । याते या वेणु में रसनाइन्द्रिय नहीं है । याते या वेणु कूँ सुधारसभोग नहीं है । और सुधारस के भोग में 'सुधा' पद भी बाधक सूचित कियौ । याते यह वेणुनाद ब्रह्म कौ बोजक करै है । यामें तौ कोई विवाद ही नहीं है । यामें यह श्रुति प्रमाण है कै—

" वाग्वै देवेभ्योऽपाक्रमद्यज्ञायातिष्ठमाना सा वनस्पतीन् प्राविशत् "

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाणी देवतान के मुखते निकसी यज्ञ भगवान् के अर्थ किंचित्काल ठाडी रही, पुनः वाणीमें नें वनस्पतीन में प्रवेश कियौ। या श्रुति प्रमाण ते वेणुनाद ब्रह्मकौ ही भोग करै है। किन्तु 'सुधामपि भुँक्ते' वेणुसुधाकूं भी भोगै है, यामें जो संशय हो सो वेणु कौ सुधा भोगमें अनधिकारतौ पहलैंही कहदियौ, कदाचित् व्यभिचार में स्त्री सिद्धान्त की भाँति, स्वयं प्रभुही या अनधिकारि वेणुकूं सुधाकौ दान देते होंय तब तौ या वेणु कूं सुधा रसकौ भोग सम्भव ही है। जैसैं स्त्री संभोगरसमें स्त्री रस कौ भोक्ता पति है। पति तौ स्वयं हा स्त्रीरसकूं भोग सकै है। किन्तु स्त्री रसके भोगवे में अनधिकारि उपपतितौ जब ही स्त्री रसकूं भोग सकै है, यदि व्यभिचारिणी स्त्री स्वयं ही उपपतिकूं रसदान करे, तबही अनधिकारी उपपतिकूं स्त्री रसकी प्राप्ति होंय है। ऐसैं अनधिकारी या वेणु कूं स्वयं ही प्रभु अधरसुधाकौ दान देते हुय तब तौ या वेणु कूं सुधारसकौ भोग सम्भव ही है किन्तु 'स्वयंभुक्ते' गौपीन की भाँति वेणु स्वयं ही अधर सुधा कौ भोग करै है। यह आश्चर्य है। जैसैं मुखके अधरके सम्बन्धते हम गोपी, अधरामृत कौ पान करै हैं। तैसैं ही यह वेणु भी मुख अधरके सम्बन्धते स्वयं आप इकलौही अधरामृतकौ पान करै है। याते हम वेणु कूं भी अधरामृतकौ पान करनों मानें है। अरी वीर, हमते अधिक या वेणु में यह और विशेष है के—

"यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यस्तरवश्च भुञ्जते"

या वेणु के भोजनते शेष बचे रसकूं सरोवर सरिता और वृक्ष भोगै हैं। यह वेणु अपने बालभावते माता पिताकी भाँति नदी सरोवर वृक्षन कूं रसदान दै करकै पालन करै है ह्रदिनी सरोवर वृक्षन के रसपान में रसोद्योतक कारणकूं कहै है कै "यतोह्रदिन्यो हृष्यत्त्वचो जाताः" या अधरसुधा रस पानते ही ये ह्रदिनी सरोवर रोमांचित है रही हैं, ऐसैं हम जानें है कै ह्रदिनीन नें सुधारस पान कियौहै। जब आनन्दरसते अन्तःकरण पूर्ण भरजायहै तब आनन्द रसकी अधिकतामें आनन्द रस बाहिर कूँ उमगै है। सो रोमांचरूपमें प्रकट होय है। यहाँ यह निर्णय है के ह्रदिनीन में रोमांच कमल हैं। ये कमल जलाशय में सबते उत्तम वस्तु है। कोई आनन्द कारणके बिना, आनन्द रसरूप रोमांच कार्य प्रकट नहीं होय है। याते कमलरूप रोमाँच कार्य के प्रकट होयवेमें आनन्द ही कारण है। यदि अधरामृत पानके बिना अन्य कोई कारण होतौ तबतौ वेणुवादन समयमें भी जलके ऊपर शिवार ही प्रकट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC-0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होती। याते आनन्द कारणतेंही उत्तमकार्य कमलरूप रोमांच प्रकट भये हैं याते जानी जाय है कै ह्रदिनीननें अधरामृत पान कियौ है। यदि ह्रदिनीननें अधराऽमृत पान नहीं कियौ होतौ तबतौ ह्रदिनीनमें कमलको प्राकट्य नहीं होतौ। तबतौ कमलनमें लक्ष्मी को भी प्राकट्य नहीं होतौ, याते कै ये कमल कामरसोद्दीपन विभावरूप हैं। याते कमलनके प्रकट होते ही कमलन में लक्ष्मी कौ समागम होंय है। कारण कै—

"यत्राप्यतिशयोदृष्टः स स्वार्थानतिलङ्घनात्"

जहां कहूँ जाकौ जाके सङ्ग नित्य सम्बन्ध देखवे में आवै है, तहां स्वार्थ के लियैं ही देखवे में आवै है। या न्यायते यह कमलरस, एकमात्र लक्ष्मी के ही भोगवे योग्य है। याते कमलनमें लक्ष्मी कौ नित्य निवास है। याते कमलनमें लक्ष्मी कौ प्राकट्य प्रभु अधरसुधा भोगके लिये ही है। यह कमल रोमाँच कौ होनों उपलक्षण है। याते कहै हैं कै 'अश्रु च मुमुचुः' मकरन्द रूप अश्रुन कूं भी छोडे हैं। कमलनके बिना अन्यशैवालादि में सुगन्ध नहीं होय है। याते मकरन्द रूप पराग अश्रुमोचन भी करे हैं। और कहै हैं कै 'तरवश्चतथा' ऐसी ही दशा इन वृक्षन की है रही है। वृक्षन में रोमांच फूल फल है। मधुधारा अश्रुधारा हैं। इन ह्रदिनी सरोवर वृक्षन के रोमाँच अश्रु मुँचन स्वाभाविक नहीं है, किन्तु वेणुनाद के पश्चात् ही प्रकट भये हैं, याते इन ह्रदिनी वृक्षन के रोमाँच अश्रुमोचन में विलक्षणता कहै हैं के 'यथाऽऽर्याः' जैसैं भगवद्धर्म के अन्तः प्रवेश होयवेते आर्य सत्पुरुष महात्मा रोमांचित भये अश्रु मुंचन करे हैं ऐसैं ही ये ह्रदिनी सरोवर वृक्ष, वेणुनाद के द्वारा भगवद्धर्मन के अन्तर में प्रवेश होयवेते, आर्य सत्पुरुषन की भाँति, ये ह्रदिनी वृक्षादिक रोमांचयुक्त भये अश्रुमुञ्चन करे हैं। याते यह सिद्ध भयौ। कै मातृ रूपा ह्रदिनी और पितृ रूपी वृक्ष ये सब वेणु के भोजनते शेष बचे रसके पीवे वारे हैं। या प्रकार या श्लोक में वेणु के छिद्रन में अधरसुधा कौ पूरण करनों कह्यौ।

श्रीविट्ठलेश प्रभु कृत स्वतन्त्रलेखानुवादारम्भः।

यहां यह विचारवे योग्य है कै "रन्ध्रान्वेणोरधरसुधयापूरयन्" या श्लोकमें वेणु के छिद्रनकूं अपनी अधरसुधा ते पूरण करनों कह्यौ तहां वेणुके रंध्रही वेणुके मुखरूप हैं। तब तौ वेणु के छिद्रन कूं निज अधरसुधाते पूर करकें प्रभुनें बिना परिश्रम के वेणुकूं अधरसुधाकौ भोग स्वयं ही करायौ। तबतौ 'स्वयं भुङ्क्ते' वेणु अधरसुधा कूं आप ही भोगै है, गोपीनकौ यह कथन यहां नही घट सकै है। तथापि प्रभुनें पूर्वोक्त रीतिते वेणु के छिद्रनमें निज अधरसुधा कौ पूरण, अपनी प्रियान के अर्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साक्षात् अधरसुधा भोगाधिकार सम्पत्ति के अर्थ कियौ है । वेणु के अर्थ सुधा कौ पूरण करनों नहीं है, जैसैं स्वप्रियान कूँ साक्षात् अधरसुधाभोगाधिकार रूप सम्पत्ति की प्राप्ति है जाय, या के लियें ही वेणु के मुखरूपरंध्रन में सुधा कौ पूरण है । वेणु के लियैं नहीं है। याते ही कह्यौ है कै 'गोपिकानाम्' यह अधरसुधा गोपीन की है वेणु की नहीं है। याते गोपीन के लियैं पूरण करी अधरसुधा कौ जो वेणु भोजन करै है सो 'स्वयंभुंक्ते' हमारे लियैं पूरण करी सुधा कौ वेणु आप ही भोजन करै है यह गोपीन कौ कहनों उचित ही है। यदि कोई यह कहै कै या प्रकारते भी तो वेणु के भोजन ते शेष बचे रस को ही पान प्रभुप्रियान कूं आवै हैं। और वेणु नें किंचित् काल सुधा कौ भोग नहीं कियौ होय, यामें भी कोई कारण नहीं दीखै है। ऐसी शङ्का में कहै हैं कै प्रभु कौ सम्पूर्ण चरित्र अलौकिक है याते लौकिकी युक्तीन ते निर्णय करवे योग्य नहीं है । यदि लौकिकी युक्तीन ते निर्णय कियौ जाय तब तौ यह भी विचारनों चहियै कै सरिता, सरोवर, पर्वतस्थलन में किये वेणुकूजन कौ श्रवण, व्रजस्थिता स्वामिनीन नें ही कैसें कियौ, औरन नें क्यों नहीं सुन्यौ । यह 'तद्व्रजस्त्रिय आश्रुत्य' या श्लोक में वर्णन है चुक्यौ है । याते प्रभु के सब कार्य अलौकिक हैं ऐसे अलौकिक कार्यन के करवे में प्रभु इच्छा ही बलवती है । प्रभु कूं व्रजरमणीन के संग विप्रयोग रसात्मिका रमणलीला करनी है, यही भारी प्रयोजन है । याते प्रभुनें प्रथम व्रजदेवीन के कर्ण द्वारा हृदय में ही अधरसुधा कौ प्रवेश कियौ है । याते व्रजगोपीन कूं वेणु के भोग ते शेष बचे उच्छिष्टरस कौ पान नहीं है। याते पूर्वोक्त शङ्का कौ भी निवारण है गयौ । और जैसैं श्वास के बाहिर निकसते समय, मुख में परी वस्तु उगली ही जाय है निगली नहीं जाय है। ऐसैं व्रजस्थिता स्वप्रियान के कर्ण द्वारा हृदय में सुधा पूरण करवे में है, एकाग्रजिन कौ ऐसे प्रभु नें निज मुखारविन्द ते प्रकट कियौ जो नादब्रह्म कौ कारण रूप वहिःस्वास, सो ऐसे वेग ते प्रकट कियौ कै मार्गानुसार रीति सूं सुधा सहित वेणु के छिद्रन में पूरी भयी सुधा कूँ अपने संग ते अभीष्टदेश व्रजस्थिता गोपीन के हृदय में पहुँचाय देय, या अधरसुधा कूं मध्य में अन्य कोई नहीं भोग सकै, याते अधरसुधा कौ भोग प्रथम व्रजगोपीन कूं ही प्राप्त भयौ। क्योंजी या प्रकार ते भी अधरसुधा कौ सम्बन्ध प्रथम तौ वेणु के मुखरूपरंध्रन में ही होय है । याते वेणु कूं भी अधरामृत पान करवे की सम्भावना है । किन्तु या वाँस के वेणु कूं सुधाभोग में जैसी योग्यता है । ता वाँश के रूप में तौ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वेणुसुधा कौ पान करै ही है ऐसौ निश्चय होय है। किन्तु व्रजदेवीन कूं तौ उक्त रीति सूं साक्षात् सर्वेन्द्रिय भोग्य रूप ते अधरसुधा कौ भोग होय है। याते वेणु में सर्वाऽभोग्याअधरसुधा कौ अंशमात्र भी अवशेष नहीं रहै है। अन्यथा जैसैं ह्रदिनीवृक्षादि कूं वेणु ते शेष बचे रस कौ पान कह्यौ है। तैसैं वेणु ते शेष बचे रस कौ पान, श्री शुकदेव जी यहाँ गोपीन कूं भी कहते। सो यहाँ श्री शुकदेव जी नें 'वा' गोपीन नें नहीं कह्यौ। किन्तु 'गोपिकानाम्' या पद ते सुधारस में गोपीन की ही सत्ता कही है। याते या वेणु में सर्वाऽभोग्यासुधा कौ अंशमात्र भी अवशेष नहीं रह्यौ। याते यह वेणु देवभोग्यासुधा कौ भोग करै है। या वेणु के देवभोग्यासुधा के भोगवे में यह कारण है कै या वेणु के लियैं प्रभु कूं अधरसुधा का सम्बन्ध अवश्य करामनों हो। यदि वेणु ते शेष बचे सुधारस कौ सम्बन्ध ह्रदिनीवृक्षादिक कू नहीं होतौ, तब तौ अधरसुधा सम्बन्ध के विना ह्रदिनी वृक्षादिकन में लीला करवे की योग्यता प्राप्त नहीं होती। और यह रमणलीला प्रभु कूं सुधा सम्बन्धि जलस्थलन में अवश्य करनी है। याते जलस्थल रमण के उपयोगि जे नदी सरोवर वृक्षलतादिक हैं। तिनमें अधर-सुधा कौ सम्बन्ध, लीलायोग्यता सम्पादन करवे के अर्थ अवश्य करामनों हो याते वेणु भुक्त सुधा कौ अंश जो नाद द्वारा बाहिर निकसै है ताकौ भोग ये सुरिता, सरोवर, पर्वत, पशुपक्षि आदि करै हैं। याते ही ये सब रमणलीला के योग्य होय हैं। या प्रकार व्रजदेवीन कूं और वेणुनाद के द्वारा सब कूं एक काल में ही सुधा कौ भोग प्राप्त होय है। और प्रभु के दामोदर होयवे ते, प्रभु व्रजदेवीन के आधीन हैं। याते व्रजदेवीन के उपभोगोपयोगि सर्व पदार्थन कूं व्रजगोपीन के अर्थ विवश भये सम्पादन करै हैं। याते अधिक और हम कहा कहैं। यद्यपि प्रभु उदारदानी हैं, जाकी जैसी योग्यता है ताकूँ तैसौ ही दान दैंय हैं किन्तु हमारी अधरसुधा कूं वेणु के लियें वा अन्य कोई के लियैं नहीं दै सकै हैं। किन्तु प्रभु के उदारदानी होयवे ते, यदि वेणु कूं सुधा कौ दान दै भी दैंय तौ कोंन रोक सकै है। जब समुद्र अपनी मर्यादा कूं त्याग देय, तब वाकूं कोंन रोक सकै है। किन्तु प्रभु कूँ जा वस्तु के दैवे की इच्छा होय है। तामें ता वस्तु के भोगवे की योग्यता भी स्वयं ही सम्पादन करै हैं। सो या वेणु में तौ सर्वाऽभोग्यासुधा के भोगवे की योग्यता नहीं है। याते या सर्वाऽभोग्यासुधा कौ भोग या वेणु कूं नहीं है। यह अधरसुधा तौ गोपीन के ही भोगवे योग्य है। याते गोपीन की है। श्रीविट्ठलेश प्रभु कहै हैं कै यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हमने अपने अनुभव ते दिग्दर्शनमात्र करायौ है। किन्तु "रन्ध्रान्वेणोरधरसुधया पूरयन्" या श्लोक में जो वेणुवादन कह्यौ है सो अधरसुधायुक्त वेणुवादनहै। यह हम गोपिका जानें हैं। यहाँ वेणु के छिद्रन में पूरण करी अधरसुधा सर्वाऽभोग्या, गोपिकाभोग्या है याते गोपीन की है। और वेणु के लियें वेणु के छिद्रन में पूरणकरी देवभोग्यासुधा है। यह हम जानें हैं और याते अन्यत्र तत्तस्थलन में गान करते समय में, गौऊन के बुलायवे में, तथा 'अनुचरैःसमनुवर्णितवीर्यः' या श्लोक में तथा 'गागोपकैः' तथा 'नद्यस्तदा' इत्यादि स्थलन में नदी, सरोवर, वृक्षलतादि कूं सुधादानकार्य कह्यौ है याते अन्यत्रस्थलन में भी देवभोग्या और सर्वाऽभोग्यासुधा कौ पूरण है। किन्तु यहाँ तौ श्री स्वामिनीन के अधिकार सम्पत्ति के साधनार्थ वेणु के छिद्रन में सर्वाऽभोग्यासुधा कौ पूरण है। और वेणु के अर्थ देवभोग्या सुधा कौ पूरण है। या देवभोग्या सुधा कौ ही अंश सरिता, सरोवर, वृक्षादिकन कूं प्राप्त होय है। याते 'रंध्रान्वेणोः' या श्लोक में यह रमण समय कौ वेणुवादन है। याते यहाँ रमणार्थ वेणुवादन के जतायवे के लियें 'गोपिकानाम्' यह सुधा गोपीन की है। ऐसौ पद कह्यौ है। याते सुधा कौ देवभोग्यत्व और सर्वाऽभोग्यत्व, उभयरूपत्व सिद्ध भयौ ॥ ६ ॥

श्रीहरिधनजित्कृतस्वतंत्रलेखानुवादः ॥ "गोप्यः" हे गोपिओ! "अयं वेणुः किं कुशलं कीदृशं कौशलमाचरत्।"

हे गोपीओ! या वेणुनें कैसौ चातुर्य आचरण कियौ है। तुमनें देख्यौ कै नहीं। ऐसें पूछतीसीं बोली "किंकुशलं" कहा चातुर्य कियौ। यह भाव प्रधान कथन है। यामें अन्य के न जानवे योग्य अनिर्वचनीय भाव भर्यौ है। या वेणुके चातुर्य कूँ कोई जान नहीं सकै। कोई कह नहीं सकै। या वेणुनें ऐसौ चातुर्य कियौ है। यह वेणु हम सबकूं ग्वालिनी गमारी जानकै ही ऐसौ चातुर्य करै है। मानों मेरे कर्तव्यकौ, इन गोपीन कूं ज्ञानही नहीं है याते ऐसौ चातुर्य करै है। अथवा हम सब गोपीतौ भगवत् रसकौ गोपन करवे वारी है ही किन्तु यह वेणुतौ हमते भी अधिक भगवत् रसके दुरायवे में निपुणता करै है। याते हे गोप्यः यह संबोधन पद कह्यौ। क्योंरी तब या वेणुकौ चातुर्य कैसें प्रकट होय, तहाँ कहै है कै "स्म" अरी वीर! यदि विचार करौगी तौ सब प्रकट है जायगौ। जो वेणु हमनें अचेतन समझौ हो सोतौ चेतनते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी अधिक चातुर्य करै है । ऐसैं आश्चर्य में कहै हैं के " अयम् " अरी यह वेणु एकतौ निःसार है भीतर ते पोलौ है अनेक छिद्रन कौ भरौ है । यह वाँश जाति कौ सूकरौ देहकौ दूवरौ सूखौ वेणु कैसौ चातुर्य करै है कै याके चातुर्य कूं देखकें आश्चर्य होय है । यदि पूछौ कै यह वेणु कहा चातुर्य करै है । तहाँ कहै हैं कै " दामोदराधरसुधां " जा दामोदर प्रभुकी अधर सुधा कूं अनेक साधनन ते प्राप्त करकैं हम सब मिल करकैं पान करै हैं, ता अधर सुधा कूं यह वेणु इकलौही भोगै है । और या वेणु कौ अधरसुधा के भोग में कोई साधन हू तौ नहीं है । यातें या वेणुकौ यह चातुर्य ही है । और या वेणु में एक यह कैसौ अद्भुत कार्य है । कै अधरसुधा कूं भोग करकैं भी, अधर सुधा भोगके आनन्द लक्षण जे पुलक रोमांच अनुराग आर्द्रता हैं । तिनकूं प्रकट नहीं करै है । यदि प्रकट करै तौ यामें आर्द्रता तें हर्यौ रङ्ग है जाय यामें पल्लवनिकस आमें बजायवे योग्य नहीं रहै यातें यह जान करकैं कै प्रभु मोकूं त्याग दैंयगे, यह समझ कै आनन्द लक्षणन कूं छिपायैं राखै है । प्रकट नहीं करै है । अरी सखीऔ ! या अधरसुधाके स्वल्पपानतेंही जब हम सब आनन्द लक्षण के छिपायवे में असमर्थ है जाँय हैं । तब यह वेणुतौ ता अधरसुधा कूं यथेच्छ पान करकैं भी आनन्द लक्षण कूं प्रकट नहीं करै है । यातें या वेणुनें अधरसुधा के स्वभाव कूं भी जीत लियौ, अपने जड स्वभाव कूँ ही प्रकट करै है । यह या वेणु कौ कौशल ही है । यातें ही प्रभुनें हमकूं प्रेम-रस में भीजी देख करकैं यह विचार कियौ । कै ये गोपी किंचित्काल पर्यन्त मेरे विरहाग्नि ते नष्ट नहीं होंयगी, यह विचारकैं हमारे प्राणनाथ हमकूं व्रज में छोड़ गये, और या वेणु कूं रसहीन सूखौ जान करकैं यह विचारौ कै सूखौ वेणु मेरे बिना मेरे विरहाग्नि ते क्षणभर में नष्ट है जायगौ, यातें वेणु कूं श्रीहस्त में लैकरकैं, वनमें जाय करकैं, वेणु कूं बजाय करकैं, कामरस कूं जगाय करकैं, सबकी विजय कर लीनी । हे गोपीऔ ! यह सब हमारी ही अज्ञानता ते भयौ, यह भाव है । यदि तुम यह कहौ कै या वेणु में पुलक रोमांच नहीं होंय हैं यातें या वेणु कूँ सुधा भोग नहीं है । यदि सुधाभोग होतौ तबतौ पुलकरोमांच अवश्य ही प्रकट होते, ऐसी शंका में कहै हैं कै " यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यः । " या वेणुके भोगते शेषबचे रसकूं ह्रदिनी वृक्षादि पीमें हैं । यदि वेणु कूं सुधारस भोग नहीं होतौ तब कैसैं बचे रसकौ ह्रदिनी वृक्षादि पान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करते । तिनकैं तौ पुलक रोमांच प्रकट है रहे हैं । याते वेणु के सुधारस भोग में संदेह ही कहा है । यदि यह कहौ कै यह वेणु रसज्ञ नहीं है । याते पुलकादिक नहीं होंय हैं । यह भी बात मानवे योग्य नहीं है । क्योंकै सुधारस के स्वभावतें परम्परा सम्बंधते जब ह्रदिनी आदि जडनकैं रसिकभाव प्रकट हैं । तब साक्षात् अधरसुधा के सम्बंधतें, या वेणुके रसिकभाव होयबे में संदेह ही कहा है किन्तु सुधा भोगवे के आनन्द लक्षण के छिपायवे में वेणु कौ चातुर्य ही कारण है । और हमारे सबके भोगबे योग्य सुधारसकूं वेणु इकलौ ही पान करै है । यामें हमारौ अज्ञान ही कारण है । याते अब वेणु कूं उराहनो दैवेते भी कहा होय है । गोपीन कौ यह हृदयाशय है । अथवा " अयं वेणु रस्माकं किं कुशलं क्षेम माचरत् । "

" नकिमपीत्यर्थः " या वेणुनें हमारौ कहा कुशलक्षेमाचरण साधन कियौ है, अर्थात् कुछ भी नहीं कियौ । क्योंरी हमनें ही या वेणु कौ कहा उपकार कियौ है । याते यह वेणु हमारौ प्रत्युपकार करेगौ । तहाँ कहै हैं कै "अयम्" यह भाव गर्भित वचन है । यह वह वेणु है कै एक समय, हमारे प्राणवल्लभ, हमारे रस वश भये, या वेणुकूं हमारे ही पास भूल गये हैं पुनः या वेणुकौ स्मरण हमनें ही करायौ, और याके बजायबे की भी हमनें ही अज्ञा दीनी । यदि या वेणु कूं हम ताही समय इत-उत कर देती, तोर मरोर कैं कहूं पटक देतीं, तब यह वेणु कैसें सुधाभोग करतौ । सो ऐसौ काम हमनें नहीं कियौ । याते या वेणुकौ हमनें महान् उपकार कियौ है यह वह वेणु है । यदि कहौ कै रासादि लीला समय में तौ हमकूं यह वेणु ही बुलावै है । तब यह वेणु हमारौ कैसें उपकार नहीं करै है । तहाँ कहै हैं कै " अयम् " हम रासादि समय के वेणुकी बात नहीं करै हैं । किन्तु या समय यह वेणु हमारे भोगबे योग्य अधरसुधा कौ पान करकैं दिनमें गर्जना कर रह्यौ है यह वेणु तौ हमारौ कोई कुशलाचरण नहीं कर रह्यौ है । " अयं " पदकौ यह आशय है । क्योंरी ! यावत्काल पर्यन्त, या वेणु कौ स्वरूपज्ञान हमकूं क्यों नहीं भयौ । तहाँ कहै हैं कै "गोप्यः" हे गोपीओ ! हम सब भोरी हैं । हमारी मुग्धताते ही या वेणुकौ स्वरूपज्ञान हमकूं नहीं भयौ, यातेही यह वेणु हमारी दामोदर अधरसुधा कूं भोगै है । याते यह वेणु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हमारौ कुछ भी उपकार नहीं करे है किन्तु अपराध ही करै है। क्योंरी वीर ! या वेणु में कितनी सामर्थ्य है। याते यह हमारौ उपकार करैगो,यदि तुम यह कहौ,तहाँ कहैहै कै'वेणु:' अरी यह वेणु है या वेणु में सामर्थ्य तौ इतनी है कै या सामर्थ्य ते, ब्रह्मानन्द और विषयानन्द दोंनों कूं तुच्छ करै है सो कहा नहीं कर सकै है। क्योंरी या वेणु की ऐसी सामर्थ्य कैसें भयी। ऐसी आकांक्षा में कहै हैं कै 'दामोदराधरसुधां' यह वेणु दामोदर प्रभु की अधरसुधा कूं भोगै है। याते या वेणु को सामर्थ्य में अधरसुधा भोग ही कारण है। जो अधरसुधा ब्रह्मानन्दते अधिक स्वादिष्ट है। ब्रह्मादि देवनकूँ भी दुर्लभ है ताकौ यह वेणु यथेच्छ भोजन करें है। याते या वेणु कूँ अन्य सर्वानन्दनके तुच्छ करवे में आश्चर्य ही कहा है। क्योंरी; या वेणुनें हमारौ कुछ भी कुशल नहीं कियौ तौ न सही; किन्तु या वेणुनें हमारौ कोई अकुशल भी तौ नहीं कियौ है। याते तुम सब या वेणु कूँ ऐसौ दोष लगाय रही हौ। तहाँ कहै है कै 'गोपिकानाम्' यह सुधा गोपीन की है। ताकूं हम सबते अपहरण करके 'स्वयंभुंक्ते' आप इकलौही भोगै है। याते विशेष और कहा अपराध होयगौ। यदि तुम यह कहौ कै जैसैं हम सब अधर सुधा भोग करै हैं। ऐसैं ही यह वेणु भी अधर सुधा भोग करे है। तब वेणुकौही सुधा भोग, गोपीनकूं क्यौं कसकै है। तहाँ कहै हैं, कै 'गोपिकानाम्' या प्रभु अधरसुधा में,गोपीन की अधरसुधा मिल रही है। जब हम प्रभु अधरसुधा कौ भोग करै है तब हमारे प्राणवल्लभ हमारी अधरसुधा को भोग करे हैं याते प्रभु की अधरसुधा में हमारी अधरसुधा मिल रही है। कारण कै प्रभु के संग हमारौ निरन्तर भोगाभ्यास होयवे ते, प्रभु अधरसुधा के भोग करवे में हमारी अधरसुधा भोग की भी सम्भावना होय है। और 'अयंवेणु:' यह वेणु है सो पुरुष है याते पुरुषोत्तम ते अन्य पुरुष, यदि हमारी अधरसुधा कौ भोग करै तौ हमारे पतिव्रत धर्म कूं नष्ट करै है। तब तौ यह वेणु हमारौ बड़ौ भारी अकुशल करें है। यह भाव 'अपि' शब्द ते ध्वनित होय है। क्योंरी जब हमारे प्राणवल्लभ ही या वेणु कूं सुधा कौ भोग करामें, तब या वेणु कौ सुधाभोग में कहा दोष है। तहाँ कहै हैं कै 'स्वयं' अरीयह वेणु सुधा कूं आप ही भोगै है। कारण कै हमारे प्राणनाथ तौ दामोदर हैं हमारी स्नेहरूपा रस्सी ते उदर में बँध रहै हैं। गोपिकान के आधीन हैं याते ऐसौ कार्य कदापि नहीं कर सकै हैं याते यह आपही भोगै है। अपने स्वार्थ के लियैं

Dr. Urmila Sharma Collection,.Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रभु के मुख ते जाय लग्यौ है। याते ऐसे स्वार्थी कूं हमारे कुशल अकुशलते कहा प्रयोजन है। अरी! या वेणु ने न तौ स्वार्थ ही साधन कियौ, और न कोई परमार्थ ही साधन कियौ। या आशय ते कहै हैं कै 'यदवशिष्टरसं' या कारण ते कै या वेणु नें अपने भोजन ते शेष बचे रस कूं ह्रदिनी वृक्षादि कूं पान करायौ। यदि यह वेणु स्वार्थी होतौ तब तौ सुधारस कूं आप ही भोगतौ और जो परोपकारी होतौ, तब तौ गोपीन की सुधा गोपीन कूं ही दैनी ही। सो या वेणु नें स्वार्थ वा परमार्थ दोनों में ते एकहू कार्य नहीं कियौ। या वेणु नें सुधारस ह्रदिनी वृक्षादि कूं दै दियौ, भलैं ही दै दियौ यामें हम कूं किंचिन्मात्र भी आपत्ति नहीं ही, किन्तु हम इन बातन कूं नहीं जानतीं, तब तौ हमारे हृदय में इतनों दुःख नहीं होतौ, किन्तु जानकै तौ दुःख होय ही है। या आशय ते कहै हैं कै 'हृष्यत्त्वचोऽश्रुमुमुचुस्तरवश्च' या सुधारसपान के स्वभाव ते ह्रदिनीन कैं कमलरोमाँच, मकरन्द अश्रु प्रकट ह्वै रहें हैं। और वृक्षन कैं फूल फल रोमांच और मधुधारा रूप अश्रुधारा प्रकट हैं। तब हम कैसैं नहीं जानैं कै ह्रदिनी वृक्षादि नें सुधारस नहीं पियौ, या सुधारस के भोगते ही पुलकरोमांच ह्वै रहे हैं। या सुधारस पीवेवारेन कूं तौ लज्जा होंनी चहियै, और स्त्रीन कूं तौ रसपान करकैं विशेष लज्जित होंनों चहियै। यदि वृक्षपुरुष निर्लज्ज होंय, तब तौ कोई आश्चर्य नहीं है। किन्तु ये नदी, सरोवर स्त्री कैसी निर्लज्ज हैं कै सुधारसपान करकैं, आनन्दवश भई फूली नहीं समाय हैं, रोमांचअश्रु प्रकट करै हैं। यामें दृष्टान्त कहै हैं कै 'यथाऽऽर्याः' जैसैं भगवद्धर्मिभक्तजन, अन्तर्गत-पूर्णानन्द ते रोमांचित भये अश्रुयुक्त होंय हैं तैसैं ही ये सरिता, सरोवर ह्वै रही हैं। यह भाव आर्यपद ते सूचित कियौ। यहाँ गोपीन नें 'आर्य' पद ते नद्यादि की निन्दा में स्तुति करी है। गोपी कहै हैं कै जाकूं जा वस्तु की इच्छा होय, ताके लियैं सोही वस्तु दैनी चहियै। ऐसी दान की व्यवस्था है। तब नदी, सरोवर, वृक्ष तौ स्वभाव ते ही रसीले गीले हैं, तिन कूं रस की इच्छा नहीं है। या समय हम सब तौ प्रभु के वियोगाग्नि ते झुरसींसी, मुरझांईसी, गतप्राणासी ह्वै रही हैं, याते हम कूं अधरसुधा की इच्छा है। सो हम सब कूं त्याग करकैं, गीले, रसीले नदी, सरोवर, वृक्षन कूं रस देय हैं, रसयुक्त करै हैं। देखौ या वेणु कौ विवेक कैसौ अनुचित कार्य करै है। अथवा या वेणु की कुशल, अकुशल वार्ता ते हम कूं कहा प्रयोजन है। कारण कै हम व्रजस्थिता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्त्री हैं । यह वेणु वनस्थित पुरुष है । हमारौ या वेणु ते कोई सम्बन्ध नहीं है । किन्तु यह तौ विचारौ । कै या वेणु नें कोई अपनों भी कुशल साधन कियौ है, अर्थात् कुछ भी नहीं कियौ । या वेणु ने कुशलसाधन कैसें नहीं कियौ, ऐसें जानवे की अपेक्षा में कहे हैं कै 'अयंवेणुः' यद्यपि यह वेणु पुरुष है तथापि बजायवे योग्य वाद्य ही रह्यौ । याकौ यह अभिप्राय है कै जो प्राणी जा फल की प्राप्ति के लियें साधन करै है ताही साधन ते फल भोगवे के अर्थ अपनी योग्यता भी प्राप्त करै है । ताकूँ फलकीप्राप्ति में फल भोगवे की योग्यता के लियें अन्य साधन की अपेक्षा नहीं होय है । जैसें पूर्व में हम श्रुतीन नें या अधर-सुधा के भोगवे के अर्थ जो कुशल साधन कियौ, ताही कुशल साधन ते हम सुधारस भोगवे के योग्य, व्रज में गोपी भयी हैं । ऐसें ही या वेणु नें सुधारस भोगवे के अर्थ कोई कुशलाचरण साधन कियौ होतौ तब तौ हमारी भाँति सुधारस भोगवे की योग्यता भी प्राप्त करतौ किन्तु यह वेणु तौ पुरुष है याते आधिदैविक स्त्री देह को प्राप्ति के विना सुधा भोगवे कौ अधिकारी नहीं है । याते वेणु नें सुधाभोग के अर्थ कोई कुशलाचरण नहीं कियौ, यद्यपि हम पूर्व में शब्द ब्रह्मात्मिका श्रुति हती, तथापि शब्द ब्रह्मात्मिका श्रुति होते भी, आधिदैविकी शक्ति के प्रवेश विना, आधिदैविक स्त्री देह की प्राप्ति के विना, प्रभुअधरामृत के भोगवे की अधिकारिणी नहीं भयी । जब हमनें अधरामृत की प्राप्ति के अर्थ प्रभु ते प्रार्थना करी कै—

> "यथात्वल्लोक वासिन्यः कामतत्त्वेन गोपिकाः ।
> भजन्ति रमणं मत्वा चिकीर्षाऽजनि नस्तथा ॥"

जैसें आपकी गोलोकवासिनी गोपिका आपकूँ अपनों रमण मान करकैं आपकूँ काम भाव ते सेवन करें हैं । तैसें ही हमारे आपके सङ्ग रमण करवे की इच्छा है । या प्रकार प्रार्थना करवे ते प्रभु के अनुग्रहवर प्रसाद ते आधिदैविक स्त्री देह की प्राप्ति में हम अधरसुधा के भोगवे योग्य गोपी भयी हैं । और यह वेणु तौ अभी शब्दब्रह्मोत्पत्ति कौ स्थान मात्र है । अभी शब्दब्रह्मात्म भाव कूं भी प्राप्त नहीं भयौ है याते ज्ञात होय है कै या वेणु नें ऐसौ कोई कुशलाचरण नहीं कियौ, याते हमारे पूर्वरूप शब्द ब्रह्मात्मक भाव कूं भी प्राप्त होतौ । याते सुधारस भोग में या वेणु कौ कोई साधन नहीं है । गोपी कहै हैं । अरी ! यह वेणु बजायवे योग्य वाद्य, रस कूं भोग नहीं सकै है, किन्तु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रस कूँ जाग्रत करै है। याते रस कौ भोग तौ रसावलंबनरूपा हम गोपीन कूँ ही है। यह रसशास्त्र कौ सिद्धान्त है। किन्तु या वेणु कौ कोई ऐसौ कुशलाचरण अवश्य है याते यह प्रभु कौ वेणु भयौ। याते या वेणु कूं साक्षात भगवान् अधरसुधा कौ सम्बन्ध मात्र है, यह तौ प्रसिद्ध ही है यह 'स्म' पद ते सूचित कियौ। यदि या वेणु कौ कोई कुशलाचरण नहीं होतौ तब कहा अन्य बाँसन के होते प्रभु कौ यही वेणु होतौ, यह भाव है। अरी यह वेणु-सुधारस भोगै है और हम देखैं हैं तब हमारे कहवे ते ही कहा है। तहाँ कहै हैं कै 'गोप्यः" हे गोपीओ! हमारी मुग्धता ते ही वेणु कूं सुधाभोग की प्रतीति होय है। यथार्थ में तौ वेणु सुधारसभोग नहीं करै है। क्यों रो यह तौ निश्चय ही है कै या वेणु के मुख रूपरंध्रन में प्रियतम नें सुधा पूरी है तब सुधा के भोग में सन्देह कहा रह्यौ। तहाँ कहै हैं कै 'दामोदरसुधां' यह सत्य है कै पूरवे के अभिप्राय ते यह वेणु दामोदर प्रभु की अधरसुधा कूं भोगै है सो कहा 'स्वयंभुंक्ते' वेणु आपते सुधा भोगै है। नहीं आपते नहीं भोगै है। यहाँ 'अपि' शब्द ते काकूक्ति ध्वनित होय है। याते पूरण कौ अर्थ है और के लियैं, अर्थात् हमारे लियैं भगवान् वेणु के छिद्रन में सुधा कूं ऐसे वेग ते पूरे हैं कै विचारे वेणु कूँ सुधा ते उदर भरवे की तौ कौंन कहै विचारौ मुख मूंद कैं निगल भी नहीं सकै है। याते हमारे लियै ही भगवान् सुधा कूं वेणु में पूरे हैं। याते सुधा कौ भोग वेणु कूं नहीं है। वेणु प्रभु के चुम्बनमात्र ते सुधाभोग कौ अधिकारी नहीं है। जैसें पहलैं श्री यशोदा जी नें ऊखल ते बँधे भगवान कूं भयभीत जानकर कैं स्नेहातिशयते प्रभु के अधर चुम्बन किये, तब कहा चुम्बनमात्रते श्रीयशोदाजी कूँ सुधाभोग कहनों उचित है? ऐसैं कहनों कदापि उचित नहीं है। कारण कै अधरसुधा कौ भोगाधिकार, श्रीमातृचरणन कूं नहीं है। ऐसैं ही यह वेणुभी सुधाभोग कौ अधिकारी नहीं है। या तात्पर्य ते यहाँ "दामोदर" पद कह्यौ। गोपीन कौ यह आशय है। कै जो प्रभु बाल्यावस्था में श्रीयशोदाजीनें रोषभावते अपने वश कर लिये, सो प्रभु हमारे सङ्ग संभोग दशा में हमारे रसवश भये हमारे प्रतिकूल आचरण कैसैं करैंगे। यह भी दामोदर पदते ध्वनित होय है। जो प्रभु श्रीयशोदाजी नें रस्सी ते बाँधकर वशमें कर लिये सो कहा हमारे स्नेह बन्धन में बँधे हमारे वश नहीं होंयगे, अवश्य होंयगे, दामोदर पदमें यह भी ध्वनि निकसै है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

याते या वेणुकूं प्रभुस्वरूपते अधरसुधा की प्राप्ति नहीं है । यह सूचित कियौ । और अधर है सो लोभी है याते लोभस्थानते भी वेणुकूँ सुधाकी प्राप्ति नहीं है ! और अधर पदते नीचे के देशकूं भी कहै हैं । जैसें उच्चस्थान में धरयौ रस तौ गिरकरकें भी मुखमें आय सकै है । किन्तु नीचैं धरयौ रसतौ हस्तादिके ग्रहण करवेते प्राप्त है सकै है किन्तु यह वेणुतौ इन्द्रियादि क्रिया रहित है । याते वेणुकूं अपने प्रयत्न ते भी सुधा प्राप्त नहीं है सकै है । याते यह वेणु सुधारसानुभव कैसें कर सकै है । और सुधा है सो स्त्रीलिंग है याते स्त्री तौ अपने स्वरूप कूं स्त्रीन के ही अगारी प्रकट करै है । स्वस्वरूप कूं अन्यपुरुष के अगारी प्रकट नहीं करै है । तब अपने रसकूं तौ अन्य पुरुष के अगारी कैसै प्रकट करैगी । और लज्जावती स्त्री तौ रति समय में भी रसकी अधिकता के विना अपने स्वरूप कूं अपने पति के अगारी भी प्रकट नहीं करै है । तब अन्य पुरुष के अगारी अपने स्वरूप कूं वा अपने रसकूं कैसें प्रकट करैगी, याते स्त्री स्वभाववती सुधा के स्वरूप की भी प्राप्ति या वेणुकूं नहीं है। सुधा के स्त्रीलिंग पदते यह सूचित कियौ । क्योंरी ! जाके लियें यह सुधा वेणु में पूरी है सो कौन है । ऐसी अपेक्षा में कहै हैं कै "गोपिकानां" यह सुधा गोपीन के लिये ही वेणुके छिद्रन में पूरण करी है । याते सुधा गोपीन की है । गोपिकानां पदमें और हू तात्पर्य है । कै हम गोपन की स्त्री गोपी हैं । पतिव्रती हैं । गँमारी हैं । चतुरा नहीं हैं । याते हम दिनमें वृन्दावन जायवे में असमर्थ हैं । याते हमारे प्राणवल्लभनें यह समझकें हमारे कर्ण द्वारा स्वरूप सौन्दर्याधर सुधाकूं हृदय में प्रवेश करवे के लियें, हमारे पूर्वरूप शब्द ब्रह्माकाश में सुधा पूरी है । याते पूरते समय में हू सुधा हमनें ही भोगी, और अबहू हमहीं भोग रहीं हैं या वेणुनें सुधा नहीं भोगी है । याते यह सर्वाऽभोग्या सुधा हमारी है । यह हमारो कथन सब सत्य है । यदि तुम यह कहौ कै सुधातौ वेणु के छिद्रन में ही पूरी जाय है । अन्यथा सुधा हमारे पास कैसें आवै, याते या वेणुकूं अधरसुधाकौ भोग है । किन्तु वेणु अधरसुधा कूं आपही भोगै है । हमारी भाँति वेणु अधरसुधा कूं तौ पान नहीं करावै है । तबतौ वेणु के भोगते हमारे भोगमें महान् विशेषता है । ऐसे वेणु के भोगते हमारी कहा हानि है । किन्तु वेणु तौ, सुधाकौ भोजन करै है । सुधारस कौ पानवौ नहीं करै है । सुधारसकौ तौ पान करवे में ही स्वाद आवै है । रसके आस्वादन में रसनाइन्द्रिय की अपेक्षा है । वेणुकैं रसनाइन्द्रिय नहीं है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देवभोग्यसुधा और सर्वाभोग्य सुधा में, बहुत अन्तर है। गोपीयां सर्वाभोग्य सुधा पाती हैं ॥

याते वेणु कूं सुधा कौ पान करनों नहीं रह्यौ । किन्तु " भुङ्क्ते " भोजन करनों ही कह्यौ । यद्यपि भोजन के स्वाद में भी रसनेन्द्रिय की अपेक्षा है । तथापि यहाँ सुधा के निगलवे ते उदर पूर्ति मात्र भोग पदकौ अर्थ है। याते रसके स्वरूप कूं जान करकें स्वादपूर्वक सुधारसकौ ग्रहण नहीं है । याते सुधाभोग में " भुङ्क्ते " भोजन करनों ही कह्यौ । सो सुधाकौ निगलनों भी अपने प्रयत्न ते नहीं है । यदि सुधाकौ निगलनों अपने प्रयत्नते होतौ तबतौ रसके स्वरूप ज्ञानकी रस स्पर्श की भी संभावना होती, किन्तु यह वेणु तौ प्रभु प्रयत्न ते ही सुधा कूं निगलै है । याते ही श्रीशुकाचार्यनें " अधरसुधयापूरयन् " या श्लोक में अधरसुधा कौ पूरण करनों भगवत्कृत ही कह्यौ है । जो रस आतृप्ति पर्यन्त अपनी रुचिते पीयौ जाय है सो रस उगलौ नहीं जाय है। और विकार भी नहीं करे है किन्तु परेच्छाते पियौ रसतौ स्वल्प हू उगलौ ही जाय है । याते या वेणु के उगले भये रसके आशयते गोपी कहै है कै " यदवशिष्टरसं " या वेणुकी उँगली भूँठी सुधाकूं सरिता सरोवर वृक्षादिकपान करें हैं । याते या वेणकी भोजन करी उँगली देवभोग्यासुधा कूं ही सब भोगें हैं । और सर्वाऽभोग्या सुधाकौ तौ या वेणु कूं स्पर्श मात्र भी नहीं है । ऐसें हम मानें हैं। अन्यथा यह अधरसुधारस हम सब गोपीननें यथेच्छपान कियौ भी हमारी ही तृप्ति नहीं करै है । तब अवशेष रसकें पीवे वारे ह्रदिनी वृक्षादि की तृप्ति कैसें होय सकै है। यदि या वेणु नें भोजन करी सुधाकौ अंशमात्र भी वेणमें स्थित रहतौ तबतौ या वेणु में पुलकादिक भी अवश्य प्रकट होते, कारण कै या रसके स्वभावकौ हमकूं स्वयं अनुभव है। और अवशेष रसके पीवे वारे जे ह्रदिनी वृक्षादिक हैं तिनमें भी पुलकादि अवश्य देखे जाँय हैं, किन्तु वेणुमें पुलकादिक नहीं होय हैं। याते ही श्रीशुकाचार्य नें वेणुके सुधाभोग में ' भुंक्ते 'परवश भोजन करनों क्रिया पद कह्यौ । और ह्रदिनी वृक्षादि के लिये ' हृष्यत्त्वचो ' या पदते रसानन्द लक्षण पुलकादि प्रकटन रूप क्रिया कही। याते वेणु में सुधारसकी अस्थिरता कही। ह्रदिनी वृक्षादि में रसकी स्थिरता कही। याते या रसकूं वेणुमें राखवे की प्रभु कूं इच्छा नहीं है । या सुधा रसकूं अन्यत्र गोपीन के लियें पहुचावनों ही प्रभुकूं इच्छित है। यदि प्रभु कौ यह आशय नहीं होतौ । तब कहा एक रन्ध्रमें सुधाकौ पूरण करनों सम्भव होते भी, 'रन्ध्रान्वेणोः' या वाक्य में बहुवचनके कहवेते, सब छिद्रनमें में सुधा कौ प्रवेश सब छिद्रनते सुधा कौ निकसनों सब छिद्रन में एक सङ्ग सुधाकूं पूरण करनों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सम्भव नहीं है याते वेणुमें सुधा की स्थिति न रहवेते और सुधा प्रवेश और सुधा निर्गमन के एककालीन होयवेते ही, सब घटसकै है । जा समय एक छिद्र ,में सुधा कौ प्रवेश होय है, ताही समय अन्य छिद्रनमें होयकर निकसती अधरसुधा सर्वत्र में पूरित है जाय है । यह अर्थ सिद्ध भयौ । और जैसें पात्रमें भरे रसकूं पात्र नहीं भोगै है । ऐसे वेणुके छिद्रन में पूरो सुधाकूं वेणु नहीं भोगै है। पूरी भयी सुधा मार्ग रूपतें निकस करकें अन्यत्र ही चली जाय है, याते या वेणु तें हमारो कोई हानि नहीं है। बहुधा करकें यह वेणु ह्रदिनी वृक्षादिकनकूं सुधा संयुक्त नाद मार्गीय करकें हमारी सम्बन्धिनी लीलोपयोगि योग्यता कूं सम्पादन करै है, अन्यथा ह्रदिनी वृक्षादि में रसात्मक नाद के प्रवेश विना लीलोपयोगिता प्राप्त नहीं होती, तब तो ह्रदिनी आदि में लीला कैसें होती। याते हमकूं तो वेणु निरन्तर इष्ट वस्तु कौ प्राप्त करायवे वारो है, याते वेणु को सर्व कर्तव्य शुद्ध है ॥ ९ ॥

या प्रकार सुधा सम्वलित वेणुनादकौ वर्णन करकें व्रजगोपी, वृन्दावनविहारमें भगवच्चरणारविन्दन कौ स्वरूप वर्णन करै हैं।

वृन्दावनं सखिभुवो वितनोतिकीर्तिं यद्देवकी सुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि ।
गोविंदवेणुमनुमत्तमयूरनृत्यं प्रेक्ष्याद्रिसान्ववरतान्यसमस्तसत्वम् ॥१०॥

हे सखि ; यह वृन्दावन व्रज भूमि की कीर्ति बढ़ावै है, कारण कै श्रीदेवकी सुत के चरण कमलके चिह्न करकें प्राप्त भयी है लक्ष्मी शोभा जाकूं ऐसौ यह वृन्दावन है । और गोविन्द प्रभु के वेणुनाद के पश्चात् वेणुनाद के अनुसार ही नृत्य करै हैं मत्तमयूर जामें ऐसे मत्तमयूरनृत्य युक्त वृन्दावन के दर्शन करकें गोवर्द्धन पर्वत की शिखर के ऊपर मौन धरै बैठे हैं अन्य समस्त जीव जामें ऐसौ यह वृन्दावन व्रज भूमिकी कीर्तिकौ विस्तार करै हैं ॥१० ॥

" **वृन्दावनं सखिभुवो** " या श्लोक के आभास में श्रीवल्लभाचार्यजीनें यह कह्यौ है कै चरणन के स्वरूपकूं कहै हैं। या कथन में श्रीविट्ठलेश प्रभु कहै हैं कै या कथन में मौकूं यह तात्पर्य स्फुरै है। कै भगवच्चरणारविन्दकौ माहात्म्य सर्व श्रुति प्रतिपाद्य है। सो '**देवानांपादौ**' याते प्रारम्भ करकें '**तस्याभिनन्दनं**' या वाक्य पर्यन्त की व्याख्या में प्रभुचरणनकौ माहात्म्य कह्यौ है। ऐसे प्रभु पदके सम्बन्ध ते वृन्दावन कौ स्वरूप अति उत्तम निरूपित भयौ । कारणकै वृन्दावन विहार में ही प्रभु चरण के स्वरूप कौ निरूपण है। याते यहाँ यह आकूत होय है। कै लोकातीत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुष्टि मार्गीय सामग्री वृन्दावनते अन्यत्र कहूँ भी प्रसिद्ध नहीं है। याते पुष्टिलीला कर्ता भी लोक वेदातीत ही है। अतएव "वृन्दावनादगतो दूरं" प्रभु वृन्दावनते दूर गये यह अगारी कहेंगे. याते जहाँ पुष्टि लीलाकौ अङ्गीकार नहीं है तहाँ ही ऐसैं दूर जानों कह्यौ है। जब पुष्टिलीला करनों प्रभुनें वृन्दावन में ही विचार्यौ है। तब अन्वय व्यतिरेकते पुष्टिलीला वृन्दावनमें ही फलित होयगी। जब पुष्टिलीला वृन्दावन में ही है। याते जहाँ शुद्ध पुष्टिमार्ग प्रकट करनों प्रभुकूं अङ्गीकार है। वहाँ ही लोक वेदातीत श्रीपुरुषोत्तम प्रभु के चरणन की पुष्टिलीला है ऐसैं जाननों चहिये। 'बृहद्वन महावन में भी' पुष्टिलीलाही कही है कै—

'सह रामो व्रजस्त्रीणां चिक्रीडे जनयन्मुदम्'

'ग्रैद्यंत्य उज्भितगृहा जहपुर्हसन्त्यः'

"कृष्णस्य गोप्य" इत्यादि वाक्यन ते पुष्टिलीला ही कही है। और कालीय शिरोनृत्य में तौ लोक वेदातीत प्रभु चरणनका प्रादुर्भाव नहीं है। कालीय दमन लीला में प्रभुनें पुष्टिलीला कूं अङ्गीकार नहीं कियौ है। याते ही कालीय की ऐसी स्तुति है। अतः जा लीला में शुद्ध पष्टिमार्गीय भक्ति मार्ग प्रकट करनों है। तहाँ ही लोक वेदातीत प्रभु चरणनकौ आविर्भाव है। याते चरणन के स्वरूप कूं कहे हैं यह जो आचार्यजीकौ कथन है सो बहुत सुन्दर है। जैसै असाधारण धर्मनके निरूपण करवेते, धर्मिकौ निरूपण सिद्ध होय है। तैसैं यहाँ लीला के निरूपण करवेते, धर्मि चरणनकौ स्वरूप निरूपण सिद्ध भयौ। कारण कै लीला ही धर्मि चरणनके स्वरूप की परिचय करायवे वारी है। या प्रकार 'देवानांपादौ' ते प्रारम्भ करकैं "आधिदैविकावानन्दरूपौ" यावत्पर्यन्तको व्याख्या में आधिभौतिक, आध्यात्मिक आधिदैविक, सब चरणनके स्वरूप कं कहवेते और सब ठिकानें लोकवेद, प्रथित पुरुषोत्तम के चरण जानने। और यहां वृन्दाबनमें लोक वेदातीव परुषोत्तमके चरण जानने यह भाव जतायौ है।

अब श्लोक की व्याख्या करे हैं कै 'बर्हापीडं' या श्लोकमें जो 'स्वपदरमणम्' यह वृन्दावन कौ विशेषण कह्यौ है याते विशेषण धर्म के प्राधान्यते यह श्लोक, पूर्वोक्त वृन्दावन प्रवेश कौ अनुवाद रूप है। याते या श्लोक कौ तात्पर्यार्थ चरणकौ स्वरूप कहनों उचित ही है। गोपी कहेहैं कै 'वृन्दावनंसखिभुवो' हे सखि ; यह वृन्दावन व्रज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमिकी कीर्तिकौ विशेष विस्तार करैहै। यद्यस्मात्कारणात् याकारणते कै देवकीसुतके चरण चिन्हन करकैं प्राप्त भयी है लक्ष्मी शोभा जा वृन्दावन कूं ऐसौ यह वृन्दावन है। याते या वृन्दावन के भाग्य कौ महिमा कौन वर्णन कर सकै है। कारण कै देवतान के चरणतौ भूमिकौ स्पर्श नहीं करैं हैं। तामें भी देवोत्तम जे ब्रह्मा विष्णु शिवादिक हैं तिनके भी चरण भूमिकौ स्पर्श नहीं करै हैं। तामें भी लोक वेद विख्यात पुरुषोत्तम के चरण भूमि कौ स्पर्श कैसें करैंगे? कारण कै पुरुषोत्तम कौ अंशरूप जो विराट् पुरुष है ताके आधिभौतिक चरण पृथ्वी है। विराट् पुरुष के आध्यात्मिक चरण अतीन्द्रिय हैं। विराट पुरुष के आधि-दैविक चरण आनन्द रूप हैं। यह कथन "भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्याम्" या श्लोक में कह्यौ है। जब विराट् पुरुष के आधिदैविकानन्दरूप चरणनकौ सम्बन्ध या भूमि कूं नहीं है तब लोकवेदातीत श्रीपुरुषोत्तम के चरणन कौ सम्बन्ध या भूमिकूं कैसें भयौ। यद्यपि—

"द्रक्ष्यामगांयां च तवानुकंपिताम्।"

या श्लोक में ब्रह्मा की प्रार्थना ते भूमि में चरणन कौ स्थापन करनों कह्यौ है। तथापि प्रभुकूं शुद्ध भूमि में पदस्थापन करनों उचित हो, या आशयते कहै है कै "वृन्दावनं" यह वृन्दावनतौ शुद्ध भूमि नहीं है। कारण कै भूमि के मध्य में यह जालंधर दैत्य की भूमि है तामें भी ताकी वृन्दा नाम की स्त्री सम्बन्धिनी भूमि है याते ही या भूमि कौ नाम वृन्दावन है। ऐसे अयोग्य स्त्री सम्बन्धि अधम स्थान वृन्दावन में, 'देवकीसुतपदाम्बुज-लब्धलक्ष्मि' देवकीसुत प्रभु के चरणचिन्हन करकैं प्राप्त भयी है शोभा जाकूं ऐसे शोभाधाम श्री वृन्दावन में देवकीसुत प्रभु के पदाम्बुज विद्यमान है। याते या वृन्दावन भूमि की महिमा कौ कहा कहनों है। यह वृन्दावन हमारैं भी उत्कण्ठा कूं बढ़ावै है। यहाँ लक्ष्मीलाभ कौ हेतु प्रभुपादाम्बुज है। याते पादाम्बुज के धारण करवे ते चरणन कूं निस्साधन फलात्मक लोकवेदातीत ज्ञापित कियौ। वृन्दावन भूमि में भगवत्पादाम्बुज के विराजवे ते वृन्दावन कूं लक्ष्मी को लाभ भयौ। या प्रकार लोकवेदातीत श्री पुरुषोत्तम के चरण श्री वृन्दावन में विराजमान होयवे ते भक्ता वृन्दा के भाग्य कौ अभिनन्दन बड़प्पन हमारी उत्कण्ठा कौ बोधक है। क्योंजी वृन्दावन तौ लीलोपयोगि है याते वृन्दावन में प्रभु कूं पादाम्बुज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitized by eGangotri

धारण करनों उचित ही है किन्तु वृन्दावन गोपीन की अभिलाषा को व्यापक कैसें है । ऐसी आकांक्षा में, गोपी वृन्दावन में अपनी तुल्यता कहै हैं कै हमारो हृदयदेशभी वृन्दावन भूमि है । स्त्रीन को हृदय भी भूमिकी भाँति कठिन होय है तैसे हमारो भी हृदय कठिन भूमि है । भूमि में पर्वत होंय हैं तैसे हमारो हृदय भूमि में भी पर्वत हैं । जैसें भूमि में अन्तः प्रवाहवती वहिः प्रवाहवती रसपूरवती गंगा यमुना सरस्वती आदि नदी हैं तैसें ही हमारी हृदय भूमि में भी नदीं हैं । अर्थात् जैसौ रस पूरप्रवाह गंगा यमुनादि नदीन कौ भूमिके भीतर वाहिर होय है तैसौही भगवत् रस पूरप्रवाह हमारी हृदय भूमि के भीतर वाहिर है । सोही भगवत् रसपूर प्रवाह गंगादि पवित्र नदीन की भाँति, वर्णन करते समय वाहिर प्रकट होय है । यह भगवत् रसपूर प्रवाह जगत् कौ पवित्रकारक है । वृन्दावन जैसौ सुन्दरवन है । तैसें हमारी रोमपंक्ति भी सुन्दर वन है । वृन्दावन कूँ भगवत्पादाम्बुज ते शोभा प्राप्त भयी है । हमारी हृदय भूमि की भी भगवत्पादाम्बुजते ही शोभा है । वृन्दावन, वृन्दा स्त्री संवन्धि वन है याते हमारी और वृन्दाकी तुल्यता होते भी, प्रभु हमारी हृदय भूमि में चरणस्थापन नहीं करै हैं और वृन्दावन में चरण स्थापन करै हैं । यह ईर्ष्या करकैं वर्णन है । कोई टीकाकार ऐसें कहै हैं । कै पूर्वके तीन श्लोकन में त्रिगुणात्मक वर्णन है । किन्तु यह गोपी तौ निर्गुणा है । याते याके वर्णन में असूया दोषकौ होनों संभव नहीं है । किन्तु या गोपीके निर्गुणा होते भी, या गोपीनें असूयाते हो वर्णन कियौ है । या रसकौ स्वभावही ऐसौ है । कै कोई समय असूया दोषभी प्रकट होय है । हे सखि ! यह संबोधन संमति के अर्थ है । ऐसी गोपी बहुत नहीं हैं कोई विरली ही ऐसी हैं याते संबोधन में एक वचन है । क्योंरी सखि भगवत्पादाम्बुज, जैसे व्यापि वैकुण्ठ (मुख्यअक्षरब्रह्म) में विराजमान है । तैसेंही वृन्दावन में विराजमान हैं । तब वृन्दावन में ही प्रभुपादाम्बुज के आविर्भाव में आश्चर्य कहा है । तहाँ कहै हैं कै " भुवो वितनोति कीर्तिम् " यह वृन्दावन व्रजभूमि की कीर्ति कूं बढावै है । यदि वृन्दावन व्यापि वैकुण्ठ में स्थित होतौ तबतौ कांई चिन्ता नहीं ही, किन्तु वृन्दावन तौ भूमि में स्थित है याते केवल भूमि की कीर्ति कूं ही बढ़ावै है । व्यापि वैकुण्ठ गोप्यस्थान है । और वृन्दावन तौ भूमि में प्रकट है । यह भेद है । प्रभु पादाम्बुज के द्वारा जैसो रसानुभव हमकूं होय है ऐसो रसानुभव या वृन्दावन कूं नहीं है । केवल भूमिकी कीर्ति कौ विस्तार करै है । यह भूमि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

बड़ी धन्य है । याते कै या भूमिमें वृन्दावन है । यह गोपी अपने हृदय में गोप्यरूपते और वृन्दावन में प्रकटरूपते भगवान् की नित्य स्थिति मानें है ताकौ यह वचन है । यद्यपि भगवान् वृन्दावन में नित्य ही विराजें हैं । तथापि भगवान प्रकट नहीं होंय हैं । भगवान् स्वतन्त्र हैं याते वृन्दावन भूमि अनुरागवती होय है तब भूमि के आर्द्र होयवेते प्रभु अपने चरणारविन्दन को कोई समय ही दर्शन करामें हैं । प्रभुके दर्शन करायवे की सामर्थ्य वृन्दावन में नहीं है । यद्यपि भगवान् स्वतन्त्र हैं । तथापि प्रभु भक्ति के वश्य हैं । याते प्रभु वृन्दावन में भक्तिते ही दर्शन देय हैं । क्योंजी भक्ति ते तौ सर्वत्र ही प्रभुकौ दर्शन होय है । याते कछु वृन्दावन की प्रतिष्ठा नहीं है । याते वृन्दावन की प्रतिष्ठा में निमित्त कहै है कै—

" यद्देवकीसुत पादाम्बुजलब्ध लक्ष्मि । "

या कारणते कै देवकीसुत के चरण कमलन में जो अम्बुज ध्वजा वज्राङ्कुशादि चिन्ह हैं । तिन करकैं प्राप्त करी है लक्ष्मी शोभा जानें ऐसौ यह वृन्दावन है । इन चरण कमल के चिह्नते ही वृन्दावन की प्रतिष्ठा है । भगवत्पादाम्बुज के चिन्ह दर्शन तौ आधिदैविक लीलाधार वृन्दावन में नित्यस्थित रहै हैं । याते वृन्दावन में भक्ति की भी अपेक्षा नहीं है । भगवत्पादाम्बुज स्वयंही भक्तिरूप है यातें इन चरण के दर्शन करकैं आधुनिक जीवनकैं भी भक्ति प्रकट होय है । यहाँ " लक्ष्मि " पदकौ " लक्ष्म " चिह्न अर्थ कियौ । और मूलमें जो अम्बुज पद है सो ध्वजादि कौ भी उपलक्षक है । और यहाँ सप्तमी तत्पुरुष समास है ।

" पदाम्बुजानां मूले स्थितानि लक्ष्माणिअम्बुज ध्वज वज्राङ्कुशादीनि तैर्लब्धालक्ष्मीयेन । "

याते यह अर्थ भयौ कै अम्बुजोपलक्षित ध्वज वज्रादि चिह्न करकैं प्राप्त करी है लक्ष्मी जानें ऐसौ वृन्दावन है । यहाँ " बर्हापीडं " या श्लोक में जो " स्वपदरमणम् " पद कह्यौ है । या रमणलीला के विचारते तौ प्रभु पादाम्बुजचिह्न, वनस्थिता गोपीन के हृदय में, व्रजस्थिता गोपीन के मनमें, और वृन्दावन में सर्वत्र ही जानने चहियैं यहाँ व्रजगोपीननें प्रभुते अपनों स्वच्छन्द

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

सम्बन्ध जतायवे के अर्थ देवकी सुत पद कह्यो है । सो नन्दगोप सम्बन्धिनी श्रीयशोदा जीही यहाँ देवकी नामते कही है । यामें विष्णुपुराण कौ वचन भी प्रमाण है के—

" द्वेनाम्नीनन्दभार्यायाः यशोदा देवकी तथा, तेन सख्यमभूत्तस्या वसुदेवस्य भार्यया । "

याते यहाँ देवकी पदते श्री यशोदा ही कही हैं । अथवा ये गोपी नन्दगोपके गृह में रहने वारी कन्या हैं । याते लोक दृष्टितेइनको सम्बन्ध, श्रीयशोदासुतके सङ्ग नहीं घट सकै है । याते यहाँ देवकीसुत पद कह्यो है । अथवा इन गोपीन कूं श्रीदेवकीजी में प्रभुको प्रसूतिमात्र सम्बन्ध स्वीकार है । अन्य कोई सम्बन्ध स्वीकार नहीं है । यात देवकीसुत कह्यौ । क्योंजी जब देवकी में प्रसूतिमात्र स्वीकार है तब प्रभुकूं वसुदेवसुतही क्यों नहीं कह्यौ । तहाँ कहै हैं कै या पुष्टिमार्ग में स्त्रीन कौ ही प्राधान्य है । याते या देवकीसुत पदते, स्त्रीन के विषें भगवत्कृपा सूचित करी । क्योंजी या पुष्टिमार्ग में स्त्रीन कौ ही प्राधान्य क्यों है । तहाँ कहै हैं के या पुष्टिमार्ग में भगवत्पदाम्बुजही प्रधान हैं । और अम्बुज है सो जलमें उत्पन्न होय है याते तापहारक हैं । याते तापहारक होयवेते, स्त्रीन के हृदय में ही शोभा देय है । कारण के स्त्रीनको हृदय सहज ही प्रभुभक्तिते रसार्द्र होय है याते स्त्रीनके हृदय में ही प्रभुपादाम्बुज प्रकट होय कर, प्रभु वियोग जनितापकूं हरण करै हैं । याते प्रभुपादाम्बुज स्त्रीनके हृदयमें ही शोभा देय है । प्रभुपादाम्बुज में जो ध्वजवज्राङ्कुशादि चिन्हन की शोभा है सो अन्यत्र प्रतिफलित नहीं होय हैं, वृन्दावन में ही प्रतिफलित होय है । याते ही वृन्दावन प्रभुपदाम्बुज रूप है । याते वृन्दावनमें ध्वजा वज्राङ्कुशादि विशिष्ट प्रभु चरणनके चिन्ह होयवेते वृन्दावन में लक्ष्मी की भी नित्यस्थिति रहै है । याते ही देवकीसुतके पादाब्ज चिन्हन करकैं प्राप्तकरी है लक्ष्मी जानें ऐसौ यह वृन्दावन है । अथवा—

" यद्यस्माद्भुवः सकात्पदाम्बुजैर्लब्धालक्ष्मीयेन "

भूमि के द्वारा प्रभु पादाम्बुज चिन्हन करकैं प्राप्त करी है लक्ष्मी जानें ऐसौ यह वृन्दावन है । यह वृन्दावन भूमि जब प्रभुचरण स्पर्शते सान्द्रा अनुरागवती होय है । तब ही भूमि में प्रभुचरणनके चिन्ह प्रकट होय हैं । याते वृन्दावन कूं लक्ष्मी की प्राप्ति भूमिके द्वारा होय है । याते वृन्दावन भूमिकी कीर्ति कौ विस्तार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करैं है। ऐसें वृन्दावन और वृन्दावन भूमि परस्पर में प्रत्युपकार कर हैं। और हमारी हृदय भूमि तौ सान्द्रा अनुरागार्द्रा नहीं है। यातें प्रभुके चरणचिन्ह प्रकट नहीं होय हैं। या प्रकार दैन्य बोधक भावते निर्गुणोक्ति भी सिद्ध भयी। भूमिमें प्रभु पादाम्बुज के चिन्ह होयवेतें, भूमिद्वारा उपकृत भयौ वृन्दावन, भूमिकी कीर्ति विस्तार करके भूमिको उपकार करें है। वृन्दावन की प्रतिष्ठा को निमित्त तौ पूर्वमें प्रभु पादाम्बुज कह्यौ ही है किन्तु यह भूमिकी कीर्ति विस्तार करनों भी एक निमित्त है। वृन्दावन कूँ केवल लक्ष्मी की ही प्राप्ति नहीं भयी किन्तु भक्ति और ज्ञान भी प्राप्त भये, यह कहैं हैं कै 'गोविन्द वेणुमनु' भगवान जब वेणुनाद करैं हैं तब नील मेघकी गर्जना सी श्रवण करकैं मत्त भये मोर नृत्य करें हैं। भगवान् के वेणुनाद किये पश्चात् ही देह विस्मरण पूर्वक मयूरनकौ नृत्य होय है। मानों समस्त वृन्दावन ही नृत्य कर रह्यौ है ऐसौ प्रतीत होय है। या प्रकार के मयूर नृत्यते वृन्दावन में भक्ति रसकौ आधिक्य कह्यौ मयूर नृत्यकी प्रशंसाते भक्तिरसके आधिक्य की प्रशंसा करी। गोविन्द प्रभु के वेणुनाद के अनुसार है मत्तमयूरनकौ नृत्य जामें ऐसौ वृन्दावन है। वन में मयूरनकी नित्य स्थिति होयवेते समस्त वृन्दावन मत्त मयूररूप है या मयूर जातिमें असाधारण भगवद्भक्ति धर्म के प्रवेश होयवेते भक्ति की उत्कटता कही वृन्दावन कूं ज्ञानकी प्राप्ति कहै हैं कै "प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरताः" मयूररूपधारी वृन्दावन के ऐसे सुन्दर नृत्य कूं देख करकैं पर्वत की शिखरन के ऊपर अवतरत मौन धरें बैठे हैं अन्य समस्त प्राणी जामें ऐसौ वृन्दावन है। यहां भगवद्भक्ति लक्षण रूप मयूर नृत्य कूं देख करकैं अन्य समस्त प्राणीन कूं भगवल्लीलास्वरूपकौ ज्ञान भयौ। यहाँ एक मयूर जाति मत्त है। अन्य समस्तजीव ज्ञानी हैं। यहाँ जातिको अपेक्षाते मयूरमें एकवचन है। अन्य समस्त नाना जातिके जीव ज्ञानी हैं। क्योंजी ज्ञानकौ फलतौ ऊर्ध्वगमन है। तब नीचे के विलन में रहवेवारे सर्पादिक जीव ज्ञानी कैसें हैसकें हैं। ऐसी शंका में कहै हैं कै 'अद्रिसानुषु' तहाँ तहाँ नीचे रहवे वारे जीवहू पर्वतको शिखरन के ऊपर मौन धारण करें बैठे वेणुनाद कौ श्रवण करें हैं और वृन्दावनस्थ मयूर नृत्य देखें हैं। याते सबके विषै दोष कौ अभाव कह्यौ। और अपने अपने नीचेके स्थाननको त्याग ते ऊर्ध्वगमन भी कथन भयौ ॥ १० ॥

या प्रकार 'अक्षण्वतां' या श्लोकते आदि लै करकैं 'वृन्दावनं' या श्लोकपर्यन्त चार श्लोकन में वेणुनादस्थित स्वरूप कौ वर्णन कियौ तहाँ सातमे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC-0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आठमें दो श्लोकन में द्विविध शृङ्गार रसात्मक स्वरूपकौ वर्णन कियौ। नवम श्लोकमें अधरसुधा भोग कौ वर्णन कियौ। दशम श्लोकमें प्रभुपादाम्बुजरूप वृन्दावन कौ वर्णन कियौ। ये चार श्लोक, प्रभुलीलास्वरूपके आधार पीठिका रूप हैं। 'बर्हापीडं' या श्लोक में कह्यौ जो वेणुनाद स्थित भगवत् लीला स्वरूप है सो व्रजगोपीन नें वेणुनाद ते पृथक् तौ स्वरूप कौ अनुभव कियौ ही नहीं याते तो वेणुनाद स्थित लीलास्वरूप कौ चार श्लोकन में वर्णन करकें, अब व्रजगोपी "धन्यास्तुमूढमतयोपि" इत्यादि छौ श्लोकनमें भगवान् के ऐश्वर्यादि षट् धर्मयुक्त वेणुनाद कौ वर्णन करैहै। तहाँ प्रथम श्रीवल्लभाचार्यजी छौ श्लोकन कौ तात्पर्यार्थ साढे आठ कारिकान में कहे हैं।

हरिण्यो प्सरसो गावः पक्षिणो नद्य एव च मेघाश्चेति क्रमेणैव कृष्णैश्वर्यादि बोधकाः ॥१॥ ईश्वरः पूज्यते लोके मूढैरपि यदा तदा निरुपाधिकमैश्वर्यं वर्णयन्ति मनीषिणः ॥ २ ॥ वीर्यं देवेषु तत्रापि स्त्रीषु तत्रापि कामतः सान्निध्ये पुरुषाणां च मूर्च्छा तेन ततो महत् ॥ ३ ॥ यशो यदि विमूढानां प्रत्यक्षासक्तिवारणात्। स्वधर्मबीजयेचे पु तदा भवति नान्यथा ॥४॥ तामसा राजसा श्चान्ये गुणातीताश्च रूप्यते वृन्दावनं गुणातीतं मुनयश्चापि पक्षिणः ॥५॥ गोवर्द्धनश्च त्रितयं गुणातीतमिह स्थितम्। तद्गताश्चापि लोके ऽस्मिन्गुणातीता भवन्ति हि ॥६॥" यदाखलु वै पुरुषःश्रियमश्नुते वीणास्मै वाद्यते" इति श्रुति न्यायेन सर्वे एव विहगा भगवदीया अपि परमां श्रियं प्राप्नुवन्ति" श्रियो हि परमा काष्ठा सेवकास्तादृशा यदि ज्ञानोत्कर्ष स्तदैव-स्यात् स्वभाव विजयो यदि ॥७॥ हरेश्चरणयोः प्रीतिः स्वसर्वस्वनिवेदनात् उत्कर्षश्चापि वैराग्ये हरेरपि हरिर्यदा ॥८॥भक्त्या च तादृशत्वं च सा सेवा सेवकोचिता ॥ ८½ ॥

हरिणी, अप्सरा, गाय, पक्षी नदी, मेघ ये छैहू क्रमते श्रीकृष्ण के ऐश्वर्यादि षट् धर्मनके बोधक हैं। हरिणी ऐश्वर्य की बोधक हैं। अप्सरा वीर्य की बोधक हैं। गाय, यशकी बोधक हैं। पक्षी श्री के बोधक हैं। नदी ज्ञानकी बोधक हैं। मेघ

हरिणी = ऐश्वर्य   पक्षी = श्री
अप्सरा = वीर्य   नदी = ज्ञान
गाय = यश   मेघ = वैराग्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैराग्य को बोधक है। या प्रकार ये सब क्रम ते भगवान् के ऐश्वर्यादि षट् धर्मन के बोधक हैं। प्रथम हरिणीनके द्वारा प्रभु के ऐश्वर्य धर्म कूं कहे हैं कै 'ईश्वरः' लोक में ऐश्वर्यवान ही पूजनीय होय है। यदि यासमय पुरुषोत्तमप्रभुमें कोई ऐश्वर्य सामग्री प्रकट नहीं है, तथापि हरिणी सदृश मूढ पशुभी ताकी पूजन करें, तबतौ ताके ऐश्वर्य कूं बुद्धिवानपुरुष निरुपाधिक ऐश्वर्य कहै हैं प्रभु तौ अनीश्वरजीवमें अपने ऐश्वर्य धर्म कूं प्रवेश करकैं आप अपने स्वरूप में ईश्वरत्व सामग्री कूं प्रकट न करकै भी, जब हरिणी सदृश मूढ पशून करकै पूजे जाँय हैं तब तौ प्रभु में निरुपाधिक ऐश्वर्य सिद्ध होय है। कारण कै प्रभुके ऐश्वर्य सामग्री रहित समय में कोई भगवत्स्वरूप ज्ञानी प्रभु कूं पूजे तौ भलै ही पूजै किन्तु मूढ पशुकृता पूजातौ प्रभु में परमेश्वर्य कूं ही बोध करावै है। यह स्वनिष्ठ ऐश्वर्य, हरिणीन कूं भगवान् नें ही बोध करायौ है। यहाँ भगदत्स्वरूप स्थित कारण रूपैश्वर्य हरिणीन में कार्य रूपते प्राप्त भयौ है। याते कार्यरूप ऐश्वर्यते प्रभुमें कारण रूप ऐश्वर्य कौ बोध होय है ॥ २ ॥ 'कृष्णांनिरीक्ष्य' या श्लोक में वीर्य वर्णन है 'वीर्यदेवेषु' मनुष्य ते अधिक वीर्य देवता में होय है। कारण कै 'दिवु' धातु ते देवपद सिद्ध होय है। याते देवता क्रीडा परायण जयशील व्यवहारकुशल द्युतिमान् ज्ञानवान् स्तुति करवे योग्यादि अनेक गुण युक्त होंय हैं। याते ही ये विबुध कहे जाँय हैं। और बालकुमार युवा इनकी तीन अवस्था होयवेते त्रिदश कहे जाँय है। वृद्धावस्था रहित होयवेते निर्जर कहे जाँय हैं। याते देवतान में वीर्य अधिक होय है। तामें भी देवतान ते अधिक वीर्य देवस्त्रीन में होय है। कारण कै—

" अप्सु निर्मथनाज्जाता स्तस्मा दप्सरसोऽभवन् "

ये अप्सरा समुद्र मथन करवेते जलमें ते उत्पन्न भयी हैं। याते ये अप्सरा तौ अमृतशरीरिणी है, सदा षोडशवार्षिकी हैं। सदैव कामरसवती हैं, कामकेलि चतुरा हैं याते देवतानते अधिक वीर्य देवस्त्रीनमें होय है। तामें भी अपने पुरुषन के समीप होते भी, श्रीकृष्ण के दर्शन करकैं देवाङ्गनान कूं जो कामभावते मूर्च्छा भयी, याते भगवान में महत्वीर्य है। कारण कै अप्सरा देवी हैं। भगवान् मनुष्य सदृश दीखै हैं याते प्रभु के विषें अप्सरान कैं काम भाव कौ उदय होनों संभव नहीं है। यातेकै देवाङ्गनानक वांच्छित रस मनुष्य में नहीं होय है। और अप्सरान कूं कोई अलौकिक प्रभाव भी भगवान् नें नहीं दिखायौ है। किन्तु भगवान के वेणुनाद कूं श्रवण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करकैं अपने पतिनके सहित विमाननमें बैठकै आईं देवांगना प्रभु के वनितोत्सव चारु वेष कौ दर्शन करकैं साधारण स्त्रीन की भाँति देवस्त्रीनकूं जो मोह भयो, याते प्रभुमें महद्वीर्य है ॥ ३॥ 'गावश्च' या श्लोक में प्रभु कौ यशोवर्णन है। यहाँ यह भाव है कै हरिणीनने विशेष मूढमति गायन की प्रत्यक्ष में वर्तमान जो तृणादिक हैं तिनमें ते आसक्ति कौ निवारण करकैं प्रभु नें गायन में अपनों स्वरूप सौन्दर्यामृतरूप धर्म स्थापन किया याते भगवान् कौ यश प्रकट भयो। अन्यथा मर्यादामार्गीय प्रत्युपकार रूप यश यहाँ उपयोगि नहीं हो, याते निरुसाधन गौऊनके अन्तःकरण में प्रभुस्वरूपानन्द पीयूषदान के बिना प्रभु के महत् यश की प्रतीति कैसें होती। याते गायन में स्वरूपानन्द पीयूष युक्त कियौ, याते ही प्रभु कौ नाम गोविन्द है॥ ४॥ 'प्रायोवनाम्ब' या श्लोक में श्री कौ वर्णन है। या लीला सृष्टि लोक में लक्ष्मी ते ही सबकी प्रशंसा है। समस्त भोगन की परमावधि लक्ष्मी है, श्री के प्रवेशते ही सब सेवक भोग भोगै हैं। यदि प्रभु के सेवक परम भोग भोगै तबही स्वामी कौ परम सौभाग्य प्रकट होय है। यह लोक में भी प्रसिद्धि है। सो प्रभुके सब भगवदीय पक्षी भी वेणुनाअमृत कौ भोग करै हैं। तामें भी प्रभु नीचैं ठाडे वेणु बजाय रहे हैं। और पक्षी सब द्रुम शाखानके ऊपर बैठे नाद अमृत कौ पान कर रहे हैं। याते पक्षीनकूँ लक्ष्मी कौ भोग सिद्ध है यही श्रुति कहै है कै

"यदा खलु वै पुरुषःश्रियमश्नुते वीणास्मै वाद्यते"

जब प्रभु लक्ष्मी कूं भोगैं हैं, तब प्रभु के प्रसन्न करवे के अर्थ वीणा बजै है। यहाँ वीणा पद वेणुनादादि मधुर शब्दन कौ उपलक्षक है। याते सब ही वीणादि मधुर शब्द जानने, या श्रुतिन्यायते पक्षीन कूं श्री कौ भोग सिद्ध है। यहाँ प्रभु स्वरूपस्थिता श्री, पक्षीन में कार्य रूपते प्राप्त भयी है। याते कार्य रूपा श्रीते, कारणरूपा भगवत् श्री कौ बोध भयौ। 'नद्यस्तदा' या श्लोक में ज्ञान वर्णन है। ज्ञान कौ उत्कर्ष जब ही जान्यो जाय है जब स्वभाव कौ विजय है जाय, याते सर्वदा प्रवाह वेगवती नदीन के वेग भङ्ग होयवेते स्वभाव विजय लक्षण ज्ञान नदीन में प्रकट है। जब प्रभु सेवकननमें ही ऐसौ ज्ञान है तब भगवान् के ज्ञानोत्कर्ष कौ तौ कहनों ही कहा है। 'दृष्ट्वातपे' या श्लोक में वैराग्य कौ निरूपण है। 'हरेश्चरणयो प्रीतिः' अपनों सर्वस्व निवेदन पूर्वक हरिके चरणारविन्द में प्रीति होंनों ही वैराग्य है। कारणकै जब सर्व पदार्थनमें विराग होय है। तबही हरि चरणार-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विन्द में प्रीति होय है किन्तु सर्व पदार्थ त्यागपूर्वक हरि चरणन में प्रीति होते भी, यदि सर्व दुःखहर्ता हरिके ही दुःख को हर्ता सेवक होय, तब ही वैराग्य में उत्कर्ष जाननों अर्थात् स्वसुखेच्छात्याग पूर्वक सेवक के चित्तमें एक प्रभु के सुखकी ही आकांक्षा रही आवै ऐसे भावक उदय हायवेत ही सेवक हरि के दुःखको हर्ता ह सकै हैं। तबही वैराग्यमें उत्कर्ष जाननों। क्योंजी ऐसौ भाव प्रभुमें कैसें होंय ऐसी आकांक्षामें कहे हैं कै "भक्ताच तादृशत्वं" स्नेह भक्ति ते ही भगवद्दुःख हर्ताभाव, सेवक के उदय होय है। ऐसें वैराग्यस्वरूपको और वैराग्यसिद्धिको निरूपण करकें, उपदेश करे हैं कै "सा सेवा" जैसें मेघनें स्नेह के वशीभूत होयकर, प्रेरणा विनाही आतपनिवारणरूपा सेवा भगवान् की करी है तैसैही शास्त्रकी प्रेरणा के विना ही देशकालानुरूपा भगवत्सुखसंपादिका सेवा, पुष्टिमार्गीय भक्तन कूं कर्तव्य है। यह सेवा सख्य भक्तिरूपा है। या प्रकार भगवद्धर्म वैराग्यभी मेघमें कार्यरूपते प्राप्त भयौ है सो भगवत अधिकरणक कारण रूप वैराग्य कौ बोधक है। जब प्रभुके सेवक मेघमें ही ऐसौ वैराग्य है तब भक्त ते अतिरिक्त प्रभुके वैराग्य कौ तौ कहनों ही कहा है ॥ ८३ ॥

अब वर्णनीय भक्त चरित्रन के और वर्णनकर्त्री गोपीन के सगुण निर्गुण भेदन कूं कहे हैं कै—

"तामसा राजसाश्चान्ये गुणातीताश्च रूप्यते।"

"अक्षण्वतां" या श्लोकते प्रारम्भ करकें श्लोकत्रय में क्रमते वर्णनीय हरिभक्तन के चरित्र, और वर्णन करवेवारी गोपी, तामसी, राजसी, और सात्विकी हैं। और "वृन्दावनं" या श्लोक में गुणातीत वृन्दावन को वर्णन है। याते वृन्दावनवर्णनकर्त्री गोपी भी निर्गुणा हैं। "धन्यास्तुमूढमतयो" याते प्रारम्भ करकें श्लोकत्रय में क्रमते हरिणी आदि भक्तनके चरित्र तामस, राजस, सात्विक गुण युक्त हैं याते वर्णनकर्त्री गोपी भी सगुणा हैं। "प्रायोबताम्ब" या श्लोक में पक्षिरूप मुनीश्वर गुणातीत हैं। वर्णनकर्त्री गोपी भी निर्गुणा हैं। "नद्यस्तदा" या श्लोक ते प्रारंभ करकें श्लोकत्रय में तामस, राजस, सात्विक हरिभक्तन को क्रमते वर्णन है। याते वर्णनकर्त्री गोपी भी सगुणा हैं। और "हन्तायमद्रि" या श्लोक में गुणातीत गोवर्द्धन को वर्णन है। यहाँ वर्णनकर्त्री गोपी भी निर्गुणा हैं। या प्रकार वृन्दावन और पक्षिरूप मुनि,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और गोवर्द्धन ये तीनों गुणातीत हैं। ऐसैं वर्णनीय भक्त चरित्र भेदन कूं कह करकैं, वर्णनकर्ती गोपीन के भेदन कूं कहै हैं। कै "तद्रताश्चापि" या लीलासृष्टि लोक में जे जा भक्त चरित्र में रत हैं प्रीतिवान् हैं सो तद्रूप हैं याते जे गोपी गुणातीत वृन्दावनादिक में रत हैं ते गोपी गुणातीता हैं। और जे गोपी सगुण चरित्रन में रत हैं ते गोपी सगुणा हैं। किन्तु प्रभुमें प्रभुके गुणन में आसक्ति होयवेते, वृन्दावन में, पक्षिरूप मुनीन में, गोवर्द्धन में, प्रीति होयवेते, या लीलासृष्टि स्थिता सबही गोपी गुणातीता हैं ॥५।६॥

"वृन्दावनं गुणातीतं" या कारिका के ऊपर श्री हरिरायजी कृत स्वतन्त्र लेखको अनुवाद है क्योंजी पक्षिरूप मुनीन के मननशील होयवेते ये सात्विकी हैं तब इन पक्षीनकूं निर्गुण कहनों कैसैं बन सकै है। ऐसी शंका में इन पक्षीन कूँ निर्गुण कहवे में प्रकार कहै हैं "वृन्दावनं गुणातीतं" वृन्दावन आधिदैविक रूप भगवत्चरणारविन्दरूप है याते गुणातीत हैं। ऐसैंही गोवर्द्धन गुणातीत है। ये पक्षिरूप मुनी वृन्दावन में रत हैं याते गुणातीत हैं। कारण कै "योयच्छ्रद्धस एवसः" जाकी जामें श्रद्धा होय है सोभी तद्रूप है। याते पक्षीन के वृन्दावन में रत होयवे ते पक्षी भी गुणातीत हैं। क्योंजी ऐसैं तौ पुलिंदी हू गोवर्द्धन में रत हैं तबतौ पुलिन्दीन कूं भी गुणातीता कहनों चहियै। यदि यह कहौ तौ यह कहनों ठीक नहीं है॥ कारण कै "तद्दर्शनस्मररुजः" या वाक्यते पुलिन्दीन में भगवद्दर्शन जनित कामरोग विद्यमान है। या कथन ते पुलिन्दीन में राजसभाव स्पष्ट है। याते पुलिन्दी तौ राजस भाववती हैं। क्योंजी तबतौ पक्षीन में मौनादि के कथन ते मननशील होयवे ते सात्विक भाव स्पष्ट ही है। यदि यह कहौ सो यह कथन भी ठीक नहीं है। कारण कै सत्वगुण के ज्ञानजनक होयवेते, पक्षीन में ज्ञानकौ अभाव है याते पक्षीन में मौन भाव के कहवेते सात्विकभाव नहीं है। यातेही पक्षीन कूँ अन्य वस्तु कौ ज्ञानही नहीं है। केवल गिरने की शंका ते द्रुम डारीन के ऊपर बैठे हैं। और ज्ञानजनक नेत्रन कौ निमीलन भी कह्यौ है। और अन्य वार्ताते वाणीकौ विराम भी कह्यौ है। यद्यपि अन्यत्र वन स्थान में सात्विकी भावते कहे भी मुनी या वृन्दावन में तौ पक्षिरूप मुनीश्वर गुणातीत ही मानने चहियैं। क्योंजी वृन्दावन कं भी तौ "वनचरः" या श्लोक में सत्वभूमि ही कह्यौ है, तब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहाँ ही वृन्दावन कूं गुणातीत कैसें कह्यौ । यदि यह कहौ सो सत्य है किन्तु वृन्दावन की प्रशंसा में वृन्दावन कूं सात्विक भावापन्न कहवे के अर्थ, भूमि कूँ ही सात्विकी भूमि कह्यौ है । याते कै भगवान् में भी ता समय सात्विक भाव के उदय होयवे ते सत्वगुण के संबन्धते भूमिकौ ही सात्विक भाव कह्यौ है। वृन्दावनकौ वास्तव रूपतौ गुणातीत ही है । वृन्दावन के और लीला सृष्टिस्थ सब भक्तन के गुणातीतत्व में भी ऐसौ विवेक गुणकृत जाननों ।। जैसें "अक्षण्वतां" या श्लोक में गोपीन की भगवत्स्वरूप में आसक्ति सर्वेन्द्रिय भोग रूपते है । यह तामसभाव ते वर्णन है । कारण कै तामसी जीवकी आसक्ति आग्रहपूर्वक जा वस्तु में होय है ता वस्तु में ते कदापि हटाये ते भ[redacted] हटै है । लोक वेद मर्यादाकौ उल्लंघन करकैं लौकिक दुःख सुखन कूँ भोगतौ अपने ही अभीष्ट विषय की चिन्ता करतौ रहै है । ऐसें ही इन गोपीन के तौ एक रसात्मक प्रभु ही सर्वेन्द्रिय भोग्य विषय हैं । ये गोपी, लोक वेद मर्यादा कूं तथा लौकिक दुःख सुखन कूं कैसें जान सकै हैं। इनकूं देहेन्द्रियादि को भान नहीं हैं । ये तौ भगवद्रूपत्व कूं प्राप्त हैं, याते संयोग वियोग रूपते प्रभु गोपीन के हृदय में अहर्निश क्रीड़ा करै हैं । यहाँ तामस प्रकरण के होयवेते ही व्रज गोपीनने प्रथम या श्लोक में तामस भावकौ वर्णन कियौ है । यहाँ तामसधर्म की समानता ते ही तामस भाव है । वास्तवमें तौ पुष्टिलीलासृष्टिस्था सबगोपी निर्गुणा हैं । और 'चूतप्रवाल' या श्लोक में नाट्य कौ वर्णन है । याते राजसत्व है । यह यूथराजसी गोपीन कौ है । 'गोप्यःकिमाचरदयं' या श्लोक में वेणुनाद स्वरूप कौ वर्णन है । याते वेणुनादस्थितरूप कौ यथार्थ ज्ञान होनों, सत्वगुण कौ लक्षण है कारण कै 'सत्वात्संजायतेज्ञानं' सत्वगुण के आधिक्य में ज्ञान होय है । याते या भाव की वर्णनकर्त्री गोपीन कौ यूथ सात्विकभावयुक्त है । 'वृन्दावनं' या श्लोक में वृन्दावन कौ प्रभुपादाम्बुज रूप आधिदैविक स्पष्ट ही है । याते यह वर्णनकर्त्री गोपीन कौ यूथ गुणातीत है । ऐसें ही 'धन्यास्तु' या श्लोक में हरिणीन कूँ मुख्यसजातीयास्त्रीन के भाववती होयवे ते तामसी कह्यौ है । अप्सरा कामवती होयवे ते राजसी हैं । गायन कूं गोविन्द प्रभु कौ यथार्थ ज्ञान, दर्शन स्पर्श होयवे ते, गाय सात्विकी हैं, पक्षिरूप मुनि गुणातीत हैं । नदी मनोभव करकै भग्न वेगते राजसी हैं । मेघ भगवत्सतीय सख्य भाव ते भगवान् के अर्थ सर्वस्व परित्याग ते तामसी है । पुलिन्दी कामभाव ते राजसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। गोवर्द्धन गुणातीत है। या प्रकार तत्तत्गुण के प्राधान्यते वर्णनकर्त्री गोपी भी तत्तद्भावती हैं ऐसें यह गुणकृत भेद जाननों। वास्तव में तौ पुष्टि सृष्टिस्थिता सब गोपी निर्गुणा हैं॥ ५। ६॥

'धन्यास्तु मूढमतयोपि हरिण्य एता या नन्दनन्दन मुपात्तविचित्रवेशम्
आकर्ण्य वेणुरणितं सह कृष्णसाराः पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः॥११॥'

अरी! ये हरिणी, मूढमति होते भी बड़ी धन्य हैं। ये हरिणी प्रभु वेणुरणित कूँ श्रवण करकैं अपने कृष्णसारपतीन के सहित श्रीनन्दनन्दन के समीप में प्राप्त भयी हैं, हरिणीन के समीप में ग्रहण कियौ है विचित्र वेष जानें, ऐसे श्रीकृष्ण के दर्शन करकैं, प्रेमपूर्वक अवलोकन करकैं रचना करी नेत्र कमलन की पूजा कूं श्रीकृष्ण के अर्थ अर्पण करै हैं। और प्रभु के प्रेम सहित अवलोकननते, आप प्रतिपूजिता होंय हैं याते ये हरिणी बड़ी धन्य हैं॥ ११॥

व्याख्या अरी ये हरिणी मूढ़मति होते भी अमूढ़मति हैं बड़ी बुद्धिवती हैं कारण कै 'ईश्वरः पूज्य' या लोक में ऐश्वर्यवान् पुरुष ही पूज्य होय हैं। किन्तु या समय प्रभु तौ महाराजाधिराज पद बीते रहित हैं और ऐश्वर्यबोधक वेष भूषणादि ते भी रहित हैं। किन्तु साधारण मनुष्य वेष में पीतपट मोरमुकुट वेणुलकुट लियैं नटवर वेष में स्थित हैं। ऐसे स्वरूप कूँ कोई भगवत्स्वरूपज्ञानी भक्त पूजै तौ भलै ही पूजै, यामें तौ कोई आश्चर्य नहीं है। किन्तु जब मूढ़मति हरिणी भी भगवान् की पूजा करै हैं, तब यह मूढ़मतिवारी हरिणीन नें करी पूजा तौ प्रभु के परमैश्वर्य कौ ही बोध करावै है। मूढ़मति हरिणीन की ऐसी बुद्धि कैसैं भयी? याते व्रजगोपी, प्रथम हरिणीन के भाग्य की प्रशंसा करै हैं कै 'धन्यास्तु' ये हरिणी बड़ी धन्य हैं। क्योंरी! इन हरिणीन कूं भगवत्स्वरूप ज्ञान तो है ही नहीं, तब केवल भगवान् के अवलोकन मात्र पूजा ते हरिणी कैसैं धन्यता के योग्य भयीं। ऐसी शङ्का में श्रीवल्लभाचार्यजी कहै हैं कै 'ज्ञानं हि क्रियाविशेषणी भूतम्' केवल ज्ञानमात्र ही धन्यता कौ साधक नहीं है, किन्तु भगवन्निमित्त करी पूजन क्रिया ही धन्यता की साधिका है यदि भगवत्पूजन क्रिया ज्ञानसहित करी जाय, तब तौ अत्यन्त ही धन्यता की साधिका है। याते भगवत्पूजा में भगवत्पूजा कौ जो ज्ञान है सो प्रभु पूजन क्रिया कौ विशेषण है। यदि पूज्यकी और अपनी योग्यता जान करकैं पूजा करी जाय, तब ही ज्ञान की सार्थकता है। याते यहाँ ज्ञान है सो पूजन क्रिया की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेषण है। और क्रियान में भी प्रभुपूजन क्रिया ही सर्वोत्तमा है। क्रिया की प्रशंसा प्रभुपूजा में ही है, क्यों कै 'तत्कर्म हरितोषं यत्' सोही कर्मप्रशंसनीय है, जाते हरि सन्तुष्ट होंय। ऐसी पूजा हरिणीन नें करी है। तामें भी ज्ञानमय द्रव्य, नेत्रकमलन करकैं प्रभु पूजा करी है। याते हरिणी अति धन्य हैं। याकौ यह अर्थ है कै निवेदनीय पदार्थन के स्वरूप कूं जान करकैं तिन कूं देशकालानुरूप भगवत्प्रियकारक जान करकैं प्रभु के अर्पण करै। तब ते निवेदनीय पदार्थ ज्ञानमय कहे जाँय हैं। ऐसैं ही इन हरिणीन नें अपने नेत्रन कौ सौन्दर्य भगवत्प्रियान के नेत्रन कौ स्मरण करायवे वारौ जान करकैं, प्रभु कौ प्रियकारक जान करकैं, अपने नेत्रकमलन करकैं प्रभुपूजन कियौ है याते हरिणी धन्यता के योग्य हैं। जैसे देश में जैसे काल में प्रभु कूं जा वस्तु की अपेक्षा है। तैसौ ही देशकालानुरूप प्रभुसेवन हमकूं कर्त्तव्य है। ऐसें देशकाल के आग्रह ते या समय प्रभु कूँ स्वप्रियान के नेत्रन कौ स्मरण करनों अपेक्षित है। प्रभु कौ ऐसौ ज्ञान हरिणीन कूं है। और हमारे दैहिक पदार्थन में हमारे नेत्र हो सुन्दर हैं, प्रभुसेवा के उपयोगि हैं। याते ये नेत्रकमल ही प्रभु के अर्थ निवेदन करवे योग्य हैं। ऐसें अपनों ज्ञान भी हरिणीन कूं है याते हरिणीन नें शृङ्काररसात्मक प्रभु के अर्थ अपने नेत्रन कौ सौन्दर्य दर्शन कराय कैं प्रभुप्रियान के नेत्रन कौ स्मरण कराय करकैं, प्रभु कौ प्रियसम्पादन कियौ। या प्रकार पुष्टिमार्गीय जीवन कूं भी यथोचित प्रभु कौ प्रियसंपादन कर्तव्य है। ऐसी शिक्षा भी या ग्रन्थ कौ हृदयाशय है। प्रभु पूजा क्रिया के उत्कर्ष में भगवत्स्वरूप ज्ञान और स्वस्वरूपज्ञान और निवेदनीय पदार्थ ज्ञान कौ होंनों, ये पूजा के अङ्ग हैं। किन्तु अङ्गीभूता क्रिया के विना तौ ज्ञानादिक सब व्यर्थ हैं। यदि अन्यत्र कोई में भी प्रभुपूजन क्रिया में प्रभुज्ञान और स्वस्वरूपज्ञान होय तौ यही उत्तम है। पूजनक्रिया रहित ज्ञान तौ व्यर्थ है। या पूर्वपक्ष कौ आश्रय लै करकैं, पूर्वपक्ष कौ निवारण करती गोपी कहै हैं कै 'धन्यास्तु' इन हरिणीन की ज्ञानसहित पूजनक्रिया है। याते ये हरिणीं अति धन्य हैं, हम कूं भगवत् ज्ञान तौ है किन्तु भगवद्वियोगावस्था में हम कूं भगवत्पूजन सेवनक्रिया नहीं है। याते हम धन्यता के योग्य नहीं हैं। और 'धन्यास्तु' या पद में जो तु शब्द है या तु शब्द ते, व्रजगोपी अपनी निवृत्ति में, हेतु कहै हैं कै प्रथम पूजनकर्ता कूं पूज्य कौ और स्वस्वरूप कौ ज्ञान होंनों चहियै, तदनन्तर पूजा करवे की इच्छा होंनी, तदनन्तर पूजा करनी चहियै। या क्रम ते जो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानस ज्ञान है। सो पूजनक्रिया कौ विशेषण है। कारण कै 'आकर्ण्य' या क्रियापद में ल्यप् के प्रयोग ते यह अर्थ भयौ। कै वेणुनादस्थित प्रभुस्वरूप कूं श्रवण करकैं ही, हरिणी, प्रणयावलोकन द्वारा प्रभुपूजा करवे कूं हरिणी प्रभु के समीप आई—याते प्रभु नें अपनों स्वरूपज्ञान तौ हरिणीन कूं पहले ही कराय दियौ। पश्चात् हरिणीन के प्रभु समीपागमन में, जैसौ स्वरूप वेणुरणित में हरिणीन अनुभव करायो हो तैसौ विचित्र वेष पीछें धारण कियौ है। यह भी हरिणीन की धन्यता में महत्कारण है। याते श्रोत्रेन्द्रिय कौ विषय श्रवण ज्ञान कूँ पूजनक्रिया कौ विशेषण होयवे ते श्रवण ज्ञान कूं गौण कह्यौ। और 'पूजा' पद ते, उत्तमाक्रिया ही मुख्य कही। और 'प्रणयावलोक' पद ते ज्ञानमय द्रव्य, नेत्र कहे। और अवलोकन व्यापार ते, अवलोकन करवेवारी हरिणी कहीं। अवलोकन तौ नेत्रन ते होय है, याते नेत्रकरण कहे। या प्रकार हरिणीन नें प्रभु कूँ प्रणयपूर्वक अवलोकन करकैं नेत्रकमलन ते रचना करी पूजा, भगवत् अर्पण करी। याते हरिणीन कूं भगवत् ज्ञान है। और भगवान् नें अतिस्नेह ते हरिणीकृता उत्तमा पूजा कूँ स्वीकार करकैं प्रभुनैं हरिणीन कूं भी प्रणयपूर्वक अवलोकन करकैं रचना करी पूजा कूं हरिणीन नें 'आत्मनि' अपने विषें धारण करी। याते हरिणीकृता उत्तमापूजा कौ भगवान् कूं ज्ञान है। याते हरिणी ही धन्यता के योग्य हैं। याते हरिणीन कौ इन्द्रिय व्यापार ज्ञानमय कह्यौ। यदि हरिणीन कौ सौ पूजन क्रिया व्यापार अन्यत्र भी कोई में होयतौ, सो उत्तम है। हम गोपी उत्तमा नहीं हैं। अथवा गोपी तौ सुधाभोगिनी हैं। याते उत्तमा हैं। या पूर्व पक्ष कौ निवारण "तु" शब्दते करती गोपी कहै हैं। कै हरिणीन ते अतिरिक्त अन्य कोई जीव, ज्ञानमय द्रव्यते भगवत्पूजा करें सोही उत्तम है। किन्तु या समय भगवत्सेवारहिता हम उत्तमा नहीं है। अथवा भगवत् स्वरूप सर्व श्रुति प्रति पाद्य है यह ज्ञान हरिणीनकूं नहीं हैं याकू हम दोष रूप नहीं मानें हैं। दोषरूप कैसै नहीं हैं, या शंका कौ निवारण करती गोपी कहै है कै 'मूढमतयोपि' यद्यपि शास्त्रोक्त मर्यादारीतिते पूजा मार्ग में हरिणी मूढमति हैं किन्तु पुष्टि भक्ति मार्ग में तौ हरिणी शुद्धिमति बती हैं। कारण कै स्नेहावलोकन करकैं नेत्र कमल ते रचना करी पूजा कूं प्रभु के अर्थ अर्पण करै हैं। और भगवत्कृत प्रणय सहित अवलोकन पूजा कूं अपने विषें धारणकरकैं स्वयं प्रति पूजिता होंय हैं। ऐसें प्रभु कौ और हरिणीन कौ परस्पर में प्रति पूजन है। याते हरिणी धन्य है। या समय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम ऐसी भाग्यवती नहीं हैं यह 'अपि' शब्द ते सूचित कियौ। या प्रकरण में स्त्रीन की ही प्रशंसा है। याते यहाँ हरिणन की स्त्री हरिणी ही कही हैं। ये हरिणी हरिणन के सहित हैं। याते कहै हैं कै 'सहकृष्णसाराः' ये हरिणी हरिणन की नायिका स्त्री नहीं हैं। किन्तु 'कृष्णएवसारोयेषां ते' ये वृन्दावन के हरिण, भगवान् के वेणुनाद कूँ श्रवण करकैं नित्य ही भगवद्दर्शन करवे आमें हैं। श्रीकृष्ण ही हैं एक सारवस्तु जिनकैं ये ऐसे हरिण हैं। ये हरिणी ऐसे कृष्णभक्त हरिणन के संबंधयुक्त हैं। कारण कै यहाँ गोचरित्र निरूपण पर्यन्त तीन श्लोकन में अन्यपूर्वा गोपीकृत वर्णन हैं। याते यहाँ हरिणी भी कृष्णसार सहित कहीं। या समय गोपी अपनी अकृतार्थता की भावना ते दैन्यभाव कूँ प्राप्त हैं, याते या दैन्यभाव के प्रकट होयवे ते, प्रभु गोपीन के ऊपर कृपा करकैं, वर्णन करी समस्त लीला सामग्री सहित, गोपीन के हृदय में प्रत्यक्ष प्रकट हैं। या जतायवे के लियें ही गोपी अंगुली ते निर्देश करती कहै हैं कै 'एताः' ये हरिणी अति धन्य हैं। याते हरिणीन के भाग्य में कारण कहैं हैं कै 'याः' इन हरिणीन की प्रशंसा, पूर्व के बारहमे अध्याय में श्रीबल्देवजी के प्रति भगवान् ने करी है कै—

"नृत्यन्त्यमी शिखिन ईड्य मुदा हरिण्यः
कुर्वन्ति गोप्य इव तेप्रियमीक्षणेन ॥"

हे ईडय स्तुति करवे योग्य तात! ये मयूर आनन्दमग्न भये कैसे नृत्य करै हैं। ये हरिणी आमोद भरीं गोपिकान की भांति आपकूं प्रेमपूर्वक अवलोकन करकैं आपकूं प्रसन्न करै हैं। ऐसैं इन हरिणीन की प्रशंसा, प्रभु नें पूर्व में करी है। ये हरिणी नन्दनन्दन श्रीकृष्ण के दर्शन करकैं और वेणुरणित कूं श्रवण करकैं प्रभु के समीप में प्राप्त भयी, प्रथम स्वकृत प्रणयावलोकन करकैं रचना करी पूजा कूं भगवान् के विषें धारण करै हैं। और भगवत्कृत प्रणयावलोकन रचित पूजा कूं अपने विषैं धारण करै हैं। याते ये हरिणी अति धन्य हैं। क्यों जी व्याख्या में 'नन्दनन्दनं निरीक्ष्य' ऐसैं निरीक्ष्य पद कह्यौ है किन्तु मूल में 'निरीक्ष्य' पद नहीं है। याते 'वेणुरणितमाकर्ण्य' याते वेणुनाद कूं श्रवण करकैं हरिणीन नें वेणुनादस्थित स्वरूप कौ ही प्रथम दर्शन कियौ है। याते 'आकर्ण्य' पद में ही 'निरीक्ष्य' पद कौ तात्पर्यार्थ कह्यौ है। भगवान्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तौ नन्दनन्दन हैं । श्रीनन्दराय जी कूं भी ब्रह्मानन्द ते अधिक मोक्षानन्द के दाता हैं याते नन्दनन्दन हैं । या समय प्रभुब्रह्मा के वाक्य ते भक्त उद्धारार्थ प्रकट भये हैं । याते उद्धार कौ प्रकरण (देशकाल) होयवे ते, हरिणीन कौ भी उद्धार करेंगे । याते ही 'उपात्तविचित्रवेषं, 'उपात्तः स्वीकृतो विचित्रो वपोयेन्' प्रभु नें मृगीन के उद्धार करवे के अर्थ ही, मृगीन के समीप में विचित्र वेष धारण कियौ है । याते मृगीन कौ उद्धार करेंगे । या विचित्र वेष के कथन ते प्रभु वेष कौ नृत्यसमय कौ सूचित कियौ । याते प्रभु रसाभिनय करवे के अर्थ प्रवृत्त भये कहे । नन्दनन्दनपद ते भगवान् स्वरूप ते उद्धारानुरूप रसकार्यकर्ता कहे । और विचित्रवेष के कथन ते, साधन ते उद्धारानुरूप फलोन्मुख कार्यकर्ता कहे । और विचित्र नटवरवेष कौ धारण करनों नवरसन की प्राप्ति के अर्थ है । हरिणीन के समीप में वेष कौ स्वीकार करनों हरिणीन के विषें ब्रह्मानन्द प्रवेश के अर्थ है । वेष धारण करते समय, आवरण रहित स्वरूप के दर्शन करवे ते ब्रह्मानन्द कौ प्रवेश होय है । याते अति अनुग्रहीत के समक्ष में ही प्रभु के शृङ्गारादि करने, यह पुष्टिमार्ग की मर्यादा है वेश धारण करते समय में प्रभु के सर्वाङ्ग मृगीन कूं दृष्टिगोचर भये, याते मृगीन कैं ब्रह्मानन्दभावोत्पन्न भयौ, या भाव के उत्पन्न होयवे ते कामरस सम्बन्धिनी भगवान् में प्रीति होयगी । तदनुसार ही भगवत्प्राप्ति होयगी । अर्थात् भगवत् अवयाअवलोकन जनित भाव वलते प्रथम मृगीन में ब्रह्मानन्द प्रवेश भयौ, तदनन्तर मृगीन कूँ आधिदैविक स्त्रीविग्रह प्राप्त भयौ, याके लियें प्रभु नें हरिणीन में स्वरूपानन्द प्रवेश करवे के अर्थ, मृगीन के समक्ष में वेष धारण कियौ । क्यों जी 'आकर्ण्य' क्रियापद की भांति 'निरीक्ष्य' पद यहाँ क्यों नहीं कह्यौ । जैसें 'आकर्ण्य' पद कौ अर्थ, वेणुरणित के श्रवण में शब्द ते अर्थ कियौ । और 'आकर्ण्य' पद कौ अर्थ भगवद्दर्शन में अर्थ ते निरीक्षण अर्थ कियौ, तैसें 'निरीक्ष्य' पद कौ भी दो प्रकार ते व्याख्यान करनों सम्भव हो, तहाँ कहै हैं कै—

"पशुदृष्टिर्विशेषं न गृह्णातीति शास्त्रदृष्टिरुक्ता ॥"

यदि 'निरीक्ष्य' पद ते केवल भगवन्निरीक्षण ही अर्थ करते तौ पशुदृष्टि विशेष वस्तु कौ ग्रहण नहीं करै है । याते वेणुनाद आकर्णन द्वारा रसात्मक स्वरूपानुभाविका नादब्रह्मात्मिका शास्त्रदृष्टि कही । तथापि प्रत्यक्षदृष्टि के विना प्रभुसाक्षात्कार कैसें भयौ । ऐसी शङ्का में कहै हैं कै पश्चात् प्रभु के साक्षा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दृशन में प्राप्त भयी भी प्रत्यचदृष्टि, प्रभुदर्शनानुकूला होयवे ते विद्यमानापि प्रत्यक्ष-दृष्टि गिनी नहीं। सोही कहै हैं कै 'आकर्ण्य वेणुरणितं' सर्वरस हैं असाधारण पूर्ण जामें। अथवा सर्वरस हैं साधारण जामें कोई एक ही रस मुख्य नहीं है। मुख्य रूप ते सब रस हैं, जामें ऐसौ वेणुरणित है, जामें ते कोई रस बाहिर नहीं निकस जाय, ऐसे शब्दविशेष कौ नाम रणित है। या वेणुरणित कौ श्रवण हरिणीन नें प्रभु के निकट जायकैं कियौ है। याते भगवन्निकट जायकैं वेणुरणित के श्रवण करवे ते, पशुजाति हरिणीन के भीरुत्वादि दैहिकधर्मन की निवृत्ति सूचित करी। याते 'आकर्ण्य' या क्रियापद कौ अर्थ शब्दश्रवण है। और भगवन्निरीक्षण तौ भगवन्निकट जायवे ते ही है। याते समीपगमन में 'उप' पद कह्यौ। गोपी कहै हैं कै 'सहकृष्णसाराः' ये हरिणी अपने कृष्णसार पतीन के संग हैं। ये हरिणी, हरिण सब श्रीकृष्ण ही हैं, एक सार वस्तु जिनकै ऐसे हैं। याते ही अपने कृष्णसार पतीन के संग हैं। याते ही इन हरिणीन कूं पतिकृत निरोध (रोक) भी नहीं है। और हमकूं तौ पतिकृत निरोध है। याते ये मृगी ही धन्य हैं। और 'हरिण्यः' या पद ते हरिणीन में बहुवचन होयवे ते हरिणीन में सापत्न्य (सौतेले) भाव कौ अभाव भी सूचित कियौ। हरिणीन में सापत्न्य भाव क्यों नहीं है ऐसी आकांक्षा में कहै हैं कै 'सहकृष्णसाराः' ये हरिणीन के पति तौ कृष्णसार हैं। और हमारे पतिगोप तौ कृष्णसार नहीं हैं। ये गोप तौ अभिमान सार हैं। हम कूं अपनी भार्या मानें हैं। अन्यथा यदि हमारे पतिगोप, मृगीन के पतीन की भांति कृष्णसार होते, तब कहा हमकूं अपने संग लै करकै ही श्रीकृष्ण के संग गोचारणकार्य नहीं करते। यदि कृष्ण-सार होते तौ अवश्य करते। याते ये गोप कृष्णसार नहीं हैं। याते ये कृष्ण-सार हरिण ही धन्य हैं। ये हरिणी प्रभु कूं स्नेहपूर्वक अवलोकन करकैं रची नेत्रकमलन की पूजा कूं प्रभु में धारण करै हैं। इन हरिणीन कौ प्रभु कूं स्नेहावलोकन करनों स्वप्रियानके नेत्रनकौ प्रभु कूं स्मरण करावै है। याते प्रभु प्रसन्न होंय हैं। प्रभुकौ सतुष्ट होंनों ही यहां पूजा है और स्वप्रिया नेत्र स्मरण जनित प्रिया भावते मृगीन कूं प्रभुकृत जो स्नेहावलोकन है, सो भगवत्कृत हरिणीन कौ प्रतिपूजन है। या पूजा में ये नेत्रकमल ही ज्ञान वासित हैं। और ज्ञानोत्पत्ति स्थान हैं। याते नेत्र कमलनतै करी पूजा सर्वोत्तमा है। यहां धा, धातु पोषण अर्थ में है. याते प्रभुनें भी हरिणीकूं स्नेहसहित अवलोकन करकै हरिणीन कौ प्रतिपूजन कियौ, किन्तु प्रभु कौ सन्तुष्ट होंनों पूर्व कर्तव्य की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपेक्षा राखै है। याते प्रथम हरिणीकृता पूजाते सन्तुष्ट भये प्रभुनें मृगीन कौ भी प्रतिपूजन कियौ। याते प्रतिपूजन क्रिया अर्थतें स्वयं ही प्राप्त होय है। धातुकौ अर्थ धारण-तोषण है अर्थात् स्थिरता है। याते भगवत्कृत प्रति पूजनते हरिणीनके आत्मामें प्रेमरसकी स्थिरता भयी। अथवा 'पूजांदधुः' याको यह अर्थ है। कै भगवत्कृत प्रणयावलोकन रूप प्रतिपूजन कूं हरिणीननें अपने अन्तःकरणमें धारण कियौ अथवा कोई 'सदयावलोकैः' ऐसौ भी पाठमानें हैं। याकौ यह अर्थ है कै जैसें हरिणीन नें भगवानकूं और भगवान् नें हरिणीकूं दयासहित अवलोकन कियौ है। तैसें ही प्राणीन कूं और भगवान कूं परस्पर में दया सहित अवलोकन करनों अवश्य कर्तव्य है 'धन्यास्तु' पदमें जो 'तु' शब्द है सो या श्लोक की समाप्ति में भी पूर्व पक्षके निवारणकौ स्मरण करावै है। जैसें हरिणीननें स्नेहावलोकनरूप, प्रभु कौ पूजन कियौ है। इतनों तौ प्राणीन कूं अवश्य कर्तव्य है, प्रभुकौ किन्तु हमसूं तौ अन्तर्भाव के होयवेमें स्नेहावलोकन रूप पूजन भी नहीं है सकै है। याते हरिणी ही धन्या हैं। यह सुधा भोगादिकतौ अधिक फलमें है। याते प्रभु कूं प्रीति पूर्वक अवलोकन करनों।जीव कौ अवश्य कर्तव्य है। और कृपापूर्वक जीवकूं अवलोकन करनों भगवत्कर्तव्य है। ऐसैं परस्पर में जीव: ईश्वर कौ कर्तव्य इतनों ही है॥ ११॥

अथ श्रीविट्ठलेश प्रभुकृत स्वतन्त्र लेख कौ अनुवाद करै हैं। अथवा 'अक्षण्वतां' इत्यादि चार श्लोकनमें पीठिका कौ निरूपण करकें, पश्चात् वेणुनाद और वेणुनाद कार्य में प्रथम हरिणीनमें वेणुनाद के कार्य कूं कहै हैं कै 'धन्यास्तु' ये हरिणी धन्या हैं ऐसें हरिणीन कूं धन्या कह्यौ या धन्यत्व में मृगीकृत पूजन हेतु कह्यौ। यहां 'धन्यास्तु' पदके मध्य में जो 'तु' शब्द है सो सर्वत्र पूर्वपक्षके निवारणार्थ कह्यौ है। किन्तु या श्लोक में तौ पूर्व पक्षकौ श्रवण भी नहीं है तब 'तु' शब्द कौ कहां उपयोग है। यदि यह कहौ सो सब सत्य है। यद्यपि यहाँ साक्षात् पूर्व पक्षकौ सुन नों नहीं है तथापि पाक्षिकदोष भी दूर कर्तव्य है या न्यायते यदि कोई पूर्व पक्षकी संभावना करै सो भी 'तु' शब्दते निवारण करी है। क्योंजी मृगीकृता पूजामें पूर्व पक्षकौ होंनों तौं असंभव है। याते पाक्षिक दोषकौ होंनों भी असम्भव है। तब कैसैं पूर्व पक्षदोषके निवारणार्थ ही 'तु' शब्द है। यद्यपि यह भी सत्य है। कै मृगीकृता स्नेहावलोकन पूजा निर्दोषा है। तथापि दुष्टमना पुरुष कू पूजामें दोषकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्फूर्ति होय है। क्योंजी दुष्टमना पुरुषकूं भी कौन आश्रय लै करकैं पूजा में दोषकी स्फूर्ति को सम्भव है। तहां पूजा में दोष स्फूर्ति प्रकार कूं कहै हैं। कै हरिणीकृता पूजा शास्त्रोक्त अङ्गरहिता है। ऐसी पूजाकूं पूजात्व हौंनों ही सम्भव नहीं है। तब कैसें ऐसी पूजाते हरिणीनकूं धन्यत्व का सिद्धि भयी। तहाँ शास्त्रीय पूजा के अंगन की गणना करें हैं। कै प्रथम तौ पूजककूं अपनों स्वरूप ज्ञान हौंनों, अपने में दासभाव हौंनों, पूजोद्देश्यफलकौ अनुसन्धान हौंनों, तदन्तर सर्वेश्वर भावते, पूज्य स्वरूप कौ ज्ञान हौंनों, पूजा में परम श्रद्धा हौंनों, पूजा साधन पदार्थनकौ संपादन करनों, तथा देश काल मन्त्रादिक ये सब पूजा के अंग हैं। या पूर्व पक्षकूं 'तु' शब्द निवारण करैहै। क्योंजी तु शब्द ते पूर्व पक्षकी निवृत्ति कैसें भयी। तामें उपपत्ति (युक्ति) कहै हैं कै ये पूर्वोक्त अङ्ग, सब मर्यादामार्गीय पूजाके अंग हैं। और हरिणी कृत पूजा शुद्धि पुष्टि मार्गीया है। याते मर्यादा मार्गीय धर्मनकौ न न हौंनों ही या पुष्टिमार्ग में भूषण है। दूषण रूप नहीं है। कारण कै मार्ग के भेदते पूजा में भी भेद है। अन्यथा पूजाभेदके बिना तौ मार्गन मे कोई भेद ही नहीं रहतौ। याते पुष्टिमार्गीय धर्मन कौ हौंनों पुष्टिमार्ग में भूषण रूप है। दूषण रूप नहीं है। यदि पुष्टिमार्ग के धर्म मर्यादा मार्ग में हौंय तौ दूषण रूप हैं। ऐसैं ही मर्यादा मार्ग के धर्म, या पुष्टिमार्ग में होय तौ दूषणरूप हैं। या प्रकार 'तु' शब्दते मर्यादा मार्ग की निवृत्ति में यह युक्ति कही। क्योंजी पशुजाति हरिणीन कूं मूढमति होयवेते, शुद्ध पुष्टिमार्ग कौ ज्ञानतौ है ही नहीं, तब शुद्ध पुष्टिमार्ग के ज्ञान बिना हरिणी कृत पूजा, कैसें हरिणीनके धन्यत्व में कारण है। तहाँ कहै हैं कै यद्यपि तुम्हारे मत में हरिणी मूढमति हैं तथापि 'अपि' शब्दते हरिणीन कूं शुद्ध पुष्टिमार्ग में भगवत् प्रियकार्य करवेवारी, अमूढमति बड़ी चतुरा बुद्धमती जतायौ है। याते यह अर्थ सिद्ध भयौ कै यद्यपि मर्यादा मार्ग में हरिणी मूढमति हैं किन्तु पुष्टि मार्ग में तौ हरिणी अमूढमति सुबुद्धिमती हैं। अन्यथा यह अर्थ न मानों जाय तौ 'अपि' शब्द कौ कहनों व्यर्थ होय है। क्योंजी पुष्टिमार्गीय अमूढमतित्व इन हरिणीनमें कैसें है तहाँ कहै हैं। कै मर्यादामार्गीय अपने पशुत्व ज्ञानते विरुद्धज्ञान इन मृगीन में है। अपने में नायिका भाव ज्ञानके होयवे ते, हरिणी पुष्टिमार्ग में अमूढ मतिवती हैं। याते कै पशुत्व विस्मरण पूर्वक अपने में नायिका भाव कौ हौंनों ही हरिणीन में विरुद्धज्ञान है। याते हरिणी अमूढमती हैं। क्योंजी यह कैसें जानों जाय कै स्वविषयकज्ञान और भगवद्विषयकज्ञान हरिणीन कूं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसी शंकामें कहै हैं । कै यदि मृगीन कूं ऐसौ ज्ञान नहीं होतौ तबतौ प्रभु समीप गमन, वेणुनाद श्रवण, प्रणयावलोकन कार्य भी संपन्न नहीं होतौ । कैसें संपन्न नहीं होतौ कै यदि हरिणीन कूं अपने में पशुत्व ज्ञान होतौ तबतौ हरणीन की अति भीरु पशुजाति होयवेते, प्रभुके समीप में स्थित नहीं रहती, कारण कै समीपस्थिति में भीरुत्व बाधक है । कदाचित् नादाधीन होयकर स्थित रहवे में भी, प्रभु स्वरूप सौंदर्य विचित्र वेषकौ अनुसंधान पूर्वक दर्शन नहीं करतीं । किन्तु ये मृगी तौ भावके आधीन हैं । तब ये मृगी प्रभुकौ अनुसंधान पूर्वक दर्शन कैसें नहीं करैं । यह वेणुनादजनित मृगीन की बाह्य कृति कही । अब व्रजगोपी, वेणुनाद जन्य मृगीन के आन्तरभाव कूं कहै हैं कै—

" आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णासाराः । "

यद्यपि प्रथम " नन्दनन्दन " पदके कहवेते, पश्चात् " आकर्ण्य " क्रिया पदके कहवेते, नन्दनन्दन के दर्शन करकै और वेणुरणित कौ श्रवण करकैं, ऐसें क्रियाद्वयकी अपेक्षाही तथापि दोनों में " आकर्ण्य " एकही क्रिया के निरूपण ते, वेणुनाद के श्रवण में ही प्रभु स्वरूप कौ भी दर्शन भयौ । यद्यपि " नन्दनन्दनं " याद्वितीयान्त पदके कहवे ते, प्रभुदर्शनतौ विना कहैं अर्थतें ही सिद्ध है । याते प्रभुदर्शन में पृथक् क्रिया पद नहीं कह्यौ । वेणुनाद के श्रवण में देख्यौ स्वरूप ही, वेणुनाद द्वारा, व्रजगोपीन के और हरिणीन के हृदय में आयकैं प्राप्त भयौ है । याते " आकर्ण्य " एकही क्रिया कही । क्योंजी यह कैसें जानी जाय कै वेणुनाद श्रवण द्वारा हो प्रभुस्वरूप, गोपीन के और मृगीन के हृदय में आयौ है । याते व्रजगोपी हृदयागमन के जतायवे वारे कार्य कूं कहै हैं कै—

" सहकृष्णासाराः, 'कृष्णएव सारो यासांताः ।"

कृष्ण ही है एक सार वस्तु जिनकैं । याते वेणुनाद कौ श्रवण करकै, नाद प्रवेश के सङ्गही हरिणी कृष्णसारा है गयीं । याते हृदय में स्वरूपानुभव करकें ही मृगी कृष्ण सारा भयीं । मृगीन कौ कृष्णसारा होनों अन्तःकरण में प्रभुस्वरूपानुभव किये विना संभव नहीं है । याते नादके द्वारा स्वरूपानुभव करकै ही मृगी, कृष्णसारा भयी हैं । याते " आकर्ण्य " एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

ही क्रिया पद कह्यौ । तब कैसें जानें कै हरिणीन कूं प्रभुस्वरूपानुभव नहीं भयौ, यह तौ स्पष्ट ज्ञात होय है कै मृगीनकूं स्वरूपानुभव भयौ है । याते व्रजगोपी स्वरूपानुभव प्रकार कूं कहै हैं कै—

" पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः । "

मृगी, स्नेहसहित अवलोकन करकैं रचना करी पूजा कूं प्रभु के अर्थ समर्पण करै हैं । और ये हरिणी, प्रभुकृत प्रणयावलोकन करकै स्वयं प्रतिपूजिता होंय हैं । यदि अन्तःकरण में स्वरूपानुभव नहीं होतौ तबतौ प्रभुमें परमप्रेम भी नहीं होतौ तबतौ नयन कटाक्षण करकैं भगवत्पूजन भी नहीं होतौ । याते ज्ञात होय है । कै हरिणीन कूं हृदय में प्रभु स्वरूपानुभव भयौ है । क्योंजी ये हरिणी तौ पुष्टिमार्गीय भावती हैं । और प्रभु चरित्र वर्णनकर्त्री गोपी भी पुष्टिमार्गीया हैं याते पुष्टि मार्ग में तौ प्रभुसेवा ही मुख्य है । और पूजा गौण है । तब इन पुष्टि मार्गीया मृगीन की क्रिया में पूजा पद क्यों कह्यौ । ऐसी शंका में कहै हैं कै यहाँ पूजा पदके कहवे कौ यह कारण है कै यद्यपि मृगीकृता क्रिया भी भावाधीन कार्य होयवे ते, याकूं भी सेवा कहनों संभव है तथापि हरिणीकृता पूजा में पुष्टिमार्गीय सेवा कौ अभावरूप, साक्षात्प्रभु संबंध नहीं है याते हरिणीकृता पूजा पुष्टि पुष्टि रूपा नहीं है अर्थात् मृगी शरीर में मुख्य रसानुभव करवे की योग्यता नहीं है । यातें पूजा पुष्टि पुष्टि रूपा नहीं है । पुष्टिमार्गीय सेवाधिकारतौ साक्षात्प्रभु संबंधिनो श्रीस्वामिनीन कूं ही है । किन्तु हरिणीकृता पूजन क्रिया के भावाधीन होयवे ते, जैसें पूज्यपूजक दोंनों कौ परस्पर में मनः सन्तोष होय है तैसें हरिणीन की पूजा, पूजा के समान होयवे ते, यामें पूजा पद कह्यौ है । तथापि या हरिणीन की पूजा में यह विशेषता है । कै जैसें मर्यादामार्गीय पूजा में, पूज्य कौ मनः सन्तुष्ट भयौ कै नहीं भयौ, यह जाननों असक्य है । याते मनः सन्तोष के विषय में सन्देह ही रहै है । किन्तु हरिणीन की पूजा में तौ प्रभुनें हरणीन कौ प्रतिपूजन कियौ है । याते मृगीन कूं यह निश्चय है गयौ कै हमारे ऊपर प्रभु प्रसन्न हैं । याते मर्यादामार्गीय पूजाते हरिणीकृता पूजा उत्तमा है ।

याते— " पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः । "

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

याके व्याख्यान में श्रीमदाचार्य जी नें अन्योन्य ही पूजा प्रकार कह्यौ है। याते भगवत्कृत प्रणयावलोकन ते मृगीन कौ प्रतिपूजन स्पष्ट है। याते यह कथन सर्वथा निर्दोष है ॥ ११ ॥

अब व्रजगोपी अप्सरान की अवस्था वर्णन करैं हैं।

कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवचारु वेषं श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणुविचित्र गीतम्।
देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा भ्रश्यत्प्रसूनकवरा मुमुहुर्विनीव्यः ॥ १२ ॥

वनितान के उत्सव के लियें धर्यौ है चारु वेष जानें ऐसे श्रीकृष्ण के दर्शन करकै, श्रीकृष्ण के वजाये वेणु में चित्रगीत कूं श्रवण करकैं, विमानन में बैठकर आईं देवी अप्सरा, कामके वशीभूत होयवेते नष्ट भये हैं धैर्य जिनके गिरे हैं चोटी के पुष्प जिनके खुले हैं नीवीनारे जिनके ऐसी देवी मोहिता है गईं ॥ १२ ॥

व्याख्या—या श्लोक में प्रथम कृष्ण पद है। कृकृष्णपद को अर्थ है "स्त्रीगूढ भावात्मक सदानन्द स्वरूप" या रसात्मक स्वरूप के द्वारा, स्त्रीन कौ निरोध सूचित कियौ। जब अप्सरान नें आनन्द स्वरूप कौ दर्शन कर लियौ, तब या लोक परलोक के आनन्द साधन फलनमें देवीनकी आसक्ति कौ न होंनों योग्य ही है। तामें भी स्त्रीगूढभावात्मक सदानन्द स्वरूप कौ दर्शन कियौ। तामें भी देवीननें अपनी दिव्य दृष्टि ते निरन्तर दर्शन कियौ। याते अप्सरान कूं यह निश्चय है गयौ कै स्वजातीया स्त्रीनके उद्धारार्थ ही प्रभु वृन्दावन में पधारे हैं। हरिणीकृत दर्शनतें, अप्सरान के दर्शन में दिव्यदृष्टितें दर्शन करनों यह विशेष है। अब स्त्रीनके आनन्ददायक वेपकूं कहै हैं कै

"वनितोत्सवचारुवेषं, 'वनितानामेवोत्सवार्थे चारुर्वेषोयस्य"

वनितानकूं उत्सवके अर्थ ही है मनोहर वेप जाकौ। श्री कृष्णके ऐसे वेष कौ देव स्त्रीननें अपनी दिव्यदृष्टितें दर्शन कियौ। या वेषके धारण करवेते, केवल वनितानकूं ही उत्सव होय ऐसो वेष है यह अर्थ भयौ, समास विग्रह तौ ऐसैं है कै

" वनितोत्सवाय वनिताभूषणार्थं चारुर्वेषो यस्य "

वनितानके उत्सव के अर्थ वसनभूषणादि धारण करवेके अर्थ है मनोहर वेष जाकौ यहाँ उत्सवपद, बारम्बार, नवीन २ वसनभूषणादि धारण करवे के अर्थ में है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

याको यह अभिप्राय है कै जैसैं प्रभु ने वनितान के उत्सव के अर्थ जैसे वस्त्र भूषणादि धारण करकैं, जैसौ सुन्दर, मनोहर वेष धारण कियौ, । तैसैं ही भगवान् के उत्सव के अर्थ, भगवान् कूं इच्छित वसनभूषणादि धारण करकें वनिता भी शृङ्गार करें, प्रभु नें या अभिप्राय ते वेष धारण कियौ है । जैसैं प्रभु नें पीताम्बरादि वसनभूषन धारण किये, तैसैं ही तिन कीं कांति के बढ़ायवे वारे नीलाम्बर रक्तकंचुकी आदि वनितान नें भी धारण किये। ऐसैं प्रभुचिकिर्षित शृङ्गारवीरादि रस के अनुरूप ही वनितान नें वसनभूषन धारण किये । जैसैं प्रभु नें नटवर वेष धारण कियौ तौ सब स्वामिनी भी नर्तकी कौ वेष धारण करैं । जैसें वेष कौ और रस कौ अतिक्रम नहीं होय, सर्व रस स्थिर रहैं, प्रभु कौ यह अभिप्राय है । सो उत्सव तौ अनेक प्रकार कौ होय है । तत्तत् उत्सव में उत्सवरसज्ञ पुरुष, उत्सव रसानुभव करवे के अर्थ, उत्सवरस के अनुरूप ही वेष वसनभूषण धारण करे हैं । किन्तु यह वेष तौ केवल जामें वनितान कूँ ही उत्सव होय, याके लियैं धारण कियौ है । याते श्रीवल्लभाचार्य जी वनिता शब्द कौ अर्थ करे हैं कै 'वनं यौवनं प्राप्ताः प्राप्तवत्यः' तहाँ वनिता शब्द के अन्तर्गत जो 'वन' शब्द है याके विपिन और यौवन, ये दोनों अर्थ ग्रहण किये । तहाँ विपिनपक्ष में 'वनं विपिनं इतः प्राप्तः वनितः' यहाँ बहुवचन में वनिताः पुरुषाः पुरुष कहे । जे भगवदीय पुरुष भगवत्प्राप्ति के अर्थ समस्त पदार्थन कूं त्याग करकैं केवल वन में प्रविष्ट भये हैं तिनके उत्सव के अर्थ प्रभु नें सुन्दर मनोहर वेष धारण कियौ । याते कै कोटिकन्दर्पलावण्यता ते अधिक सुन्दर मेरे मनोहर वेष के दर्शन करकैं प्राप्त भयौ है, स्त्रीभाव जिनकूं ऐसे पुरुष, मेरे पुरुषोत्तम स्वरूप कूं प्राप्त होंयगे, या अभिप्राय ते प्रभु नें वनितोत्सव चारुवेष धारण कियौ है, ऐसी भावना करनी । और यौवनपक्ष में, 'वनम् यौवनं इतः प्राप्तवत्यः' यौवनावस्था कूं प्राप्त भयी मृगनयनी वनितान के उत्सवार्थ पूर्व में विद्यमानभाव के उद्दीपनार्थ प्रभु नें सुन्दर मनोहर वेष धारण कियौ है, याते वन में प्रविष्ट भये पुरुषन केस्त्रीभावापन्न और यौवनावस्थाकूं प्राप्त भयीं सुन्दरीन के सूचनार्थ, श्रीसुबोधिनी में 'प्राप्ताः प्राप्तवत्यः' ऐसैं दो वार उल्लेख कियौ है । अन्यथा धातु, उपसर्ग, प्रत्यय के एकार्थ होयवे ते, 'प्राप्ताः' इतने कहवे ते ही पुरुष स्त्री दोनों अर्थ ग्रहण करनों सम्भव हो, तब 'प्राप्त वत्यः' या विशेषपद कौ कथन व्यर्थ है, तथापि यहाँ स्त्रीप्रकरण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के होयवे ते, स्त्रीन कौ ही ग्रहण होतौ, पुरुष स्त्री दोनों कौ ग्रहण नहीं होतौ। याते 'प्राप्ताः' कहवे ते पुरुष और 'प्राप्तवत्यः' कहवे ते स्त्री, ऐसैं वनितापद ते दोनों कौ ग्रहण भयौ। याते पुरुषन कैं स्त्रीभाव के उत्पादनार्थ, और स्त्रीन में पूर्व भाव के उद्दीपनार्थ, प्रभु नें चारु वेप धारण कियौ। याते दोनों प्रयोजन सिद्ध भये। अथवा 'वनं यौवनं सञ्जातमस्याः सा वनिता' ऐसैं कर्ताअर्थ में 'वन' शब्द में 'इतच्' प्रत्यय के योग ते, 'वनिता' शब्द सिद्ध होय है याते यौवनावस्था कूँ प्राप्त स्त्री कौ नाम वनिता है। यह 'वनिता' शब्द यौगिक है। और 'वनिता जनितात्यर्थानुरागायां च योषिति' प्रकट है अनुराग जामें ऐसी अनुरागवती स्त्री कौ नाम कोश में भी कह्यौ है यह स्त्री में रूढ़ है याते धातु और प्रत्यय के योग ते सिद्ध भयौ, यौगिक, वनिता पद और कोश ते सिद्ध भयौ वनिता शब्द स्त्री में रूढ है। याते दोनों प्रकार ते सिद्ध भयौ वनिता शब्द सामान्य लौकिकी तरुणी वाचक है। याते यौगिक और रूढ़ि दोनों प्रकार के वनिता शब्द कूं त्याग करकैं इन वर्णन कर्त्री व्रजगोपीन नें अति परोक्षवाद ते वनिता शब्द कह्यौ है। तहाँ 'वनं इतः प्राप्ताः पुरुषाः' सैं कर्ताअर्थ में 'इतच्' प्रत्यय के करवे ते यौगिक वनिताशब्द में, पुरुषपक्ष में तौ कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु 'वनं यौवनं संजातमस्याः सा वनिता' याके अनुसार ही 'वनं यौवनमिताः प्राप्तवत्यः' यहाँ यौवनावस्था कूं प्राप्त भयीं स्त्रीन में वनितापद कह्यौ, किन्तु यहाँ वनिताशब्द के अन्तर्गत जो वन शब्द है या 'वन' शब्द ते कर्ता अर्थ में 'इतच्' प्रत्यय, के योग ते वनिता शब्द सिद्ध होय है। तब वन में प्राप्त भयीं स्त्री ऐसौ अर्थ भयौ, यौवनावस्था कूं प्राप्त भयी ऐसौ अर्थ नहीं भयौ, तब वन शब्द ते यौवनावस्था कौ कैसैं ग्रहण कियौ, कारण के वन शब्द ते, यौवनार्थ के ग्रहण करवे में, प्रथम वन पक्ष में तौ वर्णद्वय की आपत्तिहै, 'वन' पद में दो वर्ण हैं। और यौवन पद में तीन वर्ण हैं। और द्वितीयपक्ष यौवन पक्ष में एक वर्ण की आपत्ति है। वन पद में एक यौ वर्णयुक्त होय तब यौवनपद सिद्ध होय। तहाँ कहे हैं कै-

'वर्णागमो वर्ण विपर्ययश्च तथापरौ वर्णविकार नाशौ'

या कारिकोक्त प्रकार ते 'वन' शब्द कूँ पृषोदरादि मान करकैं वन शब्द के यौवनार्थ में कोई बाधा नहीं है। क्यों जी या प्रकार ते यौवन पद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के सिद्ध करवे में भी वन शब्द ते यौवन पद कौ ग्रहण कैसें कियौ, ऐसी आकांक्षा में कहै हैं कै यौवन पद में भी 'यु' मिश्रणे, 'यु' धातु मिलवे अर्थ में है। यहाँ मिश्रणार्थक यु शब्द उकारांत है याकौ निमित्त अर्थ में सप्तमी विभक्ति करवे ते भानु शब्दवत्, 'यौ' ऐसौ रूप भयौ। याते 'यौ' मिलवे के निमित्त 'वन यौवनं इताः वनिताः' यहाँ नायका कूं मिलनों, नायका के संग इच्छित है। या प्रकार 'यौ' मिलवे के अर्थ वनमें यौवनमें प्राप्त स्त्री को नाम वनितापद सिद्ध भयौ, नायक के संग नायिका कौ सङ्गम यह यौवन ही करावै है। वन की भांति यौवन के सर्व शरीर व्याप्त होयवे ते यह यौवन भी एक प्रकार ते वनविशेष ही है। याते वन शब्द ते यौवन पद कौ ग्रहण करनों सुन्दर कथन है। यौवन कौ वनभाव तो श्रृङ्गार रसोपयोगि [1]सामग्रीवान् धर्मन की समानता ते जाननों, याते अति परोक्ष के कहवे ते यौवनपद की ऐसी व्युत्पत्ति निरुक्त पद्धति के अनुसार करी है। कारण कै—

"अप्यक्षरवर्णसाम्येन निर्ब्रूयान्न संस्कार माद्रियेत ॥"

स्वरव्यंजन की समानता ते अर्थ कूं निश्चय करकें कहै अन्यथा अर्थ कूं नहीं कहै किन्तु लक्षणरहित शब्दन में, प्रकृति प्रत्यय रूप संस्कार कौ आदर नहीं करै, ऐसी निरुक्तशास्त्र की आज्ञा है। यहाँ यौवन अर्थवाचक वन पद ते सिद्ध भये वनिता शब्द ते व्रजगोपीन नें यह कह्यौ कै याते वनिता कूं उत्सव होय, वनितान कौ प्रभु ते संयोग होय, प्रभु नें ऐसौ मनोहर वेष धारण कियौ। यहाँ टीका में 'कृत' पद नवीन २ पदार्थवाचक है। याते भगवान् जब २ अन्य वेष कूं स्वीकार करें हैं, तब २ वनिता भी सब नवीन २ वस्त्र भूषण धारण करें हैं। जब प्रभु पीताम्बर धारण करै है तब वनिता भी नीलांबर रक्त चोली कूं धारण करै हैं। प्रभु श्रृङ्गारादि रस के मध्य में, जा श्रृङ्गारवीराद्भुतहास्य रस कूं प्रकट करै हैं, ताहीं श्रृङ्गारादि रस के अनुरूप वनिता सब वेष वसन भूषण धारण करै हैं। याते जिन वनितान नें, या प्रभु के वेष धारणोत्सव में, उत्सव रस कौ अनुभव नहीं कियौ, तिनकौ वनिता होंनों ही व्यर्थ है। जैसें पति संयोग के बिना रण्डा स्त्री कौ यौवन व्यर्थ होय है, तैसें ही भगवन्मिलन बिना उनकौ वनितात्वही व्यर्थ है। याते

[1] चार चतुष्पद, चार खग, चार फूल, फल चार। पूर्व जन्म के पुन्य बिन, मिलै न ऐसी नारि॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वनितानके उत्सव के अर्थ धारण कियौ है मनोहर वेष जाने ऐसे श्रीकृष्ण कौ इन अप्सरान नें अपनी दिव्य दृष्टि ते दूरतेही दर्शन कियौ। तामें भी प्रभुकौ वेष तौ चारु मनोहर है। अन्तरालंकार कौ हेतु है। अन्तःकरणमें प्रेम ज्ञानादिक अलंकार है। जैसें अप्सरानकूं अपनी दिव्य दृष्टिते दूरके दर्शन करवे में प्रभुके चारु वेष कौ बाहिर अनुभव भयौ, तैसौही प्रेमज्ञानादिक करकैं अपने हृदयान्तरमें अनुभव कियौ। भगवान् के वेणु क्वणित कूं श्रवण करकैं अप्सरानने अपनी दिव्य दृष्टिते वनितानके उत्सवमें रसोत्पादक वेषकौ दूरते ही दर्शन कियौ, याते प्रेम ज्ञानादि करकैं अन्तर में उद्दीपन विभावके प्रकट होयवेते हृदयान्तरमें भी वनितोत्सवचारुवेष कौ रसानुभव कियौ। याते व्रजगोपीननें वेषकूं, वनितानके और अप्सरानके प्रभु समीप आगमन में उपाय कह्यौ। याते शीघ्रही वनितासव उत्सव में प्राप्त होंय, याके लिये वेष धारण करनों है। अब अप्सरानकूं शीघ्रही विमाननमें बैठ करकैं भगवत् समीप में पहुचायवे वारे उपाय कूं कहै है कै—

" श्रुत्वाचतत्क्वणितवेणु विचित्रगीतम् "

ता भगवान् के वेणुनाद कूं श्रवण करकैं, भगवान्‌के वजाये वेणुमें सर्व रसबोधक विचित्र गीतकूं श्रवण करकैं अप्सरा विमाननमें बैठकरकैं शीघ्र ही भगवत्समीपमें प्राप्त भयीं। याते जो 'वनितः' पुरुष भगवद्गुण श्रवणकरकै उत्पन्न भये हैं प्रेम, ज्ञान, वैराग्य जाके ऐसौ भक्त सर्वत्याग करकै, प्रभुवे मिलवेके अर्थ, वन में प्रवेश करै है सो पुरुष, प्रभुके मिले विना पीछौ नहीं वगदै है। और जो वनिता नायक ते मिलवे के अर्थ प्राप्त भयौ है यौवन जाकूं नायकते मिले विना रसानुभव किये विना, पीछो नहीं वगदै है। यह लौकिकी वनिताकौ अर्थ है। किन्तु यहां तो प्रभुके वेणु क्वणित कूं श्रवण करकैं वेणुगीतस्थित प्रभुके वनितोत्सव-चारुवेषकौ दर्शन करकै, जान्यों है प्रभुके हृदयकौ आशय जिननें ऐसी व्रजवनिता वृन्दावन में प्राप्त भयीं, प्रभुके संग वनितोत्सव रसानुभव करैंगी ही। याते प्रभु नें वनितानके उत्सव के अर्थ ही मनोहर वेष धारण कियौ है। इन व्रजवनितानकी प्रभुते मिले विना उत्सवरसानुभव किये विना पुनरावृत्ति कैसैं होयसकै है, किन्तु इन देवी देवतानकी, बाल कुमार और युवा, ये तीनही अवस्था होंय हैं। इनकूं वृद्धावस्था प्राप्त नहीं होय है। याते ये त्रिदशा और निर्जरा कहे जाय हैं। याते इन अप्सराननें अपनों स्थिर यौवन निश्चय करकैं, वनितोत्सवमें अपनी हू योग्यता जान करकैं वनितोत्सवमें संमिलित होयवे के अर्थ अप्सरा विमाननमें बैठकरकैं भगवत्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रृंगार रस की मुख्यता

समीपमें आई हैं। किन्तु भगवान्‌ने तो, स्थिर सर्वात्म भाववती स्थिर यौवना, वनस्थित ब्रज सुन्दरीनके उत्सवके अर्थ मनोहर वेष धारण कियौहै। याते अप्सरानकूं वनितोत्सव रसानुभव नहीं भयौ, किन्तु पुनरावृत्तिरूप मोहभयौ। इन वर्णन करवेवारी ब्रजगोपीननें अपने अधिकारानुसार अपनी दिव्य दृष्टितें भगवान् के हृदयकौ आशय और इन अप्सरानके हृदयकौ आशय जानलियौ, या गुप्ताशयके बोधकरायवे के लियें ब्रज-गोपीननें अतिपरोक्षवादते यहाँ वनिता पद कह्यौ है। अप्सराननें भगवन्निकटमें आयकरकें पूर्व की भाँति हीवेणुक्वणितकूं श्रवण कियौ। यहाँ वेणुके सिवाय अन्यकृत कूजित क्वणितादि नहीं हैं, याते क्वणितनके संग्रह के अर्थ "ततक्वणित वेणु विचित्र गीतं" इतनों पद कह्यौ। याते "तत्क्वणितं क्वणितवेणुविचित्रगीतंच" ऐसौ समासकियौ याते। क्वणित, पदकी आवृत्ति करी। याते यह अर्थ भयौ कै ता भगवान् के वेणुक्वणित कूं श्रवण करकें और भगवान् के बजाये वेणुनादमें विचित्रगीतकूं श्रवण करकें देवांगना एक प्रथमके गीत कूँ श्रवण करकें ही मूर्च्छिता है गयी, याते गीतमें एक वचन कह्यो। गीत विचित्र है। सर्व रसन कौ अर्थ बोधक है। या गीत में श्रृङ्गाररसके अन्तर्गत ही सब रस हैं। यह नाट्यशास्त्रकौ सिद्धान्त है। रसज्ञपुरुष श्रृङ्गाररसके विना अन्यरसमें रस ही नहीं मानें है। जैसो रस प्रकट करनों होय है। तैसौ ही श्रृङ्गारहोय है तैसें ही रसभाव प्रकट किये जाँय हैं। याते श्रृङ्गाररसही सब रसनमें मुख्यहै। जैसें धनीमहा पुरुष सब सुवर्ण के ही भूषण सुवर्ण के ही उपकरण चमर छत्रादिक कटक कुण्डलकेयूरादि आभरण धारण करै हैं। मध्यमें लाक्षाभी नहीं भरामें हैं। ऐसें श्रृङ्गाररसमें ही सर्व रसहैं, अन्यथा श्रृङ्गाररसके विनातौ रसिकनकूं कोई रसमें रुचि ही उत्पन्न नहीं होयगी, याते गीत सर्व रसार्थकौ बोधक है। याते ही गीत विचित्र है। अब अप्सरान की दशाकूं कहै हैं वे—

"देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसाराः मुमुहुः"

विमानन में चलवे वारी देवी अप्सरा काम करकें नष्ट भयौ है विवेक जिनकौ मोहकूं प्राप्त है गईं। यद्यपि ये अप्सरा देवी देवता हैं। याते पूजवे योग्या हैं। देवी दुःख सहन शीला भी नहीं हैं याते विमानन में बैठ करकें चलै हैं। याते भोग्या भी नहीं हैं। किन्तु कामोदयते विवेक के नष्ट होयवेते कोई प्रकारते भूमि में प्रभुके निकट नहीं आयसकीं। यद्यपि ऐसी सत्व गुण प्रधाना देवीन में कामोदय कौ होंनों, विवेक नष्ट होंनो संभव नहीं है। तथापि देहेन्द्रियादिकी अपेक्षाते मन बलिष्ठ होय है याते मनमें कामोदय होयवेते, विवेक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

नष्ट है गयौ, यह सब भगवत् इच्छाते ही भयौ। जो भगवान् के उपयोग में नहीं आयवे योग्य है ऐसे अन्य जीवकूं रसानुभव नहीं होय है। याते ऐसौ भयौ। देवी देवता भूमि में पाँव नहीं धरैं, हैं याते विमानन में चलें हैं। देवी देवतान कौ मरण नहीं होय है, अमर हैं। याते विमानन में ते गिर करकैं मर करकैं भूमि में अवतार लैं लेतीं, सोभी नहीं भयौ याते आकाशचारिणी देवी भूमि में भगवान् के निकट कैसै आय सकें हैं। याते वेणु क्वणित कूं श्रवण करकैं प्रभुके वनितोत्सव चारु वपकौ दर्शन करकैं कामभाव के उदय होयवे ते नष्ट भये हैं विवेक जिनके ऐसी देवाङ्गना, विमानन कूं भूमि में त्याग करकैं भी अन्य के भयते छिप करकैं भी कोई भी उपाय चातुर्य ते स्वतः भी प्रभुके निकट नहीं आय सकीं। भूमि के अनागमन में, पाँयनते अनागमन में, आपते अनागमन में ये तीन हेतु कहे। तदनन्तर जो भयौ सो कहै हैं। कै "मुमुहुः" देवाङ्गना मोहकूं प्राप्त भयीं। यह मोह केवल अन्तःकरण में ही नहीं है, किन्तु ऊपर नीचैं सर्वत्र है, याते कहै हैं कै

"भ्रश्यत्प्रसूनानि कबरे यासां विगता नीवी च यासां।"

गिरै हैं पुष्प केशपाश में ते जिनके, नहीं सुध है खुली नीवी नारे की जिनकूँ, ऐसी मूर्च्छित है गई। यह चोटी ते पुष्पन कौ गिरनों और नीवी बन्धन कौ शिथिल होंनों, या लोक परलोक के फल त्याग कौ ज्ञापक है। अप्सरान कूं यह सुध नहीं रही कै हम कहा विचार कैं आई हीं। क्योंजो अप्सरान कूं दशम मरण दशा प्राप्त क्यों नहीं भयी, तहाँ कहै हैं। अप्सरान के देवता होयवेते मरण नहीं भयो। विमान गतिवती होयवे ते अधःपतन नहीं भयौ। विवेका भाव ते, कोई उपाय ते, भगवन्निकट नहीं आय सकीं भगवत् भोग के अयोग्य अन्य जीव में रसोत्पन्न न होय, ऐसी भगवान् की इच्छा है। याते अप्सरान कौ रसाभास वर्णित भयौ। ये देवलोक वासिनी देवस्त्री सब अप्सरा हैं। ये अप्सरा अपने पतिदेवतान के सहित हैं। जे देवता एक रूपते योगी की भाँति या व्रजभूमि में अवतरे हैं और एक पूर्व के रूप जिनके स्वर्ग में विद्यमान हैं, तिनकी ये स्त्री हैं। याते ये अप्सरा अपने देवलोक स्थित पतीन के सङ्ग, या व्रजभूमि में गोप वेष में अवतरे अपने पतीन के अन्वेषणार्थ ढूढ़वे के अर्थ यहाँ आई हैं। अथवा अपनी स्त्रीन कूं देवलोक में त्याग करकैं केवल स्वयं एकही रूपते व्रजमें अवतरे देवतान की ये स्त्री हैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

याते अपने पतीन के अन्वेषणार्थ यहाँ आई हैं। याते यहाँ गोपन कूं देवी पुरुष बोध करायौ। यद्यपि देवी देवतान के सङ्ग ही विमान में चलै हैं, इकली देवीन की विमानगति प्रसिद्ध नहीं है, तथापि यहाँ मूल में तौ देवता पद नहीं है, याते अरुचि मानकैं केवल एकही रूपते अवतरे देवतान को यह द्वितीय पक्ष कह्यौ है। तथापि याते अगारी युगल गीत में "वनिताः सहसिद्धैः" या पद ते देवीन कौ देव साहित्य कह्यौ है। याते यहाँ भी अप्सरान कूं देव सहित ही जाननों चहियै। इन्द्राभिषेक के अनन्तर युगल गीत में देवीन कौ देवता सहित निर्भयताते आगमन भगवद्दर्शनार्थ ही कह्यौ है। ये अप्सरा तौ व्रज में अवतीर्ण भये अपने पतीन के अन्वेषणार्थ आई हैं, इनकौ आगमन भगवद्दर्शनार्थ नहीं है। याते यहाँ आय करकैं भगवद्दर्शन करकैं अपनी पूर्वावस्था, पति अन्वेषण विचार कू भूल गयीं। भगद्दर्शन करकैं यह अभिलाषा करवे लगीं, यह श्यामसुन्दर हमारौ पति होय। या विचार में मूर्च्छित है गयीं। ऐसौ मोह अप्सरान कूं भगवत् इच्छाते ही भयौ। यदि भगवद्दर्शनार्थ आवतीं तौ अप्सरान कूं मोह नहीं होतौ, स्वपति अन्वेषणार्थ आयी हीं याते मोह कौ होंनों उचित ही है। हम गोपी तौ प्रभुके अर्थ ही अवतीर्ण भयी हैं याते हमारे पतितौ भगवान् ही होयवे योग्य हैं॥ १२॥

॥ अब व्रजगोपी गाय, वत्सान के चरित्र कूं कहै हैं॥

गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीतपीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः।
शावाः स्नुतस्तनपयः कवलाः स्म तस्थुर्गोविन्दमात्मनि दृशाऽश्रुकलाः स्पृशन्त्यः १३

श्रीकृष्ण के मुखते निकसे वेणुगीतामृत कूं अपने कर्णरूपी दोनान कूं ऊँचे उठाय-उठाय करकैं पान करती गाय, अश्रुबिन्दूनते ढकी दृष्टि ते अपने अन्तःकरण में गोविन्द प्रभुकौ दर्शन स्पर्श करती, जहाँ की तहाँ ठाड़ी हैं, और निकस्यौ है स्तनन ते ग्रहण कियौ दूधकौ कौर जिनकौ ऐसे दूध पीते वत्साहू अश्रून ते ढकी दृष्टिते अन्तर में गोविन्द कौ दर्शन स्पर्श करते जहाँ के तहाँ ठाड़े हैं, "स्म" हम प्रत्यक्ष देखै हैं॥ १३॥

व्याख्या—श्री वल्लभाचार्य कहै हैं। कै या श्लोक में भगवान कौ यश वर्णन है। याते कै हरिणी आदि पशून ते अधिक मूढ़मति गायन की प्रत्यक्ष में वर्तमान हरे-हरे तृणन में ते आसक्ति कूं हटायकरकैं और छोटे-छोटे दूध पीते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वत्सान के मुखमें दुग्धकवलते आसक्ति कूँ हटाय करकै, गाय वत्सान में अपनों स्वरूप सौन्दर्य पीयूष युक्त कियौ, तब गाय वत्सान के द्वारा भगवत् यश प्रकट है। यदि प्रभु तामसी अज्ञानी निस्साधन गाय वत्सान कूं स्व स्वरूप सौन्दर्यामृत पान नहीं करावते, तब भगवत् यश कैसैं जान्यों जातौ । याते कहै हैं । कै "गावश्च" यहाँ चकारते पूर्वोक्त अप्सरान के मोहकौ भी कथन भयौ । याते इच्छित फलकी अप्राप्ति में जैसें अप्सरान कूं मोह भयो, तैसें गाय भी मूर्च्छिता है गयीं। यहाँ उत्तम अधम दोनोंकौ रमणात्मक मध्यमाभिलाष निरूपण कियो है। रमण फलरूप मध्यमाभिलाष दोंनोंकूं असम्भव हो याते मोह भयौ । देवाङ्गना सात्त्विकी है। याते उत्तमा हैं। गाय तामसी हैं याते अधमा हैं । इन दोंनों कौ प्रभु सायुज्य रूप राजस भाव युक्त रमणाभिलाष हैं सो मध्यमाभिलाष है । अथवा यहाँ उत्तमा हरिणी कही, प्रभुकूं नेत्र दर्शनकरायकैं व्रजसीमन्तिनीनके नेत्रन कौ स्मरण करायौ। याते प्रभुकौ प्रियकार्यकियौ याते धन्यताकूं प्राप्त भयीं हरिणी उत्तमा हैं। और शृङ्गाररसके अनुभव करवेके योग्य गायन कौ एक हू अङ्ग न होयवेते गाय अधमा हैं । याते ही हरिणीन कूं और गायनकूं रसानुभव करनों असम्भव है याते गायनकूं मोह भयौ । यह मध्यमाभिलाष है । अथवा हरिणीन कौ मर्मस्पर्शि भगवद्दर्शनमात्राभिलाष है। गायन कौ अन्तर्दर्शनस्पर्शमात्र अभिलाषहै। अप्सरानकौ पूर्वप्रकार ते रमणाभिलाषहै। सो सर्वोत्तम है। याते रमणाभिलाषकी अपेक्षाते मृगीनकौ और गायनकौ अभिलाष मध्यम है।। याते कहै हैं कै देवस्त्रीतौ प्रभु इच्छाते काम के वशीभूत भयी, विमानमें ते भूमिपै भगवन्निकट नहीं आय सकीं, अधरामृत पान नहीं करसकीं । किन्तु गायतौ भगवद्भक्ता हैं नित्यसङ्गिनी हैं। प्रभु कूँ प्यारी लगै हैं, याते "उत्तभितकर्णपुटैःपिबन्ति' कर्णरूपी दोंनान कूं बनाय २ करकैं ऊँचे उठाय २ करकैं रसपान करै हैं किंतु पशुजाति होयवे ते विशेष रसानुभव करवे की योग्यता नहीं है, याते मोहिता है गयीं । यदि यह कहौ कै श्रीकृष्ण के संग में अन्य भी गोपबालक वेणु बजाय रहे हैं, याते उनके वेणुनाद में आसक्त भयीं गाय कानन कूं ऊंचे उठाय रही हैं । या शंका कूं दूर करती गोपी कहै है कै 'कृष्णमुखनिर्गत वेणुगीतं' श्रीकृष्ण के मुख ते निकसे वेणुगीत कूं श्रवण करवे के लियैं ही गाय कानन कूं ऊंचे उठाय रही हैं । यदि यह कहौ कै बहुत गोपन के संग में वेणु बजावते श्रीकृष्ण के वेणुगीत कूं श्रीकृष्ण के मुख देखे विना, और वेणुनाद में विलक्षणता पहचाने विना, ये पशुजाति गाय, यह कैसें जान सकै हैं कै

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

यह श्रीकृष्ण के मुखते निकस्यौ वेणुगीत है। तहाँ कहे हैं कै 'पीयूषम्' यह वेणुगोत तो अमृतरूप है। याते कै या वेणुनाद में कृष्ण सदानन्दके बिना अन्य कोई अर्थ प्रकट नहीं होय है। याते स्वतः ही जान्यों जाय है, कै यह वेणुगीत 'सदानन्द' पद वाच्य है। यद्यपि अन्यनें गायौ गीत अपने स्वरूपार्थ कौ वाचक होय ऐसौ कोई नियम नहीं है। तथापि भगवान्ते अधिकतौ कोई नहीं है। याते श्रीकृष्ण के मुखते निकस्यौ वेणुगीत तौ 'सदानन्द' वाचक है याते सदानन्द के गाये गीतमें तौ सदानन्द ही वाच्य अर्थ है। अन्यकृत वेणुनाद में तौ स, रे, ग, म, प, ध, नि, ऐसैं स्वरमात्रकौ रूप प्रकट होय है। याते श्रीकृष्णके मुखते निकसे वेणुगीत स्थित सदानन्द स्वरूपानुभवके अर्थ ही गायनकौ कर्णोत्तम्भन है। अन्य कृत वेणुनादते कर्णोत्तम्भन नहीं है। क्योंजो भगवन्मुखनिर्गत वेणुगीत तौ सब ही सदानन्द पद वाच्य हैं। तब पूर्वोक्त गीतकूं श्रवण करकैं देवाङ्गनान कूं रसानुभव कैसैं नहीं भयौ, ऐसी शंका में कहे हैं कै पूर्वोक्त गीत में सब सामग्री कृष्णपदके अन्तर्गत गुप्त ही रहीं। और यहाँ तौ गायनकूं रसानुभव करायवे के अर्थ प्रभुनें सब सामग्री गीत में प्रकट करी हैं। या जतायवे के लियैं ही गोपीननें यह कह्यौ है कै "कृष्णमुखनिर्गत वेणुगातपीयूषं" श्रीकृष्ण मुखते निकस्यौ प्रकट भयौ जो पीयूष रसात्मकस्वरूप सो गायननें कर्ण द्वारा अन्तःकरणमें अनुभव कियौ। भगवन्मुख, वाणी कौ अधिपति है भगवन्मुख अग्निरूप है। भगवत्स्वरूप में अग्निमुख गोलक रूप है। और वाणी विषयेन्द्रिय है। याते भगवन्मुखाग्नि वाणी को अधिपति प्रेरक है। या मुखाग्नि ते ही भगवद्विषयरूपावाणी निकसै है। वेणुई सो अन्य विषय कौ विस्मारक है। भगवद्विषयकौ बोधक है, गीत है सो ऐश्वर्यादि षड्गुणात्मक है याते या गीतमें सर्व सामग्री प्रकट हैं या जतायवेके लिये ही "कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीतं" इतनों परिकर कह्यौ है। यामें यह तात्पर्य है, कै पूर्व के श्लोकमें प्रभुनें सर्वसामग्री अपने स्वरूप के अन्तर्गत ही राखीं, याते भगवदिच्छाते देवस्त्रीनकूं रसानुभव नहीं भयौ मोह ही भयौ किन्तु गाय तौ भगवदीया हैं। भगवत्प्रिया हैं, नित्य सम्बन्धिनी हैं। याते प्रभुनें सर्वसामग्री प्रकट करकें गायनकूं रसानुभव करायौ है किन्तु गायनकी पशुजाति होयवेते विशेष रसपान करनों असम्भव है। याते यह कह्यौ कै यह कोई साधारण गीत नहीं है। जैसें गायन कूं रसानुभव होय, ता प्रकारते सर्व सामग्री प्रकटन पूर्वक गीत है। या जतायवे के लियैं ही 'कृष्णमुख' इत्यादि इतनों परिकर कह्यौ। याते ही अगारी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

गायनके हृदयमें प्रभुप्रादुर्भाव दर्शन स्पर्श भी कह्यौ है । याते आधिदैविक मुखाग्नि देवता सहित, वाक् इन्द्रिय सहित वेणुगीतके कथनते यह जतायौ कै ऐसौ आधिदैविक शब्द ही यथार्थ ज्ञानकौ जनक है। याते मुखाग्निदेवता, और विषयेन्द्रिय रूपावाणी ही वेणुनाद स्थित रसकी प्राप्ति में सामग्री हैं । याते वेणुनाद द्वारा अन्य विषयको विस्मृति में गायनकूँ रसानुभव सिद्ध है । जहाँ आधिदैविक मुखाग्नि देवतानके सम्बन्धमात्र ते आध्यात्मिका वाणी में और आधिभौतिक वेणु में भी रसोत्पादन करवे की सामर्थ्य हैं। तब साक्षात् आधिदैविक रसात्मक स्वरूप के सम्बन्ध में तौ रसकार्य सम्पत्ति कौ कहनौ ही कहा है । यहाँ तीनोंही करण-साधकतम, आधिदैविक रूपहैं। मुख है सो अग्नि देवता है । निर्गमनरूपावाणी है सो प्रभुकी विषयेन्द्रिय रूप है। और अन्य विषय कौ विस्मारक वेणु है सो षड्गुणात्मक नाद ब्रह्मकूं प्रकट करै है। ये सब आधिदैविकी सामग्री है शाब्दरसके रसके बोधमें शब्द ही करणरूप इन्द्रियरूप-साधनरूप है और गीत है सो ऐश्वर्यादि षड्गुणहैं स्वरूप में जाके ऐसौ गीत भगवत्स्वरूपात्मक है। किन्तु गीतके वाच्य अर्थ के अज्ञानमें रसात्मक स्वरूप कौ अज्ञान रहै है किन्तु यह शंका कृष्णपदार्थके कहवेते दूर भयी । या प्रकार सामग्रीते गीतको विशेषता कह करकें गीतकी स्वरूपते विशेषता कहै हैं कै 'पीयुषं' पूर्वोक्त गीततौ विचित्र हो याते सर्व नवरसात्मकहो, किन्तु यह गीततौ अमृतस्वरूपात्मक है। याते गीतषट् गुणात्मक है । याते गीतके अमृतस्वरूपात्मक होयवेते, अपने सदानन्द अर्थ कूँ स्वतः ही प्रकट करै है। गीत के रस स्वरूपज्ञान में अन्य साधन की अपेक्षा न होयवेते, और गीतके प्रमेय बलवान् होयवेते, गायन कौ पशुधर्म भी रसानुभव करवेमें बाधक नहीं है। और श्रीकृष्ण के मुखते निकसे गीत पीयूष कौ, तामें भी मुखते निकसे और गीत परम्परा सम्बन्ध ते प्राप्त भये पीयूषको जब ऐसौ प्रभाव है । तामें भी पशुजाति गायन में भी जब ऐसौ ब्रह्मानन्द रस प्रकट करै है । तब साक्षात्प्रभु के मुखते अधरामृत पान करवे वारी श्री स्वामिनीनके रसानुभवकौ तौ कहनों ही कहा है । ऐसी उत्कण्ठा जतायवे के लियैं भी व्रजगोपीन कौ निर्गमनादि पदन कौ कहनों है । और भगवन्मुखकौ अग्निरूप होयवे ते, साक्षान्मुखद्वारा अधरामृत पान करवे वारीनकूँ अधरामृत कदाचित् उत्कट तापभी प्रकट करतो होय, किन्तु यह गीत पीयूषरसतौ श्रीकृष्णके मुखते भिन्न होय करकैं निकस्यौ है, वेणुगीत सम्बन्ध परम्पराते प्राप्त भयौ है, याते यह पीयूष तौ सदैव आनन्दजनक है। तापजनक नहीं है । याते साक्षात्सम्बन्धके अनन्तर जैसौ ताप श्रीस्वामिनीनकूं भयौ, तैसौ ताप सम्बन्ध भये पूर्व नहीं हो । किन्तु मुखाग्नि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वेणुगीत किस प्रकार से षड्गुणात्मक रसात्मक सामग्री सहित भगवत् रूप है।

को ताप धर्म सहज है, याते सहज सम्बन्ध में कोई प्रकार ते किंचिन्मात्र ताप कू भी प्रकट करे है। या जतायवे के लियें भी 'कृष्णमुखनिर्गतादि' पदन कौ कथन है। याते अग्निरूप भगवन्मुखतापजनक सूचित कियौ। यद्यपि गोपी गाय, भगवन्मुखते निकसे वेणुगीतपीयूष कौ पान करे हैं। तथापि भगवन्मुखपीयूष के अति स्वादिष्ट होतवेते, और भगवन्मुखाग्नि के तापजनक होयवेते, भगवत्पीयूष विषयिणी परमार्ति ते पीयूष कौ बहुतपान करनों ही संभव है। या प्रयोजनसिद्धि के अर्थ भगवन्मुखाग्नि, किंचिन्मात्र तापजनक है। जाकूं भगवद्वियोगावस्था में ताप क्लेशनही होय, ताके अन्तःकरण में भगवत्प्रादुर्भाव नहीं होय है। अथवा 'निर्गमनंवाक्' या कौ यह अर्थ है। कै आसन्य रूप की निर्गमन दशा में परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वाणी को उल्लंघन करकें वैखरी रूप में जो वाणी कौ निर्गमन है। सो वाणी कौ प्राकट्य है। भगवत्स्वरूप में अग्नि देवता हैं। सो गोलक रूप हैं। वाणी कौ विषय हैं सो इन्द्रिय रूप हैं। यह द्वितीयस्कन्ध में कह्यौ है। याते कृष्णपद है सो सदानन्दवाचक है। 'मुख' पद है सो अग्नि देवतावाचक है। निर्गमन पद है सो भगवद्विषयिणी वाकूनिर्गमन रूप व्यापार विषयेन्द्रिय है। या प्रकार सर्व सामग्री कौ प्राकट्य है। अन्यथा यदि इतने पदत्रयते सामग्री के प्रकट करवे में तात्पर्य नहीं हो तौ, तब तौ 'कृष्णगीतपीयूषं' कृष्ण नें गायौ गीत अमृत रूप है। इतने कहिवे ते ही अर्थ सिद्ध हो, तब विशेष पदत्रय के कहवे की कहा आवश्यकता ही। याते यह गीत षड्गुणात्मक रसात्मक सामग्री सहित भगवत् रूप है। क्यों जी जब गायन कूँ रसानुभव हैगयौ तब गायन कौ कर्णोत्तम्भन कौ कौन अर्थ है। तहां कहे हैं कै या अधरामृत के अतिरिक्त अन्य कौ गानरस इन कर्णपुटन में प्रवेश न होय, याके लियें कानन कौ उठायवौ है। पुटशब्द में बहुवचन के होयवेते प्रत्येक पक्ष में बहुवचन प्राप्त होय है। याते रस के बहुत्व होयवे ते, रसपानार्थ ही क्षण क्षण में नवीन नवीन कर्ण रूपी दोंनान की रचना है। याते यह जतायौ। जैसें एक रसते भरें दोंना में दूसरौ रस नहीं समाय सकै है। तैसें एक एक क्षण के नादरस ते भरे कर्णपुट में द्वितीयतृतीयादि क्षण संबंधि नादरसकौ अवकाश नहीं है। याते द्वितीय तृतीयादि क्षण के नादरस के पानार्थ द्वितीय तृतीयादि कर्णपुटकी अपेक्षा आवश्यकीय है। याते प्रतिक्षण में नवीन नवीन कर्णपुटकी रचना है। अन्यथा प्रतिक्षण में कर्णपुट के अभाव ते द्वितीयादि क्षण कौ नादरस कैसें पान हो तौ, याते प्रतिक्षण में नूतन २ कर्णपुट की रचना है। यहाँ गायन के बहुत होयवे ते भी, पुटशब्द में बहुवचन है। यहाँ पुटशब्द ते रसपानार्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri.

भारतनिधि, करौंदा
वाराणसी-5

ही कर्णरूप दोंनान कौ प्रतिक्षण में संपादन है। एकबार रस के भरे पत्तान के दोंना में रस की चुसकी ही लग सकै है किन्तु पत्ता के दोंना में वारंवार बहुत रसन कौ बहुपान करनों कर्णपुटन कौ प्रतिक्षण में नूतनत्व जतावै है । यहाँ यह ज्ञातव्य है कै भगवत्संबंधि रस पदार्थ लौकिक इन्द्रिय ते ग्राह्य नहीं होय है किन्तु अलौकिक इन्द्रिय ते ग्राह्य हैं । अलौकिक इन्द्रिय कर कैं ही रसदान देनों ऐसी प्रभु की इच्छा ही यामें हेतु है । याते प्रभुदानेच्छा ते ही अलौकिक साधन संपत्ति भी सिद्ध भयी। याते अर्थ में कोई अयुक्ति नहीं है। क्यों जो रस के प्रतिक्षण में नूतन स्वीकार करवे में तौ रस के नित्यत्वकी हानि है। ऐसी शंका में कहै हैं । कै रस के नूतनत्व और नित्यत्व की व्यवस्था तौ पहलें 'चूतप्रवाल' या श्लोक की विवरण कारिकान में स्पष्ट कर आये हैं । याते रसोत्पत्ति प्रणाली विशेषते, रसप्रादुर्भाव प्रकार भेद में भी रस के नित्यत्व की हानि नहीं है। अब गौ आदि पशुबालकन की दशा कहै हैं कै—

(शावाः स्नुतस्तनपयः कवलाः स्मतस्थुः)

श्री कृष्ण के मुख ते प्रकट भये गीत पीयूष कूं कर्णपुटन के द्वारा पान करकैं गाय तौ जहां को तहां ठाड़ी हीं हैं किन्तु गायमृगी आदि अन्य पशून के दूध पीवते अति छोटे छोटे बालक हू, मैया के स्तनन ते ग्रहण कियौ दूध कौ कौर जिन के मुख ते निकस रह्यौ है । और 'तस्थु' अति छोटे २ बालकहू नादरस कौ पान करकैं नादरस में छके से थके से, चित्र के लिखे से जहां के तहां ठाढ़े हैं। बालकन की हू यह दशा है रही है। नादरस के ग्रहण में पयःकवल निगलवे की क्रिया निवृत्ति है रहो है । याते दुग्ध को कवल अन्तःप्रविष्ट नहीं होय है। मुखते पयःस्राव होय है। दुग्ध वाहिर निकस जाय है। याते गाय के और अन्य पशून के अति छोटे छोटे दूध पीवे वारे बालकन की अति आश्चर्यजनक दशा जतायवे के अर्थ, यहां 'वाला' पद नही कह्यौ । 'शावाः' पद कह्यौ है। कारण कै यह लीला उत्थापन समय की है। याते गायन के किंचित् बड़े वत्सातौ व्रज में गायन के खिरक में ही बँधे हैं । यहां वन में नहीं आये हैं । तिन कौ तौ यहां दूध कौ ग्रहण करनों उगलनों संभव नहीं है । याते यहां हरिणी गाय आदि सब ही पशून के दूध पीवते बालक जानने । अथवा यह लीला संध्या समय की है। वनते व्रजमें आये पश्चात् किंचित्प्रौढ़ वत्सान को भी स्तन्य ग्रहण करनों उगलनों बन सकै है । याते उनमें अतिपद नहीं कहनों, छोटे-छोटे बालक ही कहनों ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नाद ब्रह्मकूँ श्रवण करक नादरसके ग्रहण करवे में दुग्धकवल निगलवे की क्रिया निवृत्ति होयवेते दुग्ध उदर में नहीं जाय है। दुग्ध वाहिर निकस जाय है। किन्तु दूधके ग्रहण करवे में और निगलवे में समय नहीं जान्यो जाय है। याते संदेह होय है। कै बालक दुग्धकवल कूं निगलैं हैं। वा नहीं निगलैं हैं। या संदेह के निवारणार्थ प्रसिद्ध वाचक " स्म " पद कह्यौ, अर्थात् हम प्रत्यक्ष देख रहीं हैं। कै व्रत्सान के मुखते दूध निकस रह्यौ है। या प्रकार गौ और वत्सान की ऐसी स्थिति कही। तहाँ गायन में मोह कह्यौ। वत्सान के मुखते पयःस्राव कह्यौ। गौ और वत्सा दोनोंन की क्रिया निवृत्ति कही। अत्र दोनों की क्रिया निवृत्ति में हेतु कहें हैं। कै—

" गोविन्द मात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः। "

अश्रुकला हैं दृष्टि में जिनकै अर्थात् अश्रुविन्दून ते ढकी दृष्टिते अपने अन्तःकरण में गोविन्द प्रभुकौ दर्शन स्पर्श करै हैं। इन गौवत्सान की क्रिया निवृत्ति में यह कारण है। इन गौवत्सान कूं कोई वाहिर के दुःख कौ भान नहीं है। कारण कै अपने अन्तरात्मा में अश्रु आच्छादित दृष्टि ते गोविन्द प्रभुकौ दर्शन स्पर्श करै हैं। यद्यपि यहाँ " स्पृशन्त्यः " या स्त्रीलिंग के प्रयोग ते, प्रभुकौ स्पर्श गायन कूं ही कह्यौ है। तथापि दोनों की क्रिया निवृत्ति ते और दोनों के समान व्यवहारते " स्पृशन्त्यः " यह स्त्री लिंग पद वत्सान के भी दर्शन स्पर्श कौ बोधक है। याते किंचित्प्रभुकौस्पर्श वत्सान कूं भी होय है। गायन कूं तौ पूर्वोक्त प्रकारते रस पान है। याते सर्वथा रसानुभव होय है। याते देहाध्यास के न रहवे ते कोई वाहिर के दुःखकौ भान नहीं है। सोभी भावना मात्रही दर्शन स्पर्श नहीं है। किन्तु रसात्मक स्वरूप कौ हृदय में प्रादुर्भाव है। यह भी " स्म " पदते सूचित कियौ। अन्यथा यदि गायन के हृदय में गोविन्द प्रभुकौ प्रादुर्भाव नहीं होतौ। तब क्रिया निवृत्ति-पूर्वक निश्चल भावते स्थिति और ब्रह्मानन्द तुल्यता की स्फूर्ति कैसें होती, याते हीन जाति गायन के हृदय में परब्रह्म के प्रादुर्भाव ते ब्रह्मानन्द की स्फूर्ति में ही दर्शन स्पर्श कौ संभव है। अब गाय वत्सान कूं प्रभुके वाहिर के अदर्शन में हेतु कहै हैं कै " अश्रुकलाः " अश्रु हैं नेत्रन में जिनकैं याते अश्रून ते ढकी हैं दृष्टि जिनकी ऐसी गायन कूं प्रभुकौ वाहिर दर्शन नहीं होय है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और गायन कूं मोह है सो काम वाधाते नहीं है । याते कै गायन की पशुजाति होयवे ते काम वाधा तो अन्य पशुते ही दूर है सकै है । याते कामकृत मोह नहीं है । गायन के मोह में तो भगवद्दर्शन स्पर्श ही कारण है । हीनजातीय गौऊन के हृदय में भगवत्प्रादुर्भाव कौ होनों दोषरूप नहीं है । याते कै । गोविन्द प्रभुतौ गौऊन के इन्द्र हैं याते गायन के हृदय में गोविन्द प्रभुकौ पूर्ण प्रादुर्भाव है । याते गोविन्द पद कह्यौ । या पुष्टिमार्गीय गोविन्द चरित्र में मर्यादा मार्ग कौ उल्लंघन है । या चरित्र की अनुभव करवे वारी गाय हैं। यावत्पर्यन्त अन्यपूर्वा गोपिका कृत वर्णन है॥ १३॥

अथ श्रीहरिरायजी कृत स्वतंत्र लेखानुवाद कौ प्रारंभ करै हैं । क्योंजी वेणुनाद कौ भगवद्भावोद्बोधक सहज धर्म है । तब वेणुनाद कूं श्रवण करकैं, अप्सरान में कामभावोदय के होयवेते मोहोत्पन्न कैसैं भयौ । या संदेह में भगवत्कृपाते मोकूं यह प्रतीत होय है कै वेणुनाद स्वस्वभावते सबकैं प्रथमतौ कामभावोदय ही करै है याते कै " मन्मथस्याग्रदूतः " वेणुनाद कामकौ अग्रदूत है । याते प्रथमतौ वेणुनाद कामकूं ही जाग्रत करै है । याते वेणुनाद कूं श्रवण करकैं देवस्त्रीन में काम भाव ही उत्पन्न भयौ । यह पहलैं भी कहि आये हैं कै—

" वेणुगीतम् स्मरोदयम् नाशकन्स्मरवेगेन । "

इत्यादि वाक्यन ते कामोदय कौ होंनों स्पष्ट है । याते वेणुनाद कूं श्रवण करकैं प्रथम तौ श्रीस्वामिनीन कैं भी काम भावोदय ही भयौ । याते प्रभु जाके विषें स्वामिनीन की भाँति वेणुनाद द्वारा प्रवेश करवे के अर्थ वेणुनाद करै हैं तथा सरिता सरोवर वृक्षलतादि के मध्य में स्वामिनीन के संग विहार करवे के अर्थ सरिता सरोवरादिकन कूं तन्मात्रलीला संबंधि कार्योपयोगि बनायवे के अर्थ वेणुनाद करै हैं । अथवा मृगी आदि कूं स्वामिनी भाव समान दृष्टि ते देखवे के अर्थ हरिणी आदि में प्रवेश करवे के अर्थ वेणुनाद करै हैं । तब तत्तत् वेणुनाद द्वारा स्वाधिकारानुसार ही भगवद्भाव कौ उदय होय है । याते वेणुनाद कूँ श्रवण करकैं अप्सरान कूं प्रथम काम भावके उदय होयवे ते मोह ही भयौ, रसानुभव नहीं भयौ ऐसैं ही युगल गीत कूं श्रवण करकै ब्रह्मादि देवतान कूं काम भाव द्वारा मोहही भयौ, रसानुभव नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भयौ। क्योंजी भगवान निष्प्रयोजन तौ कोई कार्य नहीं करै है। तब अप्सरान कूं वेणुनादके श्रवण करायवे में कहा प्रयोजन सिद्ध भयौ। ऐसी आकांक्षा में कहे हैं। कै अप्सरान कूं वेणुनाद श्रवण करायकैं अपने निकट बुलायकैं अपनों दर्शन करायकैं मोहोत्पन्न करकैं प्रभुकूं अप्सरान के द्वारा अपनों वीर्य बोध करामनो हो, याते वेणुनाद कियौ। याते ही श्री आचार्य जी नें विभूति कारिकान में कह्यौ है कै "वीर्यं देवेषु तत्रापि स्त्रीषु" इत्यादि सं अप्सरान के द्वारा भगवद्वीर्य बोध करायौ है। ऐसैं ही गायन कूं भी प्रथमतौ वेणुनाद श्रवण करकैं कामभाव के उदय होयवे ते देव स्त्रीन की भाँति मोह ही भयौ। सोही श्रीआचार्य जी नें "गावश्च" या पदमें चकरार्थ ते यह अर्थ कह्यौ है। कै अप्सरान भाँति गायन कूं भी मोह भयौ, पश्चात् भगवदीय भाव के होयवे ते अपने अन्तर में भगवत्स्पर्शाङ्गसंगादि धर्मन करकैं युक्त भयीं, भगवत्कृपा विशेष ते, स्वामिनीन में जैसैं, तैसैं गायन में वेणुनाद द्वारा प्रवेश करवे के अर्थ, जो सामग्री ता वेणुनाद में प्रभुनें प्रकट करी है। तासामग्री के बोध करायवे के अर्थ ही विशेष पदन कौ कथन है। याते यह नाद पूर्व के नादते अधिक सामग्री विशिष्ट है। याते यह 'बर्हापीडं' पद्य में निरूपण कियौ स्वरूपात्मक वेणुनाद सदानन्द प वाच्य है। यहां यह भाव है कै यहां कृष्ण कौ गीत ऐसैं दूर में अन्वय करनो इच्छित है। यह ज्ञात होय है अन्यथा 'कृष्णगीतपीयूषं' कृष्ण नें गायौ गीत पीयूष है। ऐसैं कहनो हो। किन्तु मध्य में जो (मुखनिर्गतवेणु) यह पदत्रय विशेष हैं। याते अग्रिम ग्रन्थ कूँ विचार पूर्वक देखवे ते, यह ज्ञात होय है। कै यहाँ कृष्ण पद कौ दूर में गीत में अन्वय करनों इच्छित है। याते वाच्यता के संबंधते गीत में कृष्ण है। कृष्ण पद कौ अर्थ सदानन्द वाच्य है। यह कृष्ण सदानन्द श्री स्वामिनीन कौ गूढभाव है। याते गायन के हृदयान्तर में अपने स्त्री गूढभावात्मक स्वरूप कूँ अनुभव करायवे के अर्थ, स्त्री गूढ भावात्मक भाव ही प्रभु नें वेणुगीत द्वारा गायन के लिये दान दियौ है। ऐसैं माननौं चहिये। और बाह्यरस के अनुभव में जैसैं कामभाव आवश्य है। तैसैं आन्तर रसानुभव में तापभाव भी कारण है याते तापभाव कौ दान करनों हू प्रभु कूं आवश्यक है। याते गीत में परम्परा संबंध ते मुख कौ संबंध भी निरूपण कियौ। प्रभु के साक्षात्संबंध में काम भाव के होयवे ते, बाह्य संबंध के अभाव में काम की अति असह्यता ते शरीर भी स्थित नहीं रहिसकै है। याते ही रास पंचाध्ययी में प्रथम संयोग रसानुभव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कराय करकै पश्चात् युगल गीत में केवल आन्तरानुभव करायौ है । व्याख्या में जो मुख कूं वाक्पति कह्यौ है सो मुख कूं वाणी कौ प्रेरक करवे के अर्थ है । अन्यथा मुखाग्नि के प्रेरे बिना, वेणु में वाणी कौ संचार नहीं हो तौ । याते वाणी के द्वारा वेणु में तापभाव कौ भी संबंध है । क्यों जी मूलश्लोक में वाणी कौ निरूपण तौ नहीं है किन्तु नादमात्र कौ निरूपण है । जा वाणी के द्वारा वेणु में ताप भाव कौ संबंध कह्यौ है । ता वाणी कौ या श्लोक में निरूपण नहीं है तहां कहै हैं कै (निर्गमनंवाक्) यह फक्किका श्री आचार्यजी नें श्री सुबोधिनी में कही है । याते गीत के मुखते निकरवे ते, गीत की विशेषणी भूत निर्गमन क्रिया ही वाणी रूपा है । भगवद्वाणी, कोई लोकवाणी की भाँति तालु ओष्ठ पुट व्यापार जन्या नहीं है । याते ही भगवन्निःश्वन क्रियारूपवेदन कूं भगवद्वाणी कह्यौ है । याते ही (प्रजापतिर्हिवाक्) निश्चय ही यह वेदवाणी भगवत् रूपा है । या श्रुति में प्रजापति भगवान् कूं वेदात्मक रूप ते वाणी रूप कह्यौ है । और प्रभु के आन्तर अनुभव में वाहिरी ज्ञान कौ अभाव हू अपेक्षित है । याते बाहिरी ज्ञान के अभावार्थ वेणु संबंध भी कह्यौ । कारण कै वेणु भगवत्स्वरूपातिरिक्त अन्य सर्व पदार्थन कौ विस्मारक है तथापि पशु जाति गायन कौ शरीर रसानुभव करवे के योग्य न होयवेतें ये सब सामिग्री व्यर्थ हैं । या सामग्री की व्यर्थता कूं दूर करवे के लिये 'गीत' पद कह्यौ । गीत हैं सो षड्गुणात्मक है। अपने असाधारण ऐश्वर्यादि षट् गुणनके द्वारा भगवत्स्वरूप कौ बोधक, है । याते कै 'भगवानिति शब्दते' या वाक्यते, भग, नाम षट् गुण ऐश्वर्यवान सो भगवान् । याते गीत भगवद् वाच्य है याते ही वेद भी सब गुण द्वारा ही सर्वात्मकभावते भगवत् वाचक हैं, 'वेदैश्चसर्वैरहमेववेद्यः' भगवद्गुण वर्णन द्वारा ही वेदनकौ ब्रह्मात्मक भावसिद्ध है समस्त वेदनकी श्रुति भगवान् के ऐश्वर्यादि गुणन की और भगवत्स्वरूप की ही प्रतिपादन करवेवारी हैं । याते ही "बन्दिनस्तत्पराक्रमैः" या वाक्यते श्रुतीनकूं वन्दीजन कह्यौ है । ऐसैंही या गीतके भगवत् वाचक होयवेते, या गीत की असाधारण षड्गुणरूपता भगवत्ता है । यह गीतही गायनके देहमें रसानुभव करवे की योग्यता कौ सम्पादन करें है । या गीतते ही गायनकूं अपने पशुस्वभाव विस्मृति पूर्वक अपने में स्वामिनी भावकी स्फूर्ति होयवेते गायनकूं भावात्मक स्वरूप सौन्दर्य अधरामृत कौ हृदयान्तर में रसानुभव निर्विघ्न प्राप्त भयौ । यह यशोरूप वेणुगीत कार्य है ऐसे असाधारण कार्य के करे बिना, भगवत् यश नहीं हो तौ ऐसी अयोग्य पशुजाति निस्साधन गायन कूं रसानुभव करवे की योग्यता सम्पादन करनों भगवत् यशः कार्य है ॥ १३ ॥

यह सम्पूर्ण चरित्र श्रीवल्लभाचार्यवरणन में घटै है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैसैं मृगीनकूं कृष्णसार मृगन के सङ्गते और गायनकूं भगवत्कृपाते ज्ञान प्राप्त भयौ याते वेणुनाद में रसानुभव कियौ। तैसै इन पक्षीनकूँ भक्तजन संगके अभावते और ज्ञानके अभावते, इन पक्षींनकूं तात्पर्य निर्धार पूर्वक वेणुनाद श्रवण असम्भव है। ऐसैं मान करकैं पक्षीनको मुनि भावनिरूपण पूर्वक वेणुनाद कौ श्रवण वर्णन करै हैं।

प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन् कृष्णेक्षणास्तदुदितं कलवेणुगीतम्।
आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान् शृण्वन्ति मीलितदृशो विगतान्यवाचः॥१४॥

हे अम्बा! बहुधा करकैं या वृन्दावन में जे पक्षी हैं, ते मुनिजन हैं 'बत' यह पद खेद और हर्ष अर्थ में हैं। याते खेद प्रकट करै हैं कै इन मुनीननें पक्षीनके देह कैसैं पाये। अथवा हर्षते कहै हैं कै इन मुनीन नें पक्षी देहते सुन्दर उपाय रच्यौ है। कै प्रभुकी अन्तरङ्गलीला, या पक्षि देहते देखैंगे, ये पक्षिरूप मुनिजन, सुन्दर सुन्दर पल्लवधारी द्रुमडारीनपै बैठ करकें श्रीकृष्ण के दर्शन करै हैं और मूंदे हैं, नेत्र जिननें त्यागी हैं अन्य विषय वार्ता जिननें श्रीकृष्णने गान किये मधुर वेणुगीत कौ श्रवण करै हैं॥ १४॥

व्याख्या-पक्षीनकूं अत्यक्त मधुर वेणुगीत श्रवण करनों, भक्त सङ्ग के विना और ज्ञानके विना वेणुगीत श्रवण करनों असम्भव है। ऐसैं मान करकैं, व्रजगोपी, पक्षीनकी मुनिसंभावना निरूपण पूर्वक पक्षीन कौ वेणुगीत श्रवण करनों वर्णन करै हैं। यहाँ श्रवणकौ अर्थ यह है कै शाब्दशक्ति तात्पर्य निर्धारपूर्वक वेणगीत में रसात्मक स्वरूप कौ अनुभव करनों है। याते पक्षीननें वेणुगीत स्थित सर्व तत्त्व जान्यों यह भाव है। श्रीवल्लभाचार्यजी कहै हैं कै या लीलासृष्टिस्थलोक में लक्ष्मी ते ही सब की प्रशंसा है। लक्ष्मी के प्रवेशते ही सब भक्त रसानुभव करै हैं। लक्ष्मीही समस्त भोगन की परमावधि है यदि प्रभुके सेवकहू परम भोग भोगैं तब ही स्वामी कौ परम सौभाग्य प्रकट होय है। यह या लोकमें भी प्रसिद्ध है। श्रुति कहै है कै—

"यदा खलु वै पुरुषः श्रियमश्नुते वीणास्मै वाद्यते"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जा समय पुरुषोत्तम प्रभु लक्ष्मी के संग रमण करैहैं तब युगलस्वरूपकी प्रसन्नताके अर्थ आनन्द लक्षण वीणा बजै है यहां 'वीणा' पद मधुरनाद कौ उपलक्षक है याते मधुर शब्द ध्वनि होय हैं। या श्रुतिके कथनानुसार यहाँ समस्त भगवदीयपक्षीकं नादामृत कौ भोग सिद्ध है। तामें भी भगवान् नीचें ठाड़े वेणु बजाय रहे हैं पक्षी सब द्रुमशाखानके ऊपर बैठे, या लोक परलोक के समस्त पदार्थन कूं और अन्य समस्त विषय वार्तानकं त्याग करकै सबते निरपेक्ष होय करकैं नादामृत कौ अनुभव करै हैं। जब जा प्रभु के पक्षी रूपधारी मुनिजन सेवक ऐसे हैं। तब ऐसे स्वामी की लक्ष्मी कौ तौ कहनौं ही कहा है। यहां पक्षिस्थिता कार्यरूपार्थाते, कारणरूपा प्रभुश्रीकौ बोध होय है; व्रजगोपी, अपने मनमें विचार करै हैं कै भक्त सत्संग के बिना तौ भगवत्स्वरूपकौ ज्ञान नहीं होय है। और प्रभुस्वरूपज्ञानके बिना वेणुगीतकौ आसक्तिपूर्वक श्रवण करनों नहीं बन सकै है किन्तु ये पक्षीतो वेणुगीत कूं आसक्तिपूर्वक श्रवण कर रहे हैं याते ये पक्षी कौन हैं। प्रायः ये वृन्दावनके पक्षी मुनिजन हैं, ऐसौ निश्चय करकैं गोपी कहै हैं कै 'प्रायोबताम्ब' हे अम्ब ! हे मातर्यशोदे ! या वृन्दावन में जे पक्षी हैं ते प्रायः मुनिजन हैं। यहां वर्णनीय चरित्र गुणातीत मुनीनको है। याते वर्णन करवेवारी गोपीहू निर्गुणा हैं याते ही श्रीयशोदाजीके संग इनको स्नेह है। अथवा ये गोपी श्रीयशोदाजी के गृह में रहवेवारी कन्या हैं। जैसैं श्रीनन्दराय जीके गृह में गोधन, रत्ननको संग्रह हौ, तैसैं ही सुरूप, सुगुण, सुलक्षण, लावण्यवती उत्तमा कन्या भी श्रीनन्दरायजीनें राजानके देवे के लियें, अपने द्रव्यते खरीदकैं, अपने घरमें ही इन कन्यानकौ पालन कियौ है। याते ये यशोदा नन्दगोप कुमारिका कन्या हैं। याते ही हे अम्ब ! ऐसौ संबोधन है। ये कुमारी कन्या, सिद्ध पुरुष की भाँति इन पक्षीनके पूर्व जन्म की बात जानें हैं पक्षीनकूं मुनि बतामें हैं, याते ये कन्या कौन हैं; कदाचित् श्रीयशोदाजी कूँ यह संदेह न है जाय याते 'प्रायः' पद कह्यौ है। प्रायः ये पक्षी मुनिजन प्रतीत होंय हैं। 'बत' यह खेद में है, कै हमकूं या विचारते खेद होय है, कै इन पक्षीरूप मुनीननें ऐसी निकृष्ट योनि कैसैं पाई। अथवा 'बत' पद हर्ष में है। अरी इन पक्षी रूप मुनीननै पहलैंही विचार करकैं यह सुन्दर उपाय रच्यौ है, कै या पक्षि रूपते हम सर्वत्र स्थलन में जाय सकैंगे प्रभुकी गोप्य प्रकट सब ही लीलानकूँ देख सकैंगे। याते ये पक्षी मननशील मुनिजन हैं। हे अम्ब, यह संबोधन दयाके अर्थ है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

याते कै सदा इनकूं भगवन्निकट में ही राखे याके लियें है। कोई टीकाकार ऐसैं कहें हैं कै इन वर्णनकर्त्री गोपीन के हृदय में भगवत्स्वरूपकौ प्रादुर्भाव है। याते सर्वात्मा भगवान् की माता सो सबकी माता याते "हे अम्ब" ऐसो संबोधन है। किन्तु ये वर्णनकर्त्री अग्निकुमारिका तौ आगारी कात्यायनी देवी ते श्रीकृष्ण के पति होयवे की प्रार्थना करैंगीं याते यह व्याख्यान असमंजस है। याते सुबोधिनी में केचित्पद कह्यौ है। स्वसिद्धान्त में तौ ये वर्णन कर्त्री नन्दगोपगृह की कुमारिका कन्या हैं। और भिन्न पक्ष में भी 'हे अम्ब' यह संबोधन दया के अर्थ घटै है। इन वर्णनकर्त्री अग्निकुमारिकान के वाक्यते तौ यह सिद्ध होय है। कै ये विहग पक्षी प्राय करकें मननशील मुनि जन हैं। याते ये यह जानें हैं। कै या वेणुगीत में प्रभुस्वरूपसौन्दर्यामृत कौ प्रादुर्भाव होयगौ। याते पहलै ही यह जान करकैं पक्षिरूप धरकैं या वृन्दावन में या वेणुनाद कूं या प्रकारते संलग्न चित्त होयकर श्रवण करै हैं। ये वर्णन करवेवारी अग्निकुमारिकाहू ऋषि रूपा हैं। याते इन पक्षीन कूँ वेणुगीत के श्रोता दोनों स्वयं ही प्रतिपादन करै हैं। कै 'ये विहगाः' जे विहग हैं ते शब्दगुण आकाश में विचरवे वारे हैं। ते मननशील मुनि जन हैं। शब्द स्वरूप कूं भले प्रकारते जानें हैं। यातेही या वेणुनाद कूं एकाग्रचित्तते तत्वज्ञान पूर्वक श्रवण करैं हैं। या अव्यक्त मधुर वेणुगीत कौ श्रवण करनों ही मुनित्व में हेतु है। मननशील होयवे ते ही यह जानें हैं। कै यह वेणनाद स्वरूप सौन्दर्य सुधा संयुक्त है। यह जानकें ही आसक्तिपूर्वक वेणुगीत माधुर्य कौ श्रवण करै हैं। यातेही या वृन्दावन में 'कृष्णेक्षणाः' "कृष्णार्थमेव क्षणो येषाम्" कृष्ण के अर्थही हैं क्षण जिनके भगवत् भावना में ही अपने क्षणन कू व्यतीत करै हैं। अथवा "कृष्ण एव ईक्षणं येषाम्" कृष्ण में ही संलग्न हैं दृष्टि जिनकी, ऐसे ये पक्षीरूपी मुनिजन हैं।

"भगवन्तं पश्यन्त एव, तदुदितं कलवेणुगीतं द्रुमभुजानारुह्य शृण्वन्ति"

जब प्रभु व्रजते वनकूं पधारें हैं तब ये पक्षी वृक्षन की सुन्दरपल्लववारी द्रुम शाखान पै चढ़ करकैं प्रभुकी बाट देखते उतही कूं दृष्टि लगायें रहे हैं। भगवद्दर्शन करते-करते प्रभुके गान किये अव्यक्त मधुर वेणुगीत कूं श्रवण करते रहे हैं। ये पक्षी द्रुम शाखान पै बैठे ही प्रभुकौ दर्शन करते-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करते ही प्रभुके कलवेणुगीत कौ श्रवण करै हैं । द्रुमशाखान पै बैठे ये पक्षी यावत् प्रभुके वेणुनाद कूं नहीं सुनें हैं यावत्काल पर्यन्त भगवत्स्वरूप कौ दर्शन ही करते रहे हैं किन्तु जा समय पुनः प्रभु वेणुनाद कौ प्रारंभ करै हैं। ता समय प्रभुकौ रूप दर्शन भी करै हैं और वेणुनाद कौ श्रवण भी करै हैं। और जा समय प्रभु दूर अन्यत्र स्थल के लियें गमन करैं हैं, तब ये पक्षिरूप मुनि यह विचारैं हैं। कै प्रभुके संग उड़ करकैं चलवे में यह वेणुनादस्थित सुधा माधुर्य रस जातौ रहैगौ, याते उड़ करकैं नहीं जाँय हैं। द्रुम शाखान पै बैठे ही वेणुनाद स्थित सुधारस कौ अनुभव करै हैं। ता समय "मीलित दृशो विगतान्यवाचः शृण्वन्ति" मूंदे हैं नेत्र जिननें, त्यागी हैं अन्य विषय वार्ता जिननें, ऐसें नेत्र मूंद करकैं, मौन धारण करकैं ध्यानपूर्वक वेणुगीत माधुर्य रसास्वादन करै हैं। कदाचित हमारे यहाँ वृक्षन पै बैठे रहिवे ते, प्रभुके दर्शन विना, वेणुनाद स्थित रस, कोई अन्य लौकिक रसकूं प्रकट नहीं कर देय, तबतौ भजनानन्द में प्रतिबंध होयगौ। याते उड़ करकैं चलनों चहिये, ऐसी शंका नहीं करै हैं, कारण कै उड़ करकैं चलवे में ऐसौ आनन्दानुभव नहीं होयगौ। याते द्रुम डारीन पै बैठे नेत्रन कूं मूंद करकैं अन्य वार्तान कूं त्याग करकैं वेणुनाद रसानुभव करै हैं। कारण कै 'कलवेणुगीतं' अव्यक्त मधुर वेणुगीत है। और 'तदुदितं' ता भगवान् के मुखते प्रकट भयौ है। नाद ब्रह्मात्मक है। और वेणु है सोहू अव्यक्त मधुर है माधुर्य रसात्मक है। याते या वेणु ते हू माधुर्य रसही उत्पन्न होय है याते वेणुनाद अन्य लौकिक रसकूं उत्पन्न नहीं करैगौ। याते अन्यरस की निवृत्ति कही। या प्रकार वेणु-नाद कौ कलत्व कहिकैं, अब गीतकौ कलत्व कहै हैं कै "कलवेणुगीतं" वेणु में जो गीत है सो कल है। अव्यक्त मधुर है। कारण कै 'तदुदितं' भगवतोक्त परमार्थ वस्तु कौ प्रतिपादक है। यहाँ 'तदुदितं' यह विशेष्य पद है। भगवान् नें कह्यो है। या कहवे ते लौकिक पदार्थ की निवृत्ति कही। और गीतस्थित स्वरूप माधुर्य रस कह्यौ। या प्रकार एक ठिकानें "कलवेणुगीतं" विशेष्य पदकौ "तदुदितं" विशेषण है। द्वितीय ठिकानें "तदुदितं" विशेष्य है "कलवेणुगीतं" विशेषण है। ऐसें इन दोंनों पदन कौ परस्पर में विशेष्य, विशेषण भाव है। याते प्रथम पक्ष में यह अर्थ कियौ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कै ये पक्षी रूपी मुनिजन वृक्षशाखान के ऊपर चढ़कैं अव्यक्त मधुर वेणुगीत कूं श्रवण करै हैं। गीत कैसौ है कै 'तदुदितं' भगवानने गान कियौ है। द्वितीय पक्ष में यह अर्थ कियौ है कै ये पक्षी द्रुमशाखान पै चढ़ करकैं 'तदुदितंशृण्वन्ति' भगवत्कथित वेणु गीत कूं श्रवण करै हैं। भगवत्कथित कैसौ है कै 'कलवेणुगीतं' अव्यक्त मधुर शब्द हैं जामें ऐसे वेणु के द्वारा गान कियौ है। यहाँ उदित कौ अर्थ कथित कियौ। जैसैं वेदपाठी विद्यार्थी वेद शाखान के ऊपर आरूढ़ होयकैं भगवतोक्त परम तत्व के प्रतिपादक, वेदन कूं श्रवण करकैं भगवत्तत्व कूं हृदयंगम करैं हैं। ऐसैं ही ये विहगरूपी मुनि द्रुमशाखान के ऊपर आरूढ़ होय करकैं पतन मारणादि शंका कूं त्याग करकैं निश्चिन्त भये भगवत्कथित गीतकौ श्रवण करै हैं। जब भगवान् दूर जाँय हैं। तब भगवद्दर्शन के विना, मन कहूं अन्यलौकिक विषय में नहीं चल्यौ जाय, याते भगवद्दर्शन के अभाव में अपने मननाभ्यासते नेत्रन कूं मूंद करकैं, और "विशेषेणगता अन्यविषयिका वाचो येभ्यः" विशेष करकैं त्यागी हैं, अन्य विषयवार्ता जिननें, ऐसैं मौन धारण करकैं वेणुनाद श्रवण करैं हैं। याते ये पक्षी मुनिजन हैं। इन पक्षीन कैं भगवत् उपयोगी वाणी कौ त्याग नहीं है या जतायवे के लियैं यहाँ अन्यपद कह्यौ है। ऐसौ अभ्यास इन पक्षी रूप मुनान कौ सदा कौ है। अन्यथा वेणुगीत श्रवण समय में वाणी कौ रोकनों प्रतिबंध रूप नहीं है। श्रवणकाल में तौ वाणी स्वयं ही रुकी रहे है। तब 'विगतान्यवाचः' गोपीन कौ यह कथन निरर्थक है। याते यह पक्षिरूपी मुनी अपने हृदय में सदा ही रसानुभव करै हैं, यह ज्ञापित होय है। या कथन ते वेणुनाद कौ अलौकिकत्व और दुर्लभत्व सूचित कियौ। कारण कै ऐसे मननशील मुनीन की आसक्ति लौकिक पदार्थन में नहीं होय है। अब इन पक्षी रूप मुनीन कूं शर शस्त्रादि भय कौ अभाव कहे हैं कि 'रुचिरप्रवालान्' आम्रादि वृक्षन के हरे २ लाल २ नवीन चिकने कोमलपत्र अति मनोहर हैं। याते ये पल्लवदृष्टि मूंदवे में भी कारण हैं। यदि नेत्रन कौ मुद्रण नहीं करै तौ, पल्लवन कौ दर्शन होय, मुखमुद्रण में भी ये ही कारण हैं। अन्यथापल्लवन कूं खायवे लग जाँय, परस्पर में कोलाहल कौ भी सम्भव है, तथा परस्पर में शकुनसम्भाषण पदार्थन कौ निरूपण ही करवे लग जाँय, याते नेत्रमुख मूंद राखे हैं। यद्यपि पूर्वोक्त कारण सब मुनि भाव के साधक हैं तथापि मेरे मन में ऐसैं प्रतीत होय है कै ये पक्षिरूपी मुनी नादरसपरायण हैं। याते स्वरूप सौन्दर्यरसानुभव में जो अन्तराय परै है ये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ताकूं भी सहन करें हैं। याते यहाँ यह तात्पर्य है के 'आरुह्ये'द्रु मधुमान् रुचिर प्रवालान्' यद्यपि इन पदन को तात्पर्य पहले कह्यो है। किन्तु यहाँ एक यह भी तात्पर्य है कै कदाचित् वेषभूषणशय्यादि रचना के अर्थ, यदि सुन्दर २ फूल फल पल्लवादि के लेवे के अर्थ, इन वृक्षन पै प्रभु को अथवा भक्तन को आरोहण होयगो तो स्वरूपसान्निध्यरस को भी अनुभव होयगो, या आशा तें वृक्ष शाखान के ऊपर अवरोहण है 'रुचिर प्रवालान्' या विशेषणपद को यह तात्पर्य है कै यदि हम नेत्रन को निमीलन नहीं करेंगे तो, भक्तन को वृक्षन के ऊपर चढ़वे में निश्शंक प्रवृत्ति नहीं होयगी। याते नेत्रन को मींचनों है॥ १४॥

अब वेणुनाद ते नदीन में जो भाव उत्पन्न भयो, व्रजगोपी ता चरित्र को वर्णन करे हैं कै—

"नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीतमावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः।
आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारेर्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः॥१५॥"

जा समय प्रभु वेणुनाद करे हैं ता समय नदी, सरोवर, ह्रदिनी सब, ता मुकुन्द गीत कूं अपने समीप में श्रवण करकें भौंररूपामूर्छा ते जान्यौ जा है भगवत्कामभाव जिनकें याते रुक्यो है प्रवाहवेग जिनको, ऐसो भयीं नदी, सरोवर हैं ते नदीन के जलस्पर्श करने के अर्थ, तट के ऊपरस्थित भये मुरारि प्रभु के पादयुगल कूं कमलन की भेट लै करकें अपनी ऊर्मिरूपा भुजान ते ग्रहण करे हैं॥ १५॥

व्याख्या—श्रीवल्लभाचार्यजी कहे हैं, कै या श्लोक में ज्ञान को वर्णन है। ज्ञान को उत्कर्ष (बड़प्पन) जब ही जान्यो जाय है जब स्वभाव को विजय है जाय, याते सर्वदा वेगवती नदीन के वेग रुकवे ते स्वभावविजय लक्षण ज्ञान नदीन में प्रकट है। जब प्रभु की सेवाकर्त्री नदीन में ही ऐसो ज्ञान है तब प्रभु के कारण ज्ञान को तो कहनों ही कहा है। गोपी कहे हैं कै 'नद्यः' यद्यपि व्रज में श्रीयमुनाजी एक ही नदी हैं, तथापि मूल में 'नद्य' और व्याख्यान में 'नद्यादिषु' या बहुवचन के कहवे ते श्रीयमुना सम्बन्धिनी सब ही ह्रदिनी सरोवरादि को ग्रहण कियो। जा समय प्रभु नें पक्षिरूपी मुनीन के ऊपर कृपा करकें वेणुनाद द्वारा मुनीन कूं भगवत्तत्वोपदेश दियो, ता भगवत्त-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्वोपदेश कूं मुनिगण नें भले प्रकार तें जान्यौ 'तदा' ता समय नदीन नें भी अपने मन में निश्चय कियौ कै प्रभु हम कूं भी कृतार्थ करैंगे ही, यातें 'तदुपधार्य' ता मुनीन कूं दिये भगवत्तत्वज्ञानोपदेश कौ अपने मन में निश्चय करकैं, 'तन्मुकुन्दगीतमुपधार्य' तत् नाम पुष्टिमार्गीयमोक्ष के दानी मुकुन्द के भगवत्तत्वोपदेश रूपगीत कूं श्रोत्रद्वारा हृदय में धारण करकैं, यहाँ 'तदुपधार्य' पद की आवृत्ति ते अर्थ कियौ है। यातें 'निश्चित्य' और 'श्रुत्वा' दोनों अर्थ किये। यातें तत्व ज्ञानोपदेशरूप मुकुन्दगीत कूं निश्चयरूप ते श्रवण करकैं श्रोत्र द्वारा हृदय में धारण करवे ते 'आवर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः' आवर्त नाम भौंररूपा मूर्छा तें जान्यौ जाय है मनोभव, विवेक सहित भगवत्काम भाव-जिनकैं यातें भग्न भये हैं वेग जिनके, अर्थात् जल के स्तम्भन ते नदीन की स्वाभाविकी प्रवाहगति रुक गई। नदी निश्चल जला है रही हैं। यहाँ मनोभव कौ अर्थ विवेक सहित कामभाव है। देवस्त्रीन की भांति 'नुन्नसार' विवेक रहित कामभाव नहीं है। यदि देवस्त्रीन की भांति नदीन कैं विवेकरहित काम भाव होतौ तब तौ नदीन कौ भगवत्समीप में जायवौ ही नहीं होतौ। यहाँ विवेक पद अर्शआदिभ्योऽच्' या सूत्र ते अजन्त मानकैं याकौ अर्थ विवेक सहित कियौ है। गोपी कहै हैं कै देखौ अचेतप्राय नदीन कैं भी भगवत्सम्बन्ध करवे की आकांक्षा है। इन नदीन के जल स्तम्भन मात्र ते ही नदीन की प्रभुमें आसक्ति नहीं जाननी. जलस्तम्भन तौ औषधादि सूं भी है सकै है। यातें कहै हैं कै—

"आलिङ्गनस्थगितं मुरारेः पादयुगलं कमलोपहाराः सत्यः ऊर्मिरूपै-र्भुजैर्गृह्णन्ति ॥"

नदीन के जलस्पर्श करवे के अर्थ नदीन के तट पै स्थित भयौ जो मुरारि प्रभु कौ पादयुगल है ताकूं कमलन की भेट लैकरकैं अपनी ऊर्मिरूपा भुजानतें ग्रहण करै हैं। अपने हृदयकमलन कूं प्रभुपादाब्ज युगल में अर्पण करै हैं। और भगवत्पादाब्जयुगल कूं स्वयं ग्रहण करै हैं। ये नदी देवता है, यातें इन नदीन के संग अन्य लीला करनों सम्भव नहीं है। यातें जलस्पर्श करवे के अर्थ नदीन के तट पै प्रभुपादाब्जयुगल की स्थिति मात्र कही। अब नदीन के प्रयोजन कूं कहै हैं कै 'मुरारेः' प्रभु मुरदैत्य के अरि हैं वधकर्ता हैं। मुरदैत्य जलदोषा·

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्मक अविद्यारूप है सो जल में स्थित रहै है। याते प्रभु के मुरारि होयवे ते चरणारविन्द के सम्बन्ध ते प्रभु हमारी नदीन की भी अविद्या कौ नाश अवश्य करेंगे, अर्थात् प्रभुपादाब्जयुगल के सम्बन्ध ते हमारे भगवत्सेवा के अनुपयोगिदेह सम्बन्ध कौ अवश्य नाश होयगौ। याते मुरारि के चरणकमलयुगल कूँ ग्रहण करे हैं। या श्लोक में मुकुन्दपद के कहवे ते और पुष्टिमार्गीयमोक्षोपयोगि तत्वज्ञानोपदेश के देवे ते यह सूचित कियौ कै या श्लोक में ज्ञान कौ वर्णन है॥ १५॥

'यःसर्वज्ञः सर्वशक्तिः' प्रभु अपनी ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति सहित सदा रहै हैं। नदीन में प्रभु की ज्ञानशक्ति कौ प्रवेश कह करकें अब मेघ में क्रियाशक्ति कौ प्रवेश कहते मेघ के वैराग्य कूं कहै हैं कै—

दृष्ट्वातपे व्रजपशून् सहरामगोपैः सञ्चारयन्तमनुवेणुमुदीरयन्तम्।
प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः सख्युर्व्यधात् स्ववपुषाम्बुद आतपत्रम्॥१६॥

भय्या बलदेव और गौ गोपगण के सहित गौ आदि व्रजपशून कूं चरावते उनके पीछें पीछें वेणुकूं बजावते श्रीकृष्णकूं धूपमें देख करकें, प्रेम करकै बढयौ उदय भयौ मेघ, अपने सूक्ष्म जलविन्दून की पुष्पवर्षा करतौ अपने सखा श्रीकृष्णकौ स्वशरीरते छायाछत्र विधान करै है॥ १६॥

व्याख्या—श्रीवल्लभाचार्य जी कहै हैं कै—

"हरेश्चरणयोः प्रीतिः स्वसर्वस्वनिवेदनात्"

स्वसर्वनिवेदन पूर्वक श्री हरिचरणारविन्द युगलमें प्रीति होनों ही वैराग्यहै। जब अन्य सब पदार्थमें वैराग्य होय है तब ही हरिचरणाम्बुज युगलमें प्रीति होय है, किन्तु वैराग्यमें उत्कर्ष जब ही जाननों, जब सर्वपदार्थनते विराग होते भी, सर्व दुःखहर्ता हरिकेभी दुःखकौ हर्ता, प्रभु सेवक होय, तबही वैराग्य कौ बडप्पन है। अर्थात् भगवत्सेवा करकै प्रभुके शीत उष्ण क्षुधापिपाशादि दुःखकौ सदा निवारण करतौ रहै, प्रभुते अपने सुखकी इच्छा किंचिन्मात्र भी नहीं राखै, तब ही वैराग्य में उत्कर्ष है। क्योंजी प्रभुमें ऐसौ भाव कैसें होय तहाँ कहै हैं कै 'भक्त्या' प्रभु में भक्ति करवेते ही सेवक में हरि कौ दुःख हर्ता भाव उत्पन्न होय है। याते उपदेश करे हैं कै 'सासेवा' जैसें मेघनें स्वसर्वस्वरूप जल निवेदन करकें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्नेह के वश, प्रेरणाविनाही भगवद् दुःखहरण रूप सेवा स्वशरीरते मेघने करी है ऐसी ही सेवा शास्त्र की प्रेरणा विनाही देशकालानुरूप भगवत्सुख संपादिका सेवा पुष्टिमार्गीय भक्तन कूँ करनी उचित है। ऐसी सख्यभक्ति रूपा सेवा मेघने करी है याते मेघ में वैराग्य स्पष्ट है। गोपी कहै हैं कै 'दृष्ट्वातपे' भैया बलदेव और गोपवृन्द के सङ्ग गौआदि व्रजके पशून कूं चरावते इनके पीछैं पीछैं वेणुकूं बजावते श्रीकृष्ण कूं शरत्काल सम्बन्धी आतप धूपमें देख करकैं, मेघ अपने सखा श्रीकृष्णके ऊपर अपने शरीरते छायाछत्र रचना करै हैं। ये व्रजके पशु सर्वदा छाया अभ्यासयुक्त हैं। गोप सर्वदा इनकी रक्षा करै हैं। श्रीबलदेवजी सब प्रकारते परस्पर में प्रीति बढायवे वारे सङ्गमें है। इन गोपनन्के द्वारा प्रभु व्रजपशून कूं चरामें हैं, याते पशून की रक्षा के लियैं क्रियाशक्ति रूपी गोप देवता सङ्ग में हैं। परस्पर में रतिवर्द्धक वेद स्वरूप ज्ञानशक्ति स्वरूप श्रीबलदेवजी संगमें हैं। गोचारणरूप धर्म सहित हैं। या प्रकार प्रभुक्रीडोपयोगी सर्व सामग्री सहित हैं। प्रभु गोपवृन्द के द्वारा गोचारणरूप धर्मकूं करते, गौआदि पशूनके पीछै पीछै वेणुकूं बजावते, सबके अन्तःकरण में आधिदैविक सम्बन्धि आसक्ति भावकूं उद्दीपन करकैं सर्व शक्ति सहित प्रभु, अपनी आधिदैविकी शक्ति वनदेवीनके सङ्ग भगवान क्रीडा करै हैं। तबतौ ऐसी अवस्था में तौ छायाकी अवश्य अपेक्षा है। यह जान करकैं मेघ, 'प्रेमप्रवृद्ध उदितः' भगवान् में स्नेह करकैं, स्नेह भक्तिते प्रारम्भ करकैं सख्य भक्ति पर्यन्त बढ्यौ मेघ उदय भयौ। अथवा गौ गोप गोपी और श्रीबलदेवजी सहित श्रीकृष्णकूं शरद्काल सम्बन्धि आतप धूप में देखकरकैं गौ गोपादि सब कैं प्रेम जैसें बढै तैसें उदय भयौ मेघ "स्ववपुषा सख्युरातपत्रं व्यधात्" गौगोप बलदेवजी सहित अपने सखा श्रीकृष्ण कौ अपने शरीरते छायाछत्र विधि रचना करै है। अथवा 'प्रेम प्रवृद्ध मुदितः' कहूं ऐसौ भी पाठहै तहाँ यह अर्थ है। कै प्रभु में प्रेम करकै बढ्यौ याते ही मुदित आनन्दकूं प्राप्त भयौ यह मेघ श्रीकृष्ण कूं आतप में देखकैं अपने शरीरते छायाछत्र करै है। अरी यह मेघ केवल छायाछत्र ही नहीं करै है, किन्तु 'कुसुमावलीभिः' अपने सूक्ष्म जल बिन्दून करकैं पुष्पवर्षा भी करै है 'मेघ पुष्पं घनरसं' या कोश प्रमाणते, मेघ नें ते जो छोटी छोटी फुँईन की वर्षा होय है सो पुष्पवर्षा है। पहलैं या मेघ नें सख्य भावपर्यन्त भक्तिकरी या समय या मेघनें आत्म निवेदन कियौ है। याते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'प्रेम्णैव प्रवृद्धः' यह मेघ प्रेम करकैं ही वृद्ध भयौ है पहलें यह मेघ, श्रीकृष्ण में स्नेह वश श्रवण भक्तिते प्रारम्भ करकैं सख्य भक्ति पर्यन्त प्राप्त भयौ याते स्थूल है गयौ, अब यानें आत्म निवेदन कियौ है। अरी ये मेघ कामरूपी होंय हैं जैसी इच्छा होय है तैसौही रूप धरलैय हैं। तामें यह मेघतौ 'धूमज्योतिः सलिल अनिलकौ संघातरूप आधिभौतिक मेघ नहीं है यह तौ आधिदैविक सम्बन्धि मेघ है। याते चहिये जैसौ रूप धर सकै है, याते ही यानें भगवत्स्नेहते छत्राकार रूप धारण कियौ है। जितने रूपते गोपादि सहित सबकी छाया है जाय ऐसौ रूप धरयौ है। क्योंरी या मेघकूं देहके पसारवे में छत्राकार बनायवे में सूर्य तापके सहवेमें क्लेश तौ होतौही होंयगौ, तब कहा दुःख सहन पूर्वक सब कार्य करे है ऐसी आकांक्षा में कहै है के नहीं दुःख सहन पूर्वक कार्य नहीं करे है किन्तु 'मुदितः' प्रभु में स्नेह सख्यभावते आनन्दित होयकर कार्य करे है। जो कोई अपने चित्तमें दुःख मानकर प्रभु सेवा करे है ता प्राणी की सेवाकूं प्रभु अङ्गीकार नहीं करे हैं। याते मेघतौ आनन्द मग्न होयकर प्रभु कौ छायाछत्र करे है। जो कोई प्राणी जन्मते प्रारम्भ करकैं यावत्काल पर्यन्त भगवद्भक्ति करकै बढै है सो प्राणी अन्तमें प्रभु के अर्थ आत्म निवेदन करें है। याते या मेघने अपनों तन मन, धन स्वसर्वस्व स्वरूप जल श्रीकृष्ण के अर्थ अर्पण करकैं आत्म निवेदन कियौ है। या जतायवे के लियें ही "कुसुमावलीभिः सह" यह पद कह्यौ है। कितने हूँ टीकाकार ऐसें कहै हैं कै यह मेघ लोकोपकारी होयवेते, जल जीवनदाता होयवेते, नीलरूप होयवेते श्रीकृष्णकौ सखा है। किन्तु या मेघनें तौ अपनों सर्वस्व निवेदन कियौ है। यह तौ सख्य भावतेहू अगारी बढगयौ। या मेघके स्वशरीरकृत छाया छत्र कथन ते साक्षात् लक्ष्मी के सङ्ग, तथा लक्ष्मी की अंशरूपा वनस्थिता व्रजसुन्दरीन के सङ्ग भगवत्क्रीड़ा सूचित होय है। याते ही अगारी पुलिन्दीन की स्तुति में 'श्रीकुङ्कुमेन दयिता स्तनमण्डितेन' इत्यादि पदन में दयिता लक्ष्मी की प्रशंसा है। याते यहाँ गोपन के द्वारा प्रभु गोचारण रूप धर्म करे हैं। श्रीबलदेवजी के द्वारा सबकी रक्षा करे हैं। वेणुनाद द्वारा सबकूं लीलामें सावधान करकैं, रसात्मक लीला स्वरूप कौ अनुभव करामें हैं। आप लक्ष्मी के और लक्ष्मी आवेशता वनस्थिता व्रज सुन्दरीनके सङ्ग रमण क्रीड़ा करे हैं। जैसें अवतार दशा में तथा सदा ही शेषावतार श्रीबलदेवजी स्व-शरीरते शय्या छत्रछाया रूपा सेवा करे हैं। तैसें ही शेषरूप वेद रूप श्री बलदेवजीकी भाँति यह मेघहू भगवत्सखा है याते ऐसे आतप के समय में सखाकूं सखा की छाया करनों उचितही है॥ १६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

अब व्रजगोपी यह कहै हैं कै क्षुद्रजाती या पुलिन्दीनकूं भगवन्निकट जायवेते भक्ति प्राप्त भयी याते सबते अधिक पूर्ण मनोरथ पुलिन्दी ही भयीं यह कहै हैं।

पूर्णाः पुलिन्द्य उरुगायपदाब्जरागश्रीकुंकुमेन दयितास्तनमण्डितेन।
तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन लिम्पन्त्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम्॥ १७॥

अरी ये पुलिन्दी सबते अधिक पूर्णमनोरथ भयी, याते कै उरुगाय प्रभु के पादाब्जयुगलतल की अरुणाई में लक्ष्मी नें सम्पादन करकैं अर्पण कियौ जो कुंकुम, ता चरणाब्जयुगलप्रसादी कुंकुम कूं। प्रभुनें अपने श्रीहस्त में लैकरकैं तृणन के द्वारा स्वदयितालक्ष्मी के तथा स्वप्रिया वनस्थिता व्रजसुन्दरीन के स्तन मण्डित किये, उन तृणन कूं प्रभुभूमि में पटकते रहे, उन कुंकुमलिप्ततृणन के दर्शन करकैं पुलिन्दीन कूं लक्ष्मीसंभोग कौ स्मरण भयौ। याते बढ्यौ है, कामरोग जिनकैं ऐसी पुलिन्दी वा तृणन में लिपटे कुंकुम कूं लैकरकैं अपने आननकुचन में लेपन करतीं पुलिन्दी कामबाधा ते रहित है गयीं॥ १७॥

व्याख्या—वनवासि क्षुद्र जाति के पुलिन्दन की पत्नी ते पुलिन्दी इन पुलिन्दीन कूं भगवन्निकट जायवे ते भक्ति प्राप्त भयी। गोपी यह कहै हैं कै '**पूर्णाः पुलिंद्यः**' अरी सखी! हम सब की अपेक्षा ते ये पुलिन्दी ही पूर्ण मनोरथ भयीं। याते कै पुलिन्दीन कूं साक्षात् प्रभुचरणारविन्दरज कौ सम्बन्ध भयौ है। सो ही गोपी कहै हैं कै—

"उरुगायपदाब्जरागश्रीकुंकुमेन।
उरुभिर्गीयते, उरुगायोभगवान्॥"

भगवान् सर्वप्रमाण सिद्ध हैं। भगवान् कौ वेदोपनिषद् शास्त्रपुराण तथा शेष, शुक, सनक, नारदादिक सब ही गान करै हैं, याते भगवान् उरुगाय हैं। प्रभु सर्वगुण पूर्ण हैं। याते अनेक प्रकार ते भगवद्गुणन कौ सब ही गान करै हैं। प्रभुपादाब्जयुगलतल में जो अरुणराग है तामें नित्यनिवासिनी श्रीलक्ष्मी है। लक्ष्मी नें बहुगम्भीर विचार ते भगवान् कूं वरण कियौ है। याते प्रभुचरणारविन्द में निवासिनी लक्ष्मी नित्य चरण सम्वाहनादि सेवा करैं है। याते

"श्रियासम्पादितं यत्कुंकुमं तत् श्रीकुंकुमं"

ता लक्ष्मी नें केशर, कपूर, चन्दनादि गन्धयुक्त करकैं सम्पादन कियौ जो दिव्यकुंकुम ता लक्ष्मी के सिद्ध किये दिव्यकुंकुम कं लक्ष्मी नें भगवत्पादा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कञ्जयुगल में अर्पण कियौ, ताही दिव्यकुङ्कुम ते स्वप्रिया आधिदैविकी शक्तिरूपा वनदेवीन के रसदानी प्रभु नें स्वदयितान के संग सम्भोग दशा में बन्धविशेष के बाँधवे ते स्वदयितान के स्तन मण्डित किये, याते दयितास्तनमण्डित कुङ्कुम कह्यौ । यहाँ लक्ष्मी को प्रभु ते दाम्पत्य सम्बन्ध नहीं है, किन्तु प्रेमसम्बन्ध है । याते 'दयिता' पद ते प्रभु कूँ रसदानी कह्यौ । अथवा लक्ष्मी नें सम्पादन कियौ, दिव्यकुङ्कुम प्रभुचरणारविन्द में अर्पण करकैं लक्ष्मी नें भी अपने स्तन अलंकृत किये, अपने हृदय में लगायौ । याते श्रीकुङ्कुम कह्यौ । अथवा लक्ष्मी नें सम्पादन किये दिव्यकुङ्कुम कूँ प्रभुचरणारविन्द में अर्पण करकैं तानें भगवत्प्रसादी दिव्यकुङ्कुम कूं लक्ष्मी स्वदयिता आधिदैविकी शक्तिरूपा वनदेवीन के लियें दियौ, याते प्रभुदयिता लक्ष्मी नें अपने श्रीहस्त ते स्वदयिता आधिदैविकी शक्तिरूपा वनदेवीन के स्तनमंडित किये । याते प्रभुदयिता लक्ष्मी की दयितान के स्तनन में मण्डित जो कुङ्कुम है सो दयितास्तनमण्डित कुङ्कुम है । सोही कुङ्कुम लक्ष्मी के तथा वनदेवीन के संग सम्भोग समय में बंधविशेष बाँधवे में, उरःस्थल पै चरणारविन्द के स्थापन करवे ते, लक्ष्मी के स्तनन में ते तथा वनदेवीन के स्तनन में ते प्रभुपादाब्जयुगल में आय लग्यौ यह सो कुङ्कुम है । याते यामें विशेषण कहे हैं कै 'तृणरूपितेन' यहाँ प्रथमपक्ष में तौ यह अर्थ है कै 'तृणेनरूपितं तृणरूषितं' लक्ष्मी नें तथा वनदेवीन नें अपने मुखकपोलकुचन में लगे दिव्यकुङ्कुम कूं । पुलिन्दीन के लियें दान दियौ । ता प्रभुदयितान के दिये भये कुंकुम कूं पुलिन्दीन नें लैकरकैं तृणन के द्वारा मकरी के आकार में कमलतृणाकार में अपने २ आननकुचन में लगायौ । याते तृणन ते कुंकुम कौ अपने अङ्गन में अनुलेपन करवे ते पुलिन्दी कृतार्थ भयीं । अथवा स्वदयितान के रसदानीप्रभु के चरणन में अर्पण किये पश्चात् ता कुंकुम कूं प्रभुनें अपने श्रीहस्त में लैकरकैं तृणन के द्वारा मकरी के कमल के विचित्राकार में, स्वप्रियालक्ष्मी के आधिदैविकी शक्तिवनदेवीन के मुखकपोल कुचविभूषित किये, ये कुंकुमलिप्ततृण, प्रभु के श्रीहस्त में ते भूमि में गिरे, याते तृणन में लग्यौ जो कुंकुम है सो तृणरूपितकुंकुम है । अथवा स्वदयितान के संग सम्भोगसमय में लक्ष्मी आदि दयितान के स्तनन में ते प्रभुपादाब्जयुगलतल में प्राप्त भयौ जो कुंकुम है सो प्रभु के वनस्थली निकुञ्जन में विचरवे ते वन के दूर्वातृणन में लग्यौ जो कुंकुम है सो भगवत्पदाब्जरजोयुक्त तृणन में लग्यौ कुंकुम है सो तृणरूषितकुंकुम है । सो कुंकुम पुलिन्दीन नें ग्रहण कियौ । याते पुलिन्दी साक्षात् भगवत्पादा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गोपिनों को भगवत्पदरज से ३ सिद्धियाँ

रजः सम्बन्धिनी होयवे ते कृतार्थ भयीं । गोपी अपने मनमें कहै हैं कै हमनें तौ अपनी उत्तमभावना ते प्रभुपदरजः संयुक्तकुंकुम कूं ग्रहण नहीं कियौ याते हम तौ अकृतार्थ ही रहीं । यहाँ यह समझनों, कै पूर्व में वृन्दावन कूं देवकी सुत पद्मांबुजरूप कह्यौ है । इन पुलिन्दीन की वृन्दावन में नित्यनिरन्तर स्थिति है याते साक्षात्प्रभुपदाब्ज के सम्बधते, पुलिन्दी पूर्णमनोरथ भईं । पुलिन्दीन की पूर्णता या श्लोक के अन्त में गोपी वर्णन करेंगी । व्रजगोपीन कूं तौ भगवत्प्रसादरूपा कात्यायनी देवी की आराधना ते, साधन के अनुरूप ही फलन की सिद्ध होयगी, याते ही अगारी के अध्याय में 'यातावला व्रजंसिद्धाः' हे अवला ! तुम सिद्ध भई, व्रज कूँ जाओ, या श्लोक में कहेंगे । याते अलौकिक सामर्थ्य १ प्रभु के सङ्ग सदास्थिति २ और बृहद्वृन्दावन वैकुण्ठादि में प्रभुसेवोपयोगि देह की प्राप्ति ३, या फलत्रय सम्पत्ति की प्राप्ति तौ प्रभुपदरज ते क्रम ते ही होयगी। या प्रकार भूमि के तृणन में लगे प्रभुचरणारविन्द सम्बन्धि कुंकुम के दर्शन करकैं, अथवा लक्ष्मी के सङ्ग तथा स्वप्रियावनदेवीन के सङ्ग भगवत्सम्भोग कौ दर्शन करकैं प्रकट भयी है, काम व्यथा जिनकूं ऐसी पुलिन्दी ता काम पीड़ा की शान्त के अर्थ, तृणन में लगे कुंकुम कूं अपने मुखकपोलकुचादि अङ्गन में लेपन करकैं पुलिन्दी कामबाधा ते निवृत्त है गयीं । याकौ यह तात्पर्य है कै जब ये पुलिन्दी तृणन में लगे, प्रभुपदपङ्कजरजोयुक्त कुंकुम कूँ मुखकपोल कुचादि अङ्गन में अनुलेपन करकै भगवान् के निकट उपस्थित भईं, ता समय स्वप्रियान के संग प्रियतमप्रभु के सम्भोगसुख को दर्शन करकैं ता प्रभुपदपङ्कजरजोयुक्त कुंकुम द्वारा पुलिन्दीन में रसात्मिकालक्ष्मी कौ भी प्रवेश भयौ। जैसें लोहे के गोला में अग्नि कौ प्रवेश होय है । तब लोहे कौ गोला अग्निमय है जाय है। ऐसें लक्ष्मी के प्रवेश ते पुलिन्दी लक्ष्मी रूपा है गयीं, याते प्रभु नें पुलिन्दीन कौ भी उपभोग कियौ । याते यहाँ पुलिन्दीन के संग भगवान् की रमणक्रीड़ा है । या भगवत् रमण में यह भी जानवे योग्य है । कै 'जहुस्तदाधिम्' पुलिन्दी कामबाधा कूं त्यागती भयीं । या कामबाधा के त्यागते तौ पुलिन्दीन कौ प्रभु के संग रमण करनों ही सिद्ध होय है । अन्यथा प्रभु के रमण किये विना तौ श्रीसम्बन्धिकुंकुम कूं आननकुचन में लगायवे ते तौ कामव्याधिकौ अधिक होनों ही सम्भव है । याते कामपीड़ा की निवृत्ति तौ जब ही है सकै है जब पुलिन्दीन के संग प्रभु कौ रमण होय। कामव्याधित्यागकथन तो भगवत रमण के विना अन्य प्रकार ते नहीं बन सकै है । याते पुलिन्दीन के संग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

भगवत्रमण सिद्ध भयो। भगवत्रमण ही कामव्याधि को निवर्तक है। क्योंकि, हम गोपीहूतो भगवत्विषयक कामवती हैं। तब पुलिन्दी ही पूर्णमनोरथभयीं ऐसैं पुलिन्दीन की ही प्रशंसा क्यों करो हो। ऐसी शंका में कहै हैं कै प्रभुसंयोग के विना केवल प्रभुसंबन्धिकाम तो धन्यता को हेतु नहीं है। प्रभुसंबन्धिकाम तो केवल दुःखको दैवे वारो है। याते या समय हमकूं प्रभु संयोग नहीं है। याते हम धन्यता के योग्य नहीं हैं। प्रभुके सङ्ग रमण करकैं ये पुलिन्दी ही पूर्ण मनोरथ भयीं। कारण कै "उरुभिः उरुधागीयते" भगवान् उरुगाय हैं। जा समय प्रभु व्रजतें वनकूं पधारे हैं ता समय प्रभुके दर्शन करकैं वनवासि भक्तन के हृदय में आनन्द कोलाहल मचजाय है तब पुकारे हैं ये आये नन्दनन्दन, ये आये यशोदानन्दन, ये आये गोविन्द ये आये गोपिकावल्लभ, या प्रकार भक्तन के मुखते भगवन्नाम श्रवण करकैं ये पुलिन्दी भगवन्निकट गयीं, तामें भी भगवत्पाद पद्मरूप वृन्दावन की रजते योग्यता की सिद्धि में, ता तृणसंलग्न कुंकुम के धारण करवे ते, लक्ष्मी के आवेशते प्रभुके संग रमण करकैं, काम व्याधिते निवृत्त है गयीं, याते ये पुलिन्दी धन्य हैं। यह भगवान् की अलौकिकी कथा है। या अलौकिकी कथा की सूचना अगारी के श्लोक में है भगवत् चरित्र अलौकिक है विपरीत है। रमण के अयोग्य पुलिन्दीन कूं योग्यता संपादन करे हैं। और योग्यन कूं अयोग्य बनावे है। गतिवारेन की गति रोकै है। जड़न में पुलक रोमांच प्रकट करै है। जा समय भगवान् वृन्दावन में पधारे, ता समय श्रीराधा लक्ष्मी हूं दिव्य कुंकुम संपादन करकैं वृन्दावन में पधारीं, याते लक्ष्मी के आयवेते और पुलिन्दीन के कुंकुम कूं आनन कुचन में लेपन करवे ते लक्ष्मी के प्रवेश होयवेते प्रभुनें पुलिन्दीन के सङ्ग रमण कियौ। यह कथा लक्ष्मीनें भी नहीं जानी। यावत्पर्यंत राधाकृष्ण युगलमूर्ति वृन्दावन में नहीं पधारी, तावत्पर्यन्त पुलिन्दीन के सङ्ग राधालक्ष्मी की सखी वनदेवी, भगवत्कथा कहती रहीं, तत्पश्चात् भक्तन के मुखते भगवन्नाम श्रवण करकैं पुलिन्दी, लक्ष्मी की सखीन के सङ्ग भगवन्निकट गयी, स्वप्रिया लक्ष्मी के तथावन देवीन के सङ्ग भगवत्संभोग सुखकौ दर्शन करकैं लक्ष्मी के प्रवेशते प्रभुनें पुलिंदीन कौ उपभोग कियौ। याते पुलिन्दी कृतार्थ भयीं। यदि हमहूं वृन्दावन में गयी होंती तबतौ हमारे सङ्ग भी प्रभुकौ रमण करनों संभव हो। किन्तु हम वृन्दावन में नहीं गयीं याते अपूर्णमनोरथ रहीं। भगवद्वियोग में यह कामवौ प्रचुर पीडाकारक है। केवल दुःखकौ ही दैवे वारौ है। याते हम धन्य नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं । जैसें क्षुधाकौ होंनों सुखकौ हेतु नहीं है । किन्तु क्षुधाके होते तौ अन्नकौ भोजन ही सुखकारक है । ऐसें ही भगवत्काम के होते तौ भगवत्संभोग ही सुखदायक है ॥ १७ ॥

अथ श्रीहरिराय जी कृत स्वतंत्र लेखानुवादः । अथवा भगवन्मनोभिलाष जो दिवस में कामरसकी पूर्ति कौ अभाव है याते अपनपेकूं अपूर्ण मानतीं व्रजगोपी पुलिन्दीन की पूर्णता कूं कहे हैं कै " पूर्णाः पुलिन्द्यः " ये पुलिन्दी ही पूर्णमनोरथ भयीं, याते कै पुलिन्दी भगवत्सम्बंधि काम बाधाते निवृत्त है गयीं, याते के भगवान् उरुगाय हैं । भगवान् कौ सब गान ही करैं हैं भगवान् कौ उपभोगतौ कोई नें नहीं कियौ, पुलिन्दीन नें प्रभुकौ उपभोग कियौ है । कारण कै उरुगाय प्रभुके पादाब्जद्वय में राग जो अनुरागता अनुराग करकें लक्ष्मी नें सम्पादन कियौ । जो दिव्य कुंकुम, ता कंकुमकूं आनन कुचन में लेपन करती पुलिन्दी काम पीड़ाते निवृत्त गयीं । क्योंरी कुंकुम के आनन कुचन में लेपन करवे ते पुलिन्दीन में ऐसे स्वामिनी भावकी कैसें उत्पत्ति भयी, तहाँ कहे हैं कै " दयितास्तनमंडितेन " दयिता अपनी अत्यन्त प्रिया के विरह समय में, प्रभुकूं उत्कट ताप के सहन किये पश्चात् ताप निवृति के अर्थ रसानुभव कर्ता प्रियतम नें स्थापन कियौ जो प्रियास्तनद्वयके ऊपर पादाब्जद्वय ताके स्पर्श ते प्रकट भये रसभर वशते सात्विक स्वेदयुक्त आर्द्र स्तनन में प्रभु पादाब्ज द्वय के चिन्ह कुंकुम ते मण्डित भये, सो कुंकुम पुलिन्दीन नें अपने मुख कपोल कुचन में लेपन कियौ । क्योंरी प्रभु पादाब्जद्वय सम्बंधि, प्रियास्तन द्वय सम्बंधि कुंकुम कौ प्राप्त होंनों तौ पुलिन्दीन कूं असंभव है तब पुलिन्दीन कूं कुंकुम कैसें प्राप्त भयौ । तहाँ कहे हैं । कै ' तृण रूपितेन ' प्रिया के स्तनन में सात्विक भाव स्वेद के उत्पन्न होयवे ते दयिता के स्तनद्वय में लग्यौ कुंकुम प्रभु पादाब्जद्वय में आय लग्यौ, प्रभु पादाब्जद्वय में ते भूमिके तृणन में आय लग्यौ सो कुंकुम पुलिन्दीन नें ग्रहण कियौ । याते ही दयिता सजातीय कुंकुम लिप्त तृणन के दर्शन करकें पुलिंदीन कूं प्रियतम के संभोग सुखकौ स्मरण भयौ । याते ही प्रभुनें दयिता सजातीय कामभावोत्पत्ति के अर्थ, प्रभुनें अपने रसात्मक युगल स्वरूपकौ दर्शन करायौ, याते गोपी कहे हैं कै ' तद्दर्शनस्मररुजः ' ता रसात्मक युगल स्वरूप के दर्शन करकें उत्पन्न भई है कामबाधा जिनकें पुलिन्दी कामबाधा व्यथित है गई । क्योंजी तबतौ पलिन्दीन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

कूं काम भाव प्रभु नें ही दियौ । यही कहनों उचित है । किन्तु प्रभुकृत काम व्याधि हरण कहनों उचित नहीं है । यदि यह कहौ सो नहीं है । भगवद्दर्शन जनित रमणेच्छा के भर वशते कामतापतप्ता पुलिन्दीन कूं जान करकें प्रभुकूँ भी ताप भयौ । तबतौ पुलिन्दीन की कामबाधा दूर करनों प्रभु कूं उचित ही है । अन्यथा 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते' प्रभुकी या प्रतिज्ञा की हानि होय है । यह भाव है ॥ १७ ॥

अब निर्गुणा गोपी कहै हैं कै--

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो यद्रामकृष्णचरणस्पर्श प्रमोदः ।
मानं तनोति सह गोगणयो स्तयो र्यत् पानीयसुयवसकन्दरकन्दमूलैः ॥१८॥

हे अबला: ! यह गोवर्द्धन पर्वत हरिदासन के मध्य में अति श्रेष्ठ है, याते कै श्रीरामकृष्ण के चरणस्पर्श करकै याकूं अति प्रमोद होय है याते ही श्रीरामकृष्ण कौ, गौ गोप गण सहित सबकौ जलते, हरे-हरे दूर्वातृणनते, कन्दरानते, कन्द मूल फूल फलादिते, सबकौ सन्मान करै है, यह हमकूँ चित्तमें बड़ौ खेद है कै हम गोवर्द्धन में होतीं तौ हमकूँ भी अति आनन्द होतौ ।

व्याख्या—निर्गुणा गोपी कहै हैं कै ये पुलिन्दी कैसें ऐसी भाग्यवती भयीं, ऐसी शंका में कहै हैं । कैं भक्तवर्य गोवर्द्धन के सङ्गतेही पुलिन्दी पूर्ण-मनोरथ भईं । गोवर्द्धनकी प्रेरणा तेही पुलिन्दी कन्द मूल, फूल, फल लै करकें प्रभु के समीप गईं । याते पुलिन्दी गोवर्द्धन के सङ्गते कृतार्थ भयीं । याते गोवर्द्धन कौ भक्तवर्यत्व वर्णन करै हैं "हन्तायमद्रिः" हे अबलाओ ! यदि हम गोवर्द्धन में स्थित होतीं तब तौ हमारे हूँ मनोरथ पूर्ण होते किन्तु गोवर्द्धन के समीप जाये विना यह अलभ्य लाभ हमकूं प्राप्त नहीं भयौ याते 'हन्त' हमारे चित्त में खेद है कै हम गोवर्द्धन के समीप नहीं गईं यामें हमारी ही निर्बलता है यह अबला पदते सूचित कियौ । अब गोवर्द्धन की श्रेष्ठता में कारण कहै हैं कै "यद्रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः" या कारणते कै यह गोवर्द्धन पर्वत हरिदासन के मध्यमें श्रेष्ठ है कै श्रीरामकृष्ण के चरणस्पर्श मात्रते या गोवर्द्धन कूं प्रकृष्ट मोद होय है । भक्तन में सोही मुख्य है जाकूं भक्तिमार्ग रूप प्रभुचरणन के स्पर्शमात्रते अति आनन्द होय । ऐसौ यह गोवर्द्धन है । यद्यपि यह गोवर्द्धन गिरिसात्विक स्वभाव है । अथवा गुणातीत है याते निर्धन है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथापि 'तयोर्मानं तनोति' निर्धन होय कर भी श्रीरामकृष्ण कौ सत्कार करै है। तामें भी केवल श्रीरामकृष्णको ही सन्मान नहीं करै है किन्तु 'सहगोगणयोस्तयोः' गौवृन्द गोपवृन्द के सहित श्रीराम कृष्ण कौ सत्कार करै है। यदि कोई यह कहै कै यह निर्धन गोवर्द्धन धनाभावते कैसें सत्कार करतौ होयगौ ऐसी अपेक्षा में कहै है कै 'पानीयसुयवसकन्दर कन्द मूलैः' स्वच्छ सुमिष्ट शीतल जलन करकैं, हरी हरी कोमल घास कुशादि तृणन करकैं कन्दरादि स्थान करकैं, कन्द मूल फूल फलादि करकैं यह गोवर्द्धन, गौवृन्द गोपवृन्दन के सहित श्रीराम कृष्ण कौ सत्कार करै है। तामें भी इन चार प्रकार वस्तूनते नित्य ही सत्कार करै है। कारण कै 'तृणानि भूमि रुदकं वाक् चतुर्थी च सूनता' बैठवे कूं भूमि स्थान, पीवे कूं जल, सत्य और प्रिय वचन, इन चार वस्तुकौ तो गृहस्थ के घर में कोई समय में भी अभाव नहीं है। याते इन चार वस्तुनते तौ निर्धन भी सत्कार कर सकै है। याते यह गोवर्द्धन निर्धन होते भी गौ गोपगण सहित श्रीराम कृष्णादि सबको सत्कार करै है। तहां जल और हरी २ घास तौ गौ आदि व्रज पशून के पींवे खायवे के लिये देय है और दूब, कुश, पुष्प, पल्लवादि श्रीराम कृष्णादि गोपन के लियें आसन शय्या शृंगारादि के लियें देय है और कन्दरा सबके बैठवे के लियें शयन के लियें स्थान देय है और कन्द, मूल, फल फूल सबके खायवे के लिये देय है। या प्रकार सबकौ सन्मान करै है। यहां वाणी के ठिकानें कन्द मूल फलादि ही कहे हैं। याते गिरिकन्दरा में बैठे कन्द मूलादि के खायवे वारे गोवर्द्धन की प्रशंसा करै हैं, तब प्रति ध्वनि के होयवेते भक्तन कौ परस्पर में वार्तालाप भी होय है। कारणकै अन्य सत्कार वस्तु के अभाव में वाणी की गणना है जब कोई प्रकारते सत्कार नहीं बन सकै, तब वाणी सूं तौ सत्कार करै। यहां पर्वत के अन्य सब शिखरादि रमणीय स्थलन कूं त्याग करकैं, जो कन्दरा कौ नाम लियौ है। याते यह प्रतीत होय है कै वर्षा है रही है। याते श्रीराम कृष्ण दोनों गौ गोप वृन्द सहित गिरि कन्दरा में विराजे हैं। यद्यपि संपूर्ण व्रज के समृद्धिशाली होते भी यह गोवर्द्धन निर्धन है तथापि अपनी संग्रह करी वस्तुन कूं सबके अर्थ देय है। भक्त कृत इतनों ही सत्कार बहुत है जाते प्रभु संतुष्ट होंय हैं। यह गोवर्द्धन तो अपने किये सत्कार कूं कुछ भी नहीं समझै है। बिचारौ सकुच के मारैं बोलै भी नहीं है। यहां कन्द हैं ते भूंज कैं खाये जाँय हैं, मूल हैं ते कच्चे खाये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाय हैं। ये कन्द मूल भी अनेक प्रकार के हैं। इनके अवांतर के अनेक रस भेद हैं। जैसें एक अन्न के बने व्यंजनन में अनेक रस भेद होंय हैं तैसें एक २ कन्द मूल की अनेक जातिते अनेक रस भेद हैं। याते यहाँ (कन्द मूलैः) यह बहुवचन है। हे अबला या सम्बोधन ते किंचित्कोप भी प्रकट होय है। याते कै जे गोपी प्रभु की माखन चोरी आदि अटपटी लीलानते उदास होंय हीं, उनके प्रति यह कोप सूचक संबोधन है। याते ऐसीन के अपूर्ण मनोरथ होंनों ही उचित है। पूर्व के श्लोक में पुलिन्दी, गोवर्द्धन की प्रेरणाते विविध प्रकार के कन्द मूल फूल फल लै करकै प्रभु के समीप में गयी ही याते पूर्ण मनोरथ भयीं। यहां यह प्रतीत होय है, कै गोवर्द्धन काम रूपी है याते कोई एक रूप धरकैं पुलिन्दीन कूं प्रेरणा करै है ॥ १८ ॥

"गा गोपकैरनुवनं नयतो रुदारवेणुस्वनैः कलपदै स्तनुभृत्सु सख्यः।
अस्पदनं गतिमताँ पुलकस्तरूणां निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥ १९ ॥

हे सखी! औ श्रीरामकृष्ण दोनों भैया, अपने गोप सखान के द्वारा गायन कूं चरायवे के लियें बनते बन में लै जाय है तब उनके अव्यक्त मधुर पद हैं, जिनमें ऐसै उदार वेणु के शब्दन कूं श्रवण करकैं, अथवा श्रीराम कृष्ण दोनों भय्यान की बजने नूपरयुक्त पद गति कौ श्रवण दर्शन करकें चलतेन की गति रुक जाँय हैं और वृक्षन में पुलक होंय हैं। तनुधारीन में यह विचित्रता होय है और जब बनते व्रजकूं पधारे हैं, तब सन्ध्या समय में गायन के लोंमना रस्सीन करकैं कियौ है विचित्र वेष जिननें ऐसे रामकृष्ण दोनों भय्या गोदोहन के लियें पधारै है तब तिनकी नूपुर शब्द युक्त मधुर गति की झनकार श्रवण करकैं तथा मधुर पद गति कौ दर्शन करकैं चलते प्राणी और गाय वत्सा ठाडे ही रह जाँय हैं और व्रजके वृक्षन में पुलक मधुधारा प्रकट होंय हैं। तनुधारीन में यह कैसी विचित्र विपरीतता होय है ॥ १९ ॥

व्याख्या—हे सखीओ! हम सब तौ प्रभु की सजातीया हैं। याते प्रभु के भोगवे योग्य हैं, किन्तु हीन जाति पुलिन्दी तौ भोगवे योग्य नहीं हैं। सो हमारे विषें स्थित रसकूं त्याग करकैं प्रभुनें पुलिन्दीन के दिये कन्द मल फल फूल का उपभोग कियौ और पुलिन्दीन के संग रमण कियौ। याते इन पुलिन्दीन के ऊपर प्रभु की ऐसी कृपा कैसें भई, ऐसी शंका में कहै हैं कै 'गोगोप कैं'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नूपुर प्रभु सायुज्य मुक्त जीव हैं.

हे सखीओ ! यह भगवत् चरित्र विपरीत है । यद्यपि साक्षात् भगवान् तौ किंचिन्मात्र भी कार्य नहीं करे हैं तथापि भगवान् के सान्निमात्र होयवेते ऐसो विपरीत अद्भुत कार्य स्वतः ही है जाय है।

" गतिमतां अस्पन्दनं तरूणां च पुलकं भवति "

भगवान के दर्शन मात्रते गति वारेन की गति रुक जांय है। चलते भये ठाड़े ही रह जांय हैं, स्थावर वृक्षन में पुलक होंय हैं। ऐसैं ही रसानुभव करवे योग्य गोपीन में रसानुभव करवे की अयोग्यता संपादन करे है, अयोग्य पुलिन्दीन में रसानुभव करवे की अयोग्यता संपादन करै हैं। या प्रभु चरित्र के वैपरीत्य संपादन में गोपी तीन हेतु कहै हैं कै ' गोपकैः सहानुवनं गानयतोः' गोपवृन्द के संग श्रीकृष्ण बलदेव दोनों भय्या, गायन कूं चरायवे के लियें वनते बन में लै जाँय हैं । याते श्रीकृष्ण बलदेव गौ गोपवृन्द के दर्शन करकैं स्वतः ही गति वारेन की गति रुक जाँय हैं और स्थावर जड वृक्षन में पुलक प्रकट होंय हैं । यह एक हेतु कह्यो और कहै हैं कै ' उदार वेणु स्वनैः ' उदार नाम पात्र अपात्र विवेक रहित ऐसे रसदानी या वेणु के शब्दन कूं श्रवण करकै, ' कलपदैः ' यह पद उदार वेणु स्वननको विशेषण है। याते कै ये उदार वेणु के शब्द हैं कै ' कलानि पदानि यत्र ' अव्यक्त मधुर मनोहर हैं, पद जिनमें ऐसे उदार वेणु के शब्दनकूं श्रवण करकैं चलते भये प्राणी चित्र के से लिखे ठाड़े रहि जाँय हैं और स्थावर वृक्षन में पुलक प्रकट होंय है । यह द्वितीय ' हेतु ' कह्यो। अथवा ' कलपदैः ' यह पद न्यारो है, याको यह अर्थ है कै प्रभु पादाब्ज युगल, मधुर ध्वनि के नूपुरन ते युक्त हैं । याते प्रभु के शनैः २ चरणन के धरवेते चलवे में क्रम २ पद ध्वनि होय है । ऐसी मधुर मनोहर प्रभु पद ध्वनीन कूं श्रवण करकैं और प्रभु के शनैः २ पग धरवेते प्रभु की मधुर मनोहर पद चालान गतीन के दर्शन करक चलते भये प्राणी ठाड़े रह जाँय हैं और वृक्षन में पुलक होंय हैं । यह तृ० ३ हेतु कह्यो। ये प्रभु पादाब्ज युगल में नूपुर हैं ते ऐसी सुन्दर मधुर ध्वनि करें हैं। मानों नूपुर रूपी पिंजरन में नन्द सुन्दर कोकिलादि पक्षी जैसें सुन्दर ध्वनी करै हैं। तैसैं हैं अथवा प्रभु के संग में वेदपाठी विद्यार्थीन की जैसी सुन्दर मधुर ध्वनि होय हैं, ऐसी मधुर ध्वनि होय है ऐसी मधुर ध्वनि करै हैं। याते ये नूपुर प्रभुसायुज्यमुक्त जीव हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रभुस्वरूप कौ बोध करायकैं प्रभु स्वरूप में आसक्त करै हैं । प्रभु पद हैं, ते भक्तिमार्ग रूप हैं । याते गतिवारेन की गति रुकि जाय हैं । और प्रभु पादाम्बुज ध्वनि श्रवण करकें वृत्तनमें पुलक हाेंय हैं । या प्रकारते प्रभु भय्या श्रीराम और गोपवृन्दन के संग वेणुवजावते, मन्द मन्द मधुर गतिते चलते गायनकूं बनते बनमें लैजाय करकैं चरावते, समस्त बननकी शुद्धि संपादन करैं हैं । याते सब बन निर्दुष्ट है जाय हैं समस्त बननमें गौ गोपके सम्बन्ध ते गायनकी शुद्धता और गोपनकौ धर्म, बननमें आय जाय है । यहाँ शुद्धि पदते अशुद्धि की निवृत्ति कही है । यहाँ प्रभु स्वरूपके अज्ञानमें कारण जो वृत्तन कौ जडस्वभाव है सो वृत्तनमें अशुद्धि है । ताकूं प्रभु गौ गोप श्रीराम सहित बन बन में विचरवे ते दूर करै हैं । जैसें पूर्वमें " गावश्चकृष्णमुख " या श्लोक में गायनकौ पशु स्वभात होते भी, पशुस्वभाव निवृत्ति पूर्वक रसात्मक स्वरूपानुभव करायवेवारी सर्व सामग्री कही ही, याते रसात्मक सर्व सामग्रीकूं श्रवण करायकैं गायनकूं पशुस्वभावोल्लंघन पूर्वक रसात्मक स्वरूप फल प्राप्त भयौ । ऐसैंही इन बनके वृत्तनकूं भी गौ गोपके सम्बन्ध ते जड स्वभाव उल्लंघन पूर्वक चिदानन्दरूप सुधारसकी प्राप्ति होय है । गोपनमें तौ रसिकभाव स्पष्ट ही है, याते यह रसिकत्वही व्याख्यामें धर्म पदते कह्यौ है । याते गायनकी पशुभाव निवृत्तिरूपा शुद्धि और गोपन कौ रसिकत्व धर्म, गौ गोपगण के संबन्धते बनके वृत्तनमें आय जाय है । पूर्व में ' तस्थुः ' या क्रिया पदते गायन की तृणचारण रूप क्रिया निवृत्ति पूर्वक स्थिति कही । और हृदयमें गोविन्द प्रभुकौ दर्शन स्पर्श कह्यौ ऐसेही ये बनके वृत्तादिक भी उदार वेणुस्वननमें मधुर मनोहर पदनकूं श्रवण करकैं रसानुभव करकैं जडस्वभाव निवृत्ति पूर्वक पुलकरोमांच रसवर्मन कूं प्रकट करै हैं । कारण कै उदार जे वेणुके स्वन और उदार जो वेणु पात्रापात्र विचार रहित वेणु के रस भोगते शेष बचे रसकौ ये वृत्तादिक उपभोग करैं हैं । याते वृत्तादिक में पुलक कौ होंनों उचित ही है । यहाँ वेणु और वेणु शब्दनकूं उदार कहिवेते यह वेणुनाद कौ कार्य स्वाभाविक कह्यौ । प्रभुनें यह वेणुनाद बनके वृत्तादिकनकूं रसानुभव करायवेके उद्देशते नहीं कियौ है । किन्तु रसोद्दीपन करनों तौ वेणुनादकौ, स्वाभाविक धर्म है । जब वेणुनादके साधारणकार्य ते वृत्तन में पुलक पुष्प मधुधारा प्रकट हौंय हैं । तब भगवद्भोग्या श्रीस्वामिनीनके रसभोग कौ तौ कहनों ही कहा हैं । यह वेणु और वेणुनाद कुल वधून कैं भी पुलक-रोमांच प्रकट करै है । याते यह वेणुनाद हू विपरीत भावकौ पोषक है । वेणुनादके कलपदनकूं श्रवण करवे के लिये चलते भये प्राणी रुकजाँय हैं यहतौ अनुभव सिद्ध है । और जा समय प्रभु बनते व्रज में पधारैं हैं । तब संध्या समय में " निर्योगपाशकृतलक्षणयोः "—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

" नितरां योगो याभ्यां गोवत्सयोस्तौ
पाशौ निर्योग पाशौ ताभ्यां कृतं लक्षणं ययोः "

गायवत्सा भले प्रकार जिनते बँधजांय ऐसे गाय और बछरानके लौमना रस्सीन कूं अपने श्रीहस्तनमें ग्रहण करकैं प्रकट कियौ है गोदोहनार्थ लक्षण स्वरूप जिननें ऐसे श्रीरामकृष्णके मन्द मन्द गमन करवेते पग नूपरन की मधुरध्वनि श्रवण करकैं गतिवारे गौ गोपी गोप सब दर्शन करते ठाडे रहजाँय हैं । और व्रजके वृक्षनमें पुलक पुष्पमधुधारा प्रकट होंय हैं । तनुधारीन में यह विचित्रता होय है । जा समय प्रभु, गायन के पगबन्धन लोंमनानकूं और वत्सान के गले मे बाँधवे की रस्सीनकूं अपने श्रीहस्तमें लै करकैं गोदोहन लक्षण वेष धरकैं श्रीरामकृष्ण दोनों भय्या गोदोहन के लिये पधारें हैं । ता समय भगवान्के मन्द मन्द गमन करवेते, नूपुरयुक्त चरणनके भूमि में धरवेते छम छम अव्यक्त मधुर शब्द होंय हैं । याते चलते भये गौ गोप गोपी सब, प्रभुचरणाम्बुज गति का दर्शन करते, नूपुरध्वनीन कौ श्रवण करते, ठाडे हो रहजाय हे । तहाँ गायतौ यह जानकें ठाडी होंय हैं । कै प्रभु मनः प्रसन्न पूर्वक हमारे दुग्धरसामृत लैवेके लियैं पधारे हैं । इन रस्सीनते हमारे पाँय बाँधकर प्रभु अपने प्रयत्नते हमारे दुग्ध रसकूं ग्रहण करैंगे, तबतौ प्रभु कूं बड़ौ परिश्रम होयगौ, हमारे इत उत चलवे में खुरनकी आहट होयगी, प्रभुके दोहन कार्य में विघ्न होयगौ, यावे प्रभु परिश्रम भयते भयभीत भई गाय, मौन धारण करकैं जहाँ की तहाँ गाय ठाडी रह जाँय हैं, किंचिन्मात्र भी नहीं चलैं हैं । विना दुहैं ही अपने आप दोंहनीन कूं भरदैंय हैं । यह गोदोहन कौ समय है । हे सख्यः ! यह संबोधन, याके लिये है जे गोपी वृन्दावन में गोदोहन समय में गयीं हीं जिननें यह चरित्र देख्यौ है और या समयभी देख रही हैं । तिनकी सम्मति के अर्थ है । और दूध दुहिवेवारे गोपग्वाल ता समय यह मानें हैं कै प्रभु इन रस्सीनते हमकूँ बाँधैंगे जैसै गायनके दुग्ध ग्रहण करवेके लियैं प्रभु बन्धनादि प्रयत्न करैं हैं । तैसैं हमारे विषें प्रयासन करैं । या प्रयास भयते युक्त भये गोप अपने अपने दुग्ध रसकूं स्वतः ही प्रभुके अर्पण करकैं ठाडे ही रहजाँय है । और स्थावर व्रजके वृक्षादितौ प्रभु परिश्रमते भयभीत भये प्रभु प्रयत्न के विना स्वतः ही पुलक पुष्प मधुधारा प्रकट करै हैं यह चलायमानन कौ निश्चल होनौ, स्थावर में पुलक होनो यह तनुधारीनकौ विपरीत धर्म महत विचित्र कार्य है ॥१९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथवा यहाँ जो व्रजगोपीन नें लीला कही है सो गुप्त रीति ते कही है। गोपवृन्द के द्वारा गायन कूं वन में प्रवेश करवे ते, प्रियतम कूं गोपवृन्द कौ सङ्ग राखनों इच्छित नहीं है, यह सूचित कर्यौ। याते स्वच्छन्द रमण करवे के अर्थ, रमणलीला के योग्य भक्तन के बुलायवे के लियें वेणुनाद कियौ। प्रथम दूरस्थितावनसुन्दरीन के बुलायवे के अर्थ उच्चस्वर में कियौ। पुनः स्वस्थान ते चली वनदेवीन कूं स्वस्थितिस्थान जतायवे के लियें मध्यम स्वर में कियौ। निकट में आईं वनदेवीन के स्वागत करवे के अर्थ तत्तत्सुन्दरीन के नाम ग्रहण करवे में वेणुनाद मन्द २ स्वर में कियौ। याते तत्तत्रमणीन के नामोच्चारण करवे ते "वेणुस्वनैः" यामें बहुवचन कह्यौ। कैसे वेणुस्वन हैं। कै "कलपदैः" अव्यक्त मधुर हैं पद जिन में ऐसे वेणुस्वन हैं। वनरमणीन के नामन कूं अन्य कोई नहीं जान सकै, याते अन्य कूं अव्यक्त अस्पष्ट हैं। और अपने २ वन रमणीन के नाम के बोधक हैं, याते मधुर हैं। याते कल हैं। नाम रूपात्मक पद जिनमें ऐसे वेणु के शब्द हैं। याते ऐसे अव्यक्त मधुर वेणु के शब्दन कूं श्रवण करकैं गतिवान् ठाढ़े रहजाय हैं, तरून में पुलक होंय हैं। यह तनुधारीन में विचित्र कार्य है। ये रमणी प्रभु ते पहलें, व्रज ते वन में दिवस में आई हैं, किन्तु दिवस में आगमन रमण के अर्थ सब के समक्ष में नहीं है सकै है। तथापि वेणुपद युक्त शब्दन कूं श्रवण करकैं तौ सब कौ आगमन निर्विघ्नपूर्वक होय है। याते उदार वेणुस्वनन के द्वारा, स्थावर जङ्गम भक्तन के विषें गमनशीलन की गति कौ रोध होय है और निश्चल स्थावर वृक्षन में पुलकरोमांच होंय हैं, यह विचित्र कार्य है। ऐसैं 'उदारवेणुस्वनैः, कलपदैः' इन दोनों पदन की आवृत्ति करकैं भी पद संबन्ध जाननों। इन व्रजस्थिता गोपीन कूं तौ प्रियतम के विरह में शरीर कौ अनुसंधान नहीं है। याते व्रजगोपीन कूं तौ उदारवेणुस्वनन के अव्यक्त मधुर, नामरूपात्मक कलपदन करकैं ही देहानुसंधान होय है। याते 'तनुभृत्सु' व्रज के स्थावर जङ्गमभक्तन में तौ वेणु के कलपद शब्दन करकै ही तनकौ धारण करनों है। या वेणुके कलपद स्वन ही शरीरानुसंधान के करायवे वारे हैं। अपनी गोष्ठी में तौ सब ऐसी ही हैं। याते सब की सम्मति के अर्थ 'हे सख्यः' यह संबोधन है। और वेणु है सो उदार है। पात्रापात्र विवेकरहित होयवे ते उदारवेणु अल्प के लियें भी बहुत दान देय है। याते स्थावर वृक्षन के अर्थ भी बहुत दान के देवे ते, वेणुस्वनस्थितरसात्मक वस्तु की सामर्थ्य ते वृक्षन में पुलक कौ होंनों योग्य ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। याते ही तरून में रसोपयोगि पुष्प मधुधारा प्रकट होय हैं। गोपवृन्द के द्वारा गायन कूं वन में प्रवेश कहवे ते यह दिवस सम्बन्धि चरित्र कह्यौ है। अब वन ते व्रज में आये पश्चात् सन्ध्यासम्बन्धि चरित्र कूं कहै हैं कै 'निर्योगपाशकृतलक्षणयोः' गायन के पायन में बाँधवे के लोंमना, और वत्सान के गले में बाँधवे की रस्सीन करकैं कियौ है गोदोहनानुरूप सन्ध्या समय कौ वेष जिननें जाते सब संध्या समय कौ वेष कह्यौ श्रीराम कृष्ण दोंनों भैय्या अपने २ श्रीहस्त में गायन के लोंमना और बछरा बाँधवे की रस्सीन कूं लियें श्रीरामकृष्ण कौ वेष दर्शन करकैं, चलते भये ठाड़े रह जाँय हैं। और व्रज के वृक्षन में पुलक प्रकट होंय हैं। यह कार्य-द्वय कौ होंनों पहले ते भी विशेषविचित्र है। यद्यपि वेणुनाद के उदार होयवे ते पात्रापात्र विवेकरहित रसदान के दैवे ते भी वृक्षन में पुलक होंनों चित्र है तथापि श्रीराम कृष्ण दोंनों भैय्या गायन के दुग्धरस लैवे के लियें उद्यत हैं ऐसें गायन कूं और वृक्षन कूं श्रीरामकृष्ण दोंनों कौ स्वरूपज्ञान होंनों याते गायन की गति कौ रोध, और वृक्षन कैं पुलक होंनों और गायन कूं अपने पशुस्वभाव कौ और वृक्षन कूँ अपने जड़स्वभाव कौ तिरोधान होंनों यह पूर्व ते भी विशेष चित्रकार्य है। याते 'वि' उपसर्ग कह्यौ। अरी! यह वेणु तौ स्वभाव ते ही ब्रह्मानन्द कूं तुच्छ करकैं देहेन्द्रियादि रहितमुक्तजीव वृक्षादिकन कूं भी स्वरूपानन्द रसदान देय है, यह हम जानें हैं। किन्तु इन देहेन्द्रियादि रहित मुक्तजीव वृक्षन कैं पुलक होंनों सम्भव नहीं है। तथापि वेणुपद और 'तनुभृत्' पद के समान व्यवहार ते यह जानी जाय है कै प्रभुवृक्षादिकन कूं स्वरूपानंद-रस भोगवे के अर्थ, आधिदैविक देहेन्द्रियादि कौ भी दान करै हैं। याते गोनिष्ठ भोग्यरस कूं ग्रहण करवे के लियें उद्यत भये श्रीराम कृष्ण प्रभु के दर्शन करकैं दोंनों के श्रीहस्त में लोंमनारस्सीन कूँ देखकैं ये वृक्ष यह जान जाय हैं कै गायन ते प्रभु स्वप्रयत्नपूर्वक दुग्धरस ग्रहण करै हैं। किन्तु हम वृक्ष तौ प्रभु प्रयत्न के विना ही स्वयं ही अपने रस कूं प्रभु के अर्पण करैंगे। याते ये वृक्ष, पुलक पुष्पमधुधारान कूं प्रकट करै हैं। प्रथम तौ वृक्षन कूं भगवत्स्वरूपज्ञान होंनों ही 'चित्र' अद्भुत है, किन्तु—

"निरीक्ष्यरूपं यद्गोद्विजमृगाः पुलकान्यबिभ्रत् ॥"

गौ पक्षि वृक्ष मृग ये सब प्रभुस्वरूप कौ दर्शन करकैं पुलकन कूं धारण करै हैं या वाक्य ते वृक्षन कूं स्वरूपज्ञान तौ माननों ही परैगौ। इन वृक्षन कूं भगवत्स्वरूपज्ञान, गोदोहन समय की स्वरूप महिमा ते ही भयौ है। या इतने कथन ते यह सिद्ध भयौ कै यह स्वरूप सम्बन्धि समस्त प्रभुकौ चरित्र, मर्यादा नाशक है। और स्वरूपानन्ददायक है। तामें भी रसवारेन ते प्रभु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कूं रस लैवे की इच्छा है। गौ वृत्तन कूं ऐसौ ज्ञान होंनों विचित्र है। और प्रभु कूं रस लैवे की इच्छा ते रसवारेन की अपेक्षा है। ये वृक्ष हू यह जानें हैं कै हम हूँ रसवान् हैं। याते अपने रसोपयोगि ज्ञान ते प्रमुदित भये वृक्ष, स्वनिष्ठरस कूं। पुलक पुष्पमधुधारा रूप ते प्रकट करें हैं। यह ज्ञात होय है कै अन्तः पूर्णरस के आधिक्य में स्थान के अभाव ते प्रतिरोमकूप मेंते रसके बाहिर निकसवे में रोम २ में ते रस बाहिर निकसै है। सोही यहाँ प्रतिशाखान में मधुधारा पुष्पफल रूप में पुलक होंय हैं। ऐसें जाननों चहिये॥ १६ ॥

अथवा गायन कूं गोपवृन्द के द्वारा वन ते वन में लैजायवे वारे श्रीरामकृष्ण के उदारवेणु शब्दन कूँ श्रवण करकैं गतिवारेन की गति रुकजाय हैं। शरीर में पुलक रोमांच प्रकट होय हैं। और वन के वृक्षन कैं पुलक पुष्प मधुधारा प्रकट होंय हैं। यह कैसी विचित्रता होय है। और गायवत्सान के लोंमना रस्सीन करकैं कियौ है गोदोहन के अनुरूप सन्ध्यासमय कौ वेष जिननें ऐसे श्रीरामकृष्ण के '**कलपदैः**' अव्यक्तमधुर मनोहर पदध्वनीन कूं श्रवण करकैं गतिवारेन की गति रुकजाय है और शरीर में पुलकित होय है। और व्रज के वृक्षन कैं पुलक पुष्प मधुधारा प्रकट होय हैं। तनुधारीन में यह विचित्र है। गोदोहनार्थ प्रभु के अति शनैः २ चलवे ते नूपुरध्वनित चरणन के धरवे ते अव्यक्त मधुर शब्द होंय हैं, याते प्रभुचरणन कूं '**कलपद**' कह्यौ। अथवा गाय सब प्रभु कूं चारों ओर ते घेर करकैं ठाड़ी है जाँय हैं। याते प्रभुपादाब्ज कौ दर्शन कोई २ क्षण में ही होय है। याते नूपुरसिंजित पदध्वनि सूक्ष्म सुनाई परै है, याते पदन की अव्यक्तता है। अर्थात् प्रभु पादाम्बुज शब्दन कौ निश्चय नहीं होयवेते, प्रभु पादाम्बुज गतिकौ अनुसन्धान करती गाय जहाँ की तहाँ ठाडी रहजाय हैं। याते चरणन की अव्यक्त मधुरता है। गोदोहन लक्षण में कह लोंमना रस्सी रूपी पाश, गायवत्सान के पाँय गल बाँधने के लियै नहीं। गायन की गति कौ रोधनौ नूपुरध्वनित प्रभु के कलपदन करकै ही, है रह्यौ है। लोंमना रस्सो तौ प्रभु नें गोदोहन चिन्हन के लिये धारण किये हैं। लोंमना रस्सी धारण करकै तौ गोदोहन कौ समय जतायौ है। पुलक पदकी आवृत्ति करकैं गतिवारे और स्थावर वृक्ष, इन दोनों पदन के सङ्ग सम्बन्ध जानन। याते चलवे वारेनकी गति कौ रोध होय है, और पुलक होय हैं। और स्थावर वृक्षनमें पुलक होंय हैं। या प्रकार '**बर्हापीडं**' ता श्लोक के, ये त्रियोदश श्लोक अनुवाद रूप हैं या प्रकार सर्व रस भोक्ता भगवान् सबकूं विजय करकैं वृन्दावनमें विराजे हैं यह निरूपित भयौ १६

या प्रकार त्रियोदश श्लोकन में प्रभु का दिनमें करी त्रियो दश लीला, व्रजगोपीननें कहीं, सायंकाल में प्रभु व्रजमें पधारे। याते एक श्लोक में श्रीशुकदेवजो लीला की समाप्ति करें हैं।

एवं विधा भगवतो या वृन्दानन चारिणः।
वर्णयन्त्यो मिथोगोप्यः क्रीडास्तन्मयतांययुः। ॥२०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0- In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीशुकदेवजी कहे हैं। कै वृन्दावनविहारी भगवान की या प्रकार की लीलान कूं परस्परमें वर्णन करती व्रजगोपी तन्मयताकूं प्राप्त है गई, भगवल्लीलास्वरूपमयी हैगयीं २०॥

व्याख्या—श्रीशुकदेवजी कहे हैं कै 'एवंविधा' यह हमनें लीलान को एक प्रकार कह्यौ। किन्तु या प्रकारकी श्रीगोपीजनवल्लभ प्रभुकी कोटिन लीला हैं। यामें कारण कहें कै 'भगवतः' भग नाम षडैश्वर्यादि धर्मयुक्त होयवे ते, धर्मि भगवान् की कोटिशः लीला हैं। और अवतार दशा में मर्यादा रीति सूं भगवान् की परमित लीला भी होंय हैं किन्तु 'या वृन्दावनचारिणः' वृन्दावनचारी स्वच्छन्द विहारी भगवान् की लीला तौ मर्यादा रहित होयवे ते असंख्यात हैं। याते—

" मिथः क्रीडा वर्णयन्त्यो गोप्यस्तन्मयतां ययुः।"

परस्पर में भगवल्लीलान कूं वर्णन करती व्रजगोपी, भगवल्लीला मयी है गईं। आसक्ति भ्रमन्यायते जाग्रत्स्वप्नावस्था में भगवत्क्रीडान कूं ही देखती करती गोपी, भगवल्लीला रसरूपमयी है गईं। अथवा 'त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे' जैसें प्रियतम के वियोग में समस्त त्रिलोकी प्रियतममयी दीखै है। तैसें या प्रकार के आसक्ति भ्रमन्यायते गोपी प्रभुलीला रसरूपमयी है गईं। अथवा " आवर्ते रससिन्धोः प्रत्यावर्तेत किं मग्न " जैसें रस समुद्रके भ्रमर में डूबौ पुरुष कहा पुनः निकस सकै है। अर्थात् कदापि नहीं निकर सकै हैं। ऐसें ही " रसोवैसः " प्रभुतौ रसात्मक रस समुद्र ही हैं। याते या रसामृत सिन्धु में आसक्तमयी गोपीन कूँ प्रिय विरह में उत्पन्न भये भ्रमरूप भ्रमर में परीं व्रजगोपी, पतः या लीला क्षीराब्धि में ते कैसें निकर सकै हैं। अथवा रसात्मक प्रभुमें आसक्ति के होयवेते, गोपी यह नहीं जानैं हैं। कै हम व्रजमें हैं या वृन्दावन में हैं ऐसें आसक्ति भ्रम न्यायते जाग्रत् स्वप्नावस्था में भगवत्क्रीडान कूं ही देखती करती गोपी भगवल्लीला रसरूपमयी है गईं। याते 'ययुः' या लिट्लकारके प्रयोग ते यह सूचित कियौ। कै व्रजगोपीन कौ पुनः या संसार में आगमन नहीं भयौ। या संसार रूप मिथ्या भ्रममें कदापि नहीं परी। ऐसे भगवत्साक्षात्कार में सर्वात्म भाव ही कारण है। या सर्वात्मभाव कौ निरूपण अणुभाष्य के तृतीयाध्याय में " विद्यैवतु निर्धारणात् " या सूत्र में कियौ है। सर्वात्म भावरूपा विद्या ही भगवत्साक्षात्कार करायवे वारी है॥ २०॥

जैसें पूर्वके पंचमाध्यायते लै करकैं एकादशाध्याय पर्यन्त सात अध्यायन में प्रमाण प्रकरण कह्यौ तामें गौ गोपी गोपन कौ प्रथमाधिकार रूप प्रेम निरोध कह्यौ। ऐसें ही द्वादशाध्याय ते अष्टादशाध्याय पर्यन्त सात अध्यायन में प्रमेय प्रकरण है यामें मध्यमाधिकार रूप आसक्ति निरोध कह्यौ है। यामें पूर्व के छै अध्यायन में भगवान् के ऐश्वर्यादि षट् धर्मन कौ निरूपण है। या सातमे अष्टादशाध्याय में धर्मिस्वरूपकौ निरूपण कियौ। यह मध्यमाधिकार रूप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आसक्ति निरोध, पंचपर्वा अविद्या निवृत्तिपूर्वक भगवान कौ आन्तर रमणात्मक है यामें गोपीन की दृढ आसक्ति स्थिर भयी, या प्रकार यह प्रमेय प्रकरण समाप्त भयौ ॥

इति श्रीमद्भागवत सुबोधिनी व्याख्यायां श्रीमद्वल्लभाचार्य विरचितायां दशमस्कन्ध विवरणेऽष्टादशाध्याय विवरणस्य सनाढ्य कुलोत्पन्नस्वामि रूपकिशोर कृतो ब्रजभाषानुवादः समाप्तः ।

ब्रजजन नन्दादिकन कौं, बृहद्वृन्दावन धाम ।
पायौ गोकुल संगते, दोउन गोकुल नाम ॥ १ ॥
वृन्दावन कूं वृहत् के, अन्तर में ही जान ।
ऐसैं वाक्य विचार ते, लेउ एक ही मान ॥ २ ॥
वृहत् महत् कूं कहत हैं, है वाच्यार्थ समान ।
न्यारौ वृहदारण्यतें, गोकुल कहत अजान ॥ ३ ॥
महावन रावल में प्रथम, बसे नन्द वृषभानु ।
वृन्दावन के वास हैं, नन्दगाम वृषभानु ॥ ४ ॥
ब्रजचौरासी कोश में, अन्य न वृहदारण्य ।
याते महावन ही रह्यौ, सब ब्रजभर में गण्य ॥ ५ ॥
या महावन कूं जानियें, वृहत् अक्षर ब्रह्म ।
वैष्णव जन सेवन करौ, त्याग सांसरिक जिह्म ॥ ६ ॥
श्रीवल्लभ गोकुल कह्यौ, मुख्य महावन राखि ।
यही कही विट्ठल प्रभू, यमुनास्तुति में साखि ॥ ७ ॥
गौ गोवत्सन संगमें, चरित किये भगवान ।
याते ही याकौं भयौ, गोकुल नाम प्रधान ॥ ८ ॥
स्वामी नारायण बसे, यहीं महावन गाम ।
नारायण ब्रह्मचारिकौ, है भक्तन में नाम ॥ ९ ॥
सेवक गोकुलचन्द के, श्रीविट्ठल के दास ।
कुल सनाढ्य पावन कियौ, श्रीपति पदरज आस ॥ १० ॥
श्रीवल्लभ सों यह विनय, मेरी दोउ करजोर ।
सदा बसौ मो हृदय में, ये दोउ रूपकिशोर ॥ ११ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

❋ श्रीकृष्णायनमः ❋

मुख्य श्रीस्वामिनीस्वरूप निरूपणम् ।

यहाँ आधिदैविकी शक्तीन के सङ्ग में श्रीकृष्ण भगवान् की रसमयी लीला कही है। याते प्रथम मुख्य श्रीस्वामिनीन श्रीराधाजीके स्वरूपकूं कहै हैं के "श्रीश्चते लक्ष्मी श्च पत्न्यौ" या श्रीसूक्त श्रुतिमें श्रीकृष्ण सदानन्दरसात्मक प्रभुकी दो पत्नी कही हैं। यहाँ श्रीशब्द को शोभा अर्थ है। यह श्रीकृष्ण सदानन्द प्रभु को स्त्रीगूढ़ भावात्मक हृदयगत स्वरूप सौन्दर्य राधिका रूप है। सोभी श्रीकृष्णकौ ही स्वरूप है। यामें "कृषि भूर्वाचक शब्दोणश्चनिर्वृति" यह श्रुति प्रमाण है। श्रीकृष्णसदानन्द प्रभु स्वरूप, स्त्रीपुँभावात्मक उभयालंबन रूप है। याते श्रीकृष्णकौ द्वितीय स्वरूप श्रीराधा है। सोही संमोहनतन्त्र में कह्यौ है कै—

"तस्माद्रूपमभूद्द्वेधा राधामाधवरूपकं।"

या राधिका रूपराशिकी कान्तिरूपा लक्ष्मी है। जैसें सूर्य को किरण होंय, ऐसें समष्टि पीतरोमराजिरूपा मंडलाकार में भगवान् के हृदय में बाहिर लक्ष्मी रूपते विराजे है, लक्ष्म नाम चिन्ह कौ है याते यह राधिका लक्ष्म वाचक लक्ष्मी हैं। याते ही भगवान् कौ नाम श्रीवत्सलांच्छन है। सोही यहां लीलासृष्टि में राधिका की छायारूपा श्रीचन्द्रावली है। या राधिकारूपराशिकी कान्तिरूपा समष्टि रोमराशिते व्यष्टिरूपा स्वयं सिद्धा श्रीस्वामिनीन कौ तथा रुक्मिणी आदि महिषीन कौ प्रादुर्भाव है। तामें गोलोकवासिनी श्रीचन्द्रावली जी तौ श्रीराधिकाजी की छाया रूपा हैं। याते 'पुष्टिंकायेन निश्चयः' या वाक्यते पुष्ट सृष्टिकौ कायाते प्रादुर्भाव है। याते यहाँ आधिदैविकी शक्ति गोपिकान के संग प्रभु की क्रीड़ा है। और या क्रीडा में बहुत से मुक्त जीव हू लीलानुभव करवे के अर्थ संमिलित होय है। जैसें "मणिधरः क्वचिदागणयन्गाः" यहाँ लीला में लीलारसानुभव करवेवारी गाय भगवान् की माला की मणिरूपा है। और कितनी हू गोपी श्रुतिरूपा ऋषिरूपा, अग्निकुमाररूपा हैं। ऐसें ही सबन कूँ जानों यह लीला प्रभुनें दैवी जीव जगत् के उद्धारार्थ प्रकट करी है। जो जीव या भगवल्लीला कौ चिन्तमन करेंगे ते अवश्य ही भगवत् पदाब्ज सेवा के अधिकारी होंयगे।

—प्रकाशक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आ
भरतनि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi